पंत की काव्य कला
और
जीवन दर्शन

लेखक

रामचन्द गुप्त

एम० ए० (हिन्दी, दर्शन, राजनीति

प्रकाशक

नव ज्योति प्रकाशन मन्दिर,

आगरा।

सन् १६५६ ई०] [मूल्य ३॥)

प्रकाशक—
प्रतापचन्द जैसवाल व विश्वम्भर 'अरुण'
संचालक—
नव ज्योति प्रकाशन मन्दिर
मानपाड़ा, आगरा

प्रथम संस्करण—१०००
सम्वत् २०१३ वि०

अधकृति बिक्रेता
सरस्वती पुस्तक सदन
मोती कटरा, आगरा

मुद्रक :—
मा प्रिंटिंग प्रेस, आगरा।

प्राक्कथन

पिछले कुछ वर्षों से यह विवाद देखने को मिलता है कि साहित्य में चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति अधिक अभिप्रेत है अथवा तत्कालिक समाजगत समस्याओं का अंकन करना। इन्हीं दोनों मतों को लेकर आलोचकों के दो दल हो गये हैं, एक अध्यात्मवादी, जिन्हें रूढ़िवादी भी कहा जाता है, तथा दूसरे मार्क्सवादी। पंत जी बहुत ही भावुक व्यक्ति हैं, अतः उन पर दोनों का ही यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि कवि का मन अनेक स्थलों पर द्विविधाग्रस्त-सा दीख पड़ता है। हमारे जीवन में आज रोटी का प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण है तथा उसे किसी भी प्रकार भुलाया नहीं जा सकता। संसार में रहकर हम आर्थिक समस्या को झुटला नहीं सकते। पूँजीवाद को बदल कर समाजवाद लाना ही पड़ेगा। पर भौतिकता का यह प्रश्न आत्मा के प्रश्न को भी झूँटा नहीं ठहरा सकता। भौतिक उन्नति लाने के लिए आत्मिक उन्नति करनी ही पड़ेगी। बिना आत्मिक उन्नति के भौतिक उन्नति अपूर्ण ही रहेगी। कैसे कोई सामाजिक समस्याओं में ही परितोष पाकर निस्सीम सुषमा और प्रकृति के अनंत वैभव से आँखें बन्द करके जी सकता है। शारीरिक भूख ही इतनी आवश्यक नहीं कि आत्मिक भूख को कलाकार पूर्णरूप से भूल बैठे। ठीक तो यह है कि दोनों ही समस्याएँ जीवन की सर्वाङ्गीण उन्नति के लिए आवश्यक समझी जाएँ। तन और मन दोनों के समन्वय पर ही जीवन सुन्दर और स्वस्थ बनाया जा सकता है। पंत जी ने, यही कारण है कि, मार्क्सवाद के प्रतिपादन के साथ अध्यात्मिक चेतना को भी नहीं भुलाया है। वे समम्वयवादी हैं और उन्होंने अपनी रचनाओं में दोनों ही पक्षों को निखारा है। पंत जी की कविता अतः शाश्वत् सत्य और युगसत्य की सफल अभिव्यक्ति है। पंत जी एक सफल कलाकार हैं और उन्होंने एक कलाकार के पुनीत कर्त्तव्य को पूर्ण रूपेण निभाया है। उन्होंने प्रकृति की सुषमा में दिव्य-चिरन्तन विराट स्वरूप का दर्शन किया है, साथ ही सामाजिक जीवन की

समस्याओं पर भी दृष्टि-निक्षेप किया है। अतएव उनका काव्य चिरन्तन सौन्दर्य-बोध और युग-बोध का सफल सामंजस्य है। इसी आधार को सामने रख कर मैंने उनकी रचनाओं पर दृष्टिपात किया है, तथा उनका विश्लेषण किया है। मैं अपने प्रयास में कहाँ तक सफल हो सका हूँ, यह तो सहृदय पाठक ही बताएँगे। पंत जी के सम्बन्ध में कुछ भ्रामक विचार रहे हैं जिन्हें मैंने अपने दृष्टिकोण से सुलझाने का प्रयत्न किया है। मुझे आशा है कि मेरा यह प्रयास, जैसा भी है, अवश्य ही पंत जी सम्बन्धी अध्ययनन में सहायक होगा।

अंत में मैं उन सभी लेखकों तथा आलोचकों के प्रति, जिनके मत मैंने पुस्तक में रखे हैं, तथा जिनके उद्धरण इसमें दिये गये हैं कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। साथ ही साथ प्रकाशक बन्धु के प्रति भी अपना हार्दिक आभार प्रदर्शित करता हूँ जिन्होंने इसके प्रकाशित करने में पर्याप्त परिश्रम किया है। मैं तो कहूँगा कि यह प्रयास श्री प्रतापचंद्र जी गुप्त (प्रकाशक) जी के प्रोत्साहन से ही सफल हो सका है। अन्त में मैं इस आशा के साथ, अपने कथन को समाप्त करता हूँ कि पाठक इसका उचित आदर करेंगे।

धन्यवाद सहित !

भोपाल
मकर संक्रान्ति, सम्वत् २०१२

रामचन्द्र गुप्त

विषय-सूची



पंत का जीवन और व्यक्तित्व



अल्मोड़ा से लगभग ३२ मील उत्तर की ओर कौसानी एक रमणीक प्रकृति-सौन्दर्य पूर्ण पहाड़ी ग्राम है। इसी ग्राम में २० मई सन् १९०० को को दिन के आठ-नौ बजे पंडित सुमित्रानन्दन पंत का जन्म हुआ। इनके पिता पं० गंगादत्त पंत ज़मीदार थे और कौसानी राज्य में कोषाध्यक्ष का कार्य करते थे। इनकी माता का नाम श्रीमती सरस्वती देवी था। इनके पिता ख्याति प्राप्त धनी व्यक्ति थे। प्रारम्भ में इनकी चार बहनें और चार भाई थे। पंत जी सबसे छोटी सन्तान हैं। पर दुर्भाग्य से अब तक सभी बहनों एवम् एक भाई की मृत्यु हो चुकी है। इनके शेष दो भाइयों का नाम हरदत्त पंत और देवीदत्त पंत हैं। पंत जी के पिता जी धार्मिक वृत्ति के उदार-हृदय व्यक्ति थे। प्रातः काल चार बजे से उठकर आठ बजे तक वे पूजा-पाठ में लगे रहते थे। इनके भाइयों में से हरदत्त पंत पहले मेयो कालेज अजमेर में थे फिर लखनऊ चले गये। पंत जी के कथनानुसार कविता की प्रेरणा सर्व प्रथम उन को इन्हीं से प्राप्त हुई। देवीदत्त पंत जी ने काँग्रेस में कार्य किया, जेल भी गये। वे अल्मोड़े में एडवोकेट थे। देहली में वे आजकल भारतीय संसद के सदस्य हैं। इनकी स्नेहमयी माता जी का देहान्त इनके जन्म से छः घन्टे के उपरान्त ही हो गया। पंत जी कहते हैं: "मेरा मन उदास हो गया। मैं सोचने लगा यदि वह माँ आज जीवित होती तो कितनी प्रसन्न होती। कितने दुःख की बात है कि वह सरस्वती अपनी आँखों से इतना न देख पाई कि उनका पुत्र सरस्वती की आराधना करके कैसा यशस्वी बनेगा।" माता की मृत्यु का दुःख

इन्हें सदैव अखरता है। एक और स्थान पर पंत जी ने इस दुःख को इस प्रकार व्यक्त किया है :—

नियति नेही निज कुटिल कर से, सुखद
गोद मेरे लाड़ की थी छीन ली,
बाल में ही हो गई थी लुप्त हा!
मातृ अंचल की अभय छाया मुझे।

पंत जी की माता की मृत्यु के पश्चात् पंत जी का पालन-पोषण उनकी फूफी ने किया, जिनके पति साधू हो गये थे तथा जो अपने भाई के यहाँ कोसानी में रहा करती थीं। उनकी फूफी का स्वभाव अत्यन्त सरल एवं उदार था।

पंत जी की स्मृति बहुत ही तीव्र है और उनकी सबसे पुरानी स्मृति उस समय की है जब कि वे लगभग तीन वर्ष के थे। एक दिवस वे अपने भाई के साथ रस्सी खींचने का खेल खेल रहे थे। खेल में भाई ने रस्सी छोड़ दी और पंत जी अंगीठी में जा गिरे जिसके फलस्वरूप उनका कोमल शरीर झुलस गया। जब वे पाँच वर्ष के हुए तब मन्दिर की खपरैल उनके अंगूठे पर गिर पड़ी जिसके कारण उन्हें पर्याप्त चोट आई। उन्हें अपने भाई के विवाह की घटना भी पूर्ण रूप से याद है, जब कि वे अपने नौकर की पीठ पर सवार होकर बरात गये थे। इनके मकान के समीप विशाल देवदारों का उपवन सा लगा था, उन्हें निहारना तथा उनसे गिरते पीले चूर्ण को देखना पंत जी को बहुत सुहावना लगता था। कौसानी और हिमालय के मध्य में कोई व्यवधान नहीं है, और बालक पंत हिमालय के सुन्दर शिखरों को प्रातः सायं सुवर्णमय होते देख बहुत चकित होता था। कौसानी में साधू अकसर आया करते थे। पं० गंगादत्त पंत साधु सेवी एवम् साधु प्रेमी थे। एक बार पूछने पर गंगादत्त जी ने सुमित्रानन्दन जी के संबंध में कहा—"यह मेरा सबसे छोटा बेटा है।' साधु ने कहा—'सबसे छोटा या सबसे बड़ा?" और सुमित्रानन्दन जी ने पीछे अपने को सबसे बड़ा बेटा साबित कर दिया। पंत जी को न खेलने का शौक था न कूदने का और न ये किसी से लड़ते झगड़ते ही थे।

पंत जी की प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में सात वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ हुई। यहाँ लगभग चार-पाँच वर्ष शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् वह अल्मोड़ा के गवर्नमेंट हाई स्कूल में भर्ती किए गये। इस स्कूल में इन्होंने नवीं कक्षा तक शिक्षा पाई। तत्पश्चात् ये काशी चले गये। वहाँ जयनारायण हाई स्कूल से मैट्रिक पास किया। जुलाई १९२० में प्रयाग में म्युअर सेंट्रल कालेज के विद्यार्थी बने। तब ये हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहते थे। सन् १९२१, असहयोग आन्दोलन का युग था। उन दिनों गाँधी जी प्रयाग पधारे और आनन्द भवन में ठहरे। विद्यार्थियों पर गांधी जी के भाषण का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। पंत जी ने उसी प्रभाववश कालेज छोड़ दिया। इस प्रकार इनकी शिक्षा यहीं पर समाप्त हो गई। कविता करने की अभिरुचि इन्हें पहले से ही थी। सर्व प्रथम इन्होंने उस समय कविता लिखी जब ये सातवीं कक्षा के विद्यार्थी थे। उन दिनों स्वामी सत्यदेव जी परिव्राजक हिन्दी का प्रचार करने अल्मोड़े आये थे। कालेज में पढ़ते समय पं० शिवाधर पांडेय का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट हुआ। वह हिन्दी के पुराने लेखक तथा काव्य-मर्मज्ञ थे और उनका अध्ययन भी गम्भीर था; इसी कारण उन्होंने पंत जी की काव्य-प्रतिभा देखकर अँग्रेजी कवियों की रचनाएँ पढ़ने में इन्हें विशेष सहायता दी। उन्हीं की देखरेख में पंत जी ने उन्नीसवीं सदी के प्रसिद्ध आलोचनात्मक निबन्धों, भास आदि के नाटकों तथा तुलनात्मक आलोचना का अध्ययन किया। निरन्तर अध्ययन से पंत जी की रुचि साहित्य और काव्य रचना की ओर परिष्कृत रूप से अग्रसर हुई। कालेज छोड़ने के पश्चात् वे घर चले गये और वहाँ उन्होंने स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करना प्रारम्भ किया। उनका अध्ययन कई दिशाओं में हुआ है। अँग्रेजी तथा विदेशी साहित्यकारों के काव्यों, श्रेष्ठ साहित्यक ग्रन्थों और संस्कृत के काव्यों का मनन करने से उनकी प्रतिभा को पर्याप्त बल मिला है। उपनिषद् दर्शन तथा अध्यात्मिक साहित्य का उन्होंने गम्भीर अध्ययन किया है। संगीत से इन्हें विशेष प्रेम है। इन्होंने कुछ दिनों तक 'रूपाभ' मासिक पत्रिका का सम्पादन भी किया है। मद्रास में रहकर उन्होंने उदयशंकर के चलचित्र 'कल्पना' का कार्य भी किया है। लोकायन-संस्कृति-

विद्यापीठ के निर्माण और संगठन में भी इनका हाथ है। इस समय वे रेडियो विभाग में काम कर रहे हैं। आप अपने साहित्यिक जीवन में कई विशेष व्यक्तियों के सम्पर्क में रहे हैं जिन्होंने इन्हें समय समय पर उत्साह एवम् प्रेरणा प्रदान की है।

कालेज छोड़ने पर भी इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अँगरेजी के प्रोफेसर श्री शिवाधार पांडेय के सम्पर्क में निरन्तर रहे। सन् १६२१-२४ के मध्य उनसे पंत जी ने अँग्रेजी का अध्ययन किया। सन् १६२४ में दर्शन की ओर उनका झुकाव हुआ जिसके चिह्न 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में पाये जाते हैं। वीणा सीरीज की कविताएँ कुछ काशी में लिखी गईं और कुछ प्रयाग में। 'ग्रन्थि' का प्रणयन सन् १६२० में कौसानी में हुआ। १६२४-२८ के बीच इन्होंने कुछ भी नहीं लिखा। इन दिनों इन्हें काफी परिवारिक संकटों का सामना करना पड़ा। १६२६ में उमर खैयाम की रुबाइयों का अनुवाद किया गया। इसी समय 'लू' लग जाने से ये बीमार पड़ गये। १६३० के ग्रीष्म में ये अल्मोड़े लौट आये। वहाँ कालाकाँकर के महाराज अवधेशसिंह आये हुए थे। उन्हीं के साथ उनके लघु भ्राता सुरेशसिंह भी थे, इनसे पंत जी की घनिष्ठता होगई तथा वे हठ करके इन्हें कालाकाँकर ले गये। सन् १६३०-३३ के मध्य ये वहीं रहे और 'गुंजन' और 'ज्योत्सना' की रचना की। सन् १६३४-३५ में ये अल्मोड़े में रहे। यहाँ पर इन्होंने पाँच कहानियाँ तथा 'युगान्त' की रचना की। सन् १६४०-४२ के बीच ये कभी अल्मोड़ा रहे और कभी प्रयाग। १६४३ में ये उदयशंकर के सम्पर्क में आये तथा सन् ४३-४४ के 'विन्टरटूर' में ये उदयशंकर के साथ कानपुर, लखनऊ, आगरा, बड़ौदा, बम्बई आदि स्थानों पर गये। ४५-४६ में 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' की कविताएँ लिखी गईं। सन् १६४७ में ये बच्चनजी के साथ एडल्फी में रहे। प्रयाग इन्हें अत्यन्त्य प्रिय है। 'रूपाभ' के प्रकाशन के समय ये नरेन्द्र शर्मा के सम्पर्क में आये। जब कभी ये बम्बई जाते हैं, नरेन्द्र जी के साथ ही ठहरते हैं। अरविन्द के दर्शन का इन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। हिन्दी के अनेक कवियों से भी आपके घनिष्ठ सम्बन्ध रहे हैं। पंत जी

कहते हैं—"श्री मैथलीशरण गुप्त की मुझ पर बड़ी कृपा रही है। उनका स्नेह मुझे मिला है। उनके चिरगाँव में हो आया हूँ। वहाँ मैंने बड़े सुख का अनुभव किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय का मेरे प्रति बड़ा सद्भाव रहा। उनके सभापतित्व में होने वाले प्रयाग के एक कवि सम्मेलन में जब मैंने छाया कविता पढ़ी, तो उन्होंने गद्गद् होकर अपने गले की माला ही मेरे गले में डाल दी थी। 'रत्नाकर जी' भी मुझे बहुत प्यार करते थे यहाँ तक कि एक चित्र भी उन्होंने मेरे साथ खिचवाया था। श्रीधर पाठक से मेरा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। रविवार की संध्या को मैं प्रायः उन्हीं के यहाँ खाना खाया करता था। प्रकृति के वे बड़े प्रेमी थे। वे मेरी 'वीणा' की रचनाओं को बहुत पसन्द करते थे। कभी कभी कह दिया करते थे मुझे विश्वास होगया है तुम भविष्य के कवि (Futurepoet) हो। 'प्रसाद' जी के साथ तो, जब मैं काशी जाता, ठहरता ही था। उनकी अनेक मधुर स्मृतियाँ मेरे हृदय में हैं। वे अत्यन्त मधुर स्वभाव के व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। स्वाभाविक रूप से कविता जिसके व्यक्तित्व में निवास करे, ऐसे प्राणी थे ये। निराला जी से सुहृद मित्र की भाँति घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पहली बार अपने जामाता के साथ वे मुझे मिले थे। मुझे स्मरण है, अपनी 'मौन निमंत्रण' कविता मैंने उन्हें सुनाई थी और उन्होंने उसकी बड़ी प्रशंसा की थी। जिन दिनों निराला जी लखनऊ में थे और मैं कालाकाँकर से वहाँ जाता तो उनसे नित्य भेंट होती। हम साथ ही संध्या समय टहलने जाते और कभी कभी अमीनाबाद में साथ बैठकर चाय पीते। उन दिनों का मुझे अब भी स्मरण है। 'निराला' एक बार कालाकाँकर भी आये थे और यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि निराला मुझे बहुत प्यार करते हैं। महादेवी से मेरा प्रथम परिचय धीरेन्द्र वर्मा के विवाह में हुआ। मुझे देखकर वह सहसा हँस दीं, इस समय इतना ही स्मरण है। कालाकाँकर से जब मैं आता तो उनसे भी मिलने जाता था। एक बार वे भी कालाकाँकर आयी थीं। 'संसद' में जब उपेन्द्रनाथ 'अश्क' रहते थे तो वहाँ जाना ही रहता था। 'साहित्यकार संसद' के प्रतिनिधि के रूप में उनसे थोड़ा मतभेद हो सकता है; पर इसमें तो सन्देह ही नहीं कि वे बड़ी प्रतिभाशालिनी हैं।"

असंतोष पंत जी को जीवन से बहुत रहा है। उनकी विदेश यात्रा की अभिलाषा पूरी न हो सकी। कारण भी स्पष्ट है—इसके लिए पर्याप्त धन की आवश्यकता होती है। और सबसे बड़ा जीवन में असंतोष तो यह है कि आजीवन उन्हें कुँवारा ही रहना पड़ा है और अब उनकी विवाह करने की इच्छा भी नहीं होती। वे कहते हैं—"सन् १६२१ में जब मैंने कालेज छोड़ दिया, आर्थिक द्वार तो मेरे लिए उसी दिन बंद हो गया था। मेरी माँ नहीं रही। पिता भी चले गये। भाइयों ने विशेष काम नहीं किया। इस प्रकार घर का सहारा भी चला गया। मैं अच्छे ढंग से पला हूँ, अच्छे ढँग से रहने का आदी हूँ और सभी बहुत अच्छे ढँग से रहें इस बात का पक्षपाती हूँ ऐसी दशा में क्या यह न्याय संगत था, क्या यह व्यावहारिक था, क्या यह संभव भी था कि मैं विवाह की बात सोचता ?"

हिन्दी-काव्य के उन्नायकों में पंत का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। उनके रेशम से कोमल कुंचित केश, उनका प्रशस्त ललाट उनकी चमकती हुई आँखें, उनका सुगठित शरीर जहाँ हमें उनके शारीरिक सौन्दर्य का परिचय देता है, वहाँ उनकी वेषभूषा, उनका रहन सहन, उनकी चाल ढाल से हमें उनके आन्तरिक सौन्दर्य का, उनकी कला-प्रियता का भी आभास मिलता है। उनके कौशल से काढ़े काले घुँघराले बाल तथा उनकी सज्जा, वेषभूषा, मुद्राएँ और रुचि पूर्ण भंगिमाएँ—पंत के व्यक्तित्व को सुघर प्रभाव शाली और कलात्मक बना देती हैं। यद्यपि वे ५५ वर्ष के हो चुके हैं, पर बच्चन जी के शब्दों में—"जब मैं उनकी पच्चीस वर्ष पूर्व की तस्वीर याद करता हूँ तो अक्सर मेरे दिमाग में उर्दू का एक शेर चक्कर काट जाता है :—

मैंने पूछा अब कहाँ है, आपका हुस्नो जमाल,
हँस के बोला वह सनम शाने खुदा थी, मैं न था।

लेकिन पचपन वर्ष की आयु के लोगों को खड़ा करके देखा जाए तो निश्चय ही पंत जी इन सब में सुन्दर एवम् कलात्मक निकलेंगे। पंत जी की वेश-भूषा में मौलिकता रहती है। गर्मियों में साधारणतया ये पाजामा, कुर्ता तथा पैंट और कमीज पहनते हैं, धोती पहनते हुए इन्हें देखा नहीं

गया। जाड़ों में 'लैदर कोट' या 'ओवर कोट' के साथ इनकी 'नाइटकैप' खूब फबती है। 'स्लीपिंग गाउन' में पंत जी अत्यन्त सुन्दर लगते हैं। चश्मा लगाने पर इनके चहरे की सुन्दरता और भी बढ़ जाती है। पंत जी के पास चश्मे भी कई हैं—एक गोल्डन फ्रेम का, एक टारटाइजशेल का तथा एक हलके नीले शीशों वाला। तीनों प्रकार के चश्मों का ये विभिन्न अवसरों पर प्रयोग करते हैं। पंत जी की वेश-भूषा की सी ही मौलिकता इनके वस्तुओं के नामकरण करने की रुचि में मिलती है। ये अपने ढंग के बड़े ही कलात्मक नाम रखते हैं। रेडियो में पहुँचने पर इन्होंने वहाँ के कई कार्यक्रमों को सर्वथा नवीन नाम दिये हैं—जैसे प्रभात के समय प्रसारित होने वाली गीत-योजना को 'ज्योति स्पर्श' तथा ऐसे ही कुछ और नाम जैसे 'चयनिया', 'युगैक्या' इत्यादि।

स्वभाव से पंत जी बड़े ही निश्छल और सरल हैं, बात को घुमा फिरा कर कहना नहीं जानते। नीतिज्ञों के सदृश वे बातें नहीं करते। कोई अधिक प्रतिवाद करता है तो दूसरे का दोष भी अपने सिर पर ओढ़ कर विवाद को शांत कर देते हैं। बात करते समय शिष्टता कभी उनका साथ नहीं छोड़ती। बात को वे विवाद के धरातल से खींच कर और व्यक्तिगत सम्बन्ध से मुक्त कर के एक उच्च स्तर पर ले आते हैं, जहाँ सभी प्रकार की क्षुद्रताएँ और संकीर्णताएँ स्वयं लुप्त हो जाती हैं। इस प्रकार वे बड़े ही विचारशील एवम् विवेकशील व्यक्ति हैं। पंत जी के स्वभाव में पहाड़ी झरनों का सा विद्रोह, तीव्रता तथा मुखरता नहीं, प्रत्युत फूलों के मध्य से गुजरने वाली मंद सरिता की सी गम्भीरता, समरसता और दृढ़ता है। संघर्ष के बीच वह भी बही है पर रास्ते के पत्थरों को नष्ट भ्रष्ट करके नहीं, बल्कि उन्हें डुबो कर या उनसे बचकर। पंत जी के जीवन का संघर्ष निस्संदेह झंझा में उन विशाल वृक्षों की भाँति नहीं रहा जो अपनी मुखरता से समस्त वन-प्रांतर और उप-प्रांतर को गुँजा देते हैं, और कभी-कभी उतनी ही मुखरता के साथ टूट कर गिर भी पड़ते हैं, प्रत्युत उस ललिता की भाँति रहा है जो झंझा के हाथों से झकझोर दी जाने पर भी अपने भीतर के रस और

कोमलता से सदैव परास्त ही करती आई है। पंत जी का स्वभाव है कि वे दूसरों की निन्दा कभी नहीं करते। अविश्वास की रेखाएँ कभी उनके मस्तिष्क एवं आत्मा में विकृति पैदा नहीं करतीं और यही कारण भी है कि आज के संदेहवादी युग में पंत के हृदय का सहज विश्वास एक आश्चर्य का विषय है। कोमलता, शिष्टता और मिष्टता इनके स्वभाव के तीन मिले-जुले रंग हैं, जो पहले परिचय में ही आगन्तुक के हृदय पर अपनी गहरी छाप छोड़ देते हैं। बात चीत के साथ-साथ पंत जी के अंग प्रत्यंग का संचालन उसे और भी प्रभावोत्पादक बना देता है। बात चीत के मध्य में अपने अभिनय, विभिन्न प्रकार की मुख मुद्राओं तथा भावभंगिमाओं से कभी-कभी वे दर्शकों को खूब हँसा भी देते हैं। अतः यह विश्वास करना ही पड़ेगा कि यदि उन्हें अभिनय-कार्य सौंप दिया जाय तो निश्चय ही पंत जी विश्व कवि रवीद्रनाथ जी की भाँति सफल अभिनेता होने के साथ साथ रंगमंच का संचालन भी बड़ी ही कुशलता-पूर्वक कर सकते हैं। शरीर मन और स्वभाव की सुन्दरता के साथ पंत जी के व्यक्तित्व में एक चौथे प्रकार की सुन्दरता भी है—वातावरण की। वे स्वस्थ, स्वच्छ और सुन्दर वातावरण में रहने के अभ्यासी हैं। जहाँ पर वे रहते हैं, वहाँ भी सभी वस्तुएँ ठीक स्थान पर ठीक ढंग से रखी हुई मिलेंगी। रंगों का ज्ञान भी उनका ऐसा विरल है कि सब मिलाकर दृश्य बहुत ही नयनाभिराम लगता है। फर्श, द्वार के पर्दों, सोफे के गद्दों, तकियों के खोलों, और मेजपोश. भिन्न रंग और डिजाइन के मिलेंगे, पर वे सब मिलकर पंत जी की किसी वर्ण योजना के अंग बन जाते हैं। अपने बँगले के पुष्पों, लताओं और चित्रों में सब से सुन्दर वस्तु स्वयं पंत जी ही हैं। इस प्रकार पंत जी शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा सभी से पूर्ण सुन्दर हैं। सत्य, शिव और सुन्दर के वे चिरन्तन उपासक, प्रतिष्ठापक एवम् पूर्ण प्रतीक हैं। वे अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कला प्रेमी हैं। प्रकृति सुन्दरी की गोद में पैदा होने के कारण, उन्हें प्रकृति से वर्ड्सवर्थ (Wordsworth) की भाँति अनन्य प्रेम है और यही प्रेम उनकी अद्वितीय काव्य प्रेरणा का रहस्य भी है। उनके अनुपम व्यक्तित्व में जो एक साथ ही शालीनता, चिन्तन शीलता, सौम्यता, दार्शनिकता,

कल्पना-प्रवरता, कल्पना एवं उदारता के दर्शन होते हैं, वे सब उनके प्रकृति-अनुराग के कारण ही हैं। पर प्रकृति प्रेम ने यदि एक ओर उनमें इन विशेषताओं को प्रतिष्ठापित किया है, तो दूसरी ओर उसने उन्हें जन-भीरु भी बना दिया है। यही कारण है कि पंत जी जन-समूह से अब भी बहुत ही दूर भागते हैं। पंत जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनका अन्तर्व्यक्तित्व जितना कोलाहलपूर्ण और गम्भीर है उतना ही उनका बहिर्व्यक्तित्व उल्लासपूर्ण है। व्यक्तित्व के इन दोनों रूपों के समन्वय में ही कवि का यथार्थ परिचय एवम् दर्शन मिलता है। उनकी अन्तर्भेदिनी दृष्टि में व्यक्तियों के अन्तस्तल तक पहुँचने की क्षमता है। दैनिक जीवन में वह अपने ऊपर उतना ही भार रखना चाहते हैं जितने से वह स्वस्थ रह कर जीवन को जीवन रूप में निर्वाह करने में सफल हो सकें। कवि के साथ ही वह अच्छे गायक और सुन्दर वाद्यकार भी हैं। इनके बहुत से गीतों की सृष्टि संगीतात्मक राग-रागनियों के आधार पर हुई है। निराला जी की भाँति ये भी प्रायः अपने गीतों को राग-रागनियों के बन्धनों में बाँध कर सुनाते हैं। कवि मिल्टन (Milton) ने कहा है कि कवि होने के हेतु कवि का जीवन एक काव्य होना अपेक्षित है। इस दृष्टि से पंत जी वास्तव में कवि हैं। पंत जी अपने चारों ओर की परिस्थितियों एवं जन-समाज में भी ऐसा ही काव्य-रूप चाहते हैं कि उसके हृदय से काव्य का उत्स प्रवाहित हो सके। वे सौंदर्य द्रष्टा भी हैं और सौंदर्य स्रष्टा भी। अपने हृदय में स्थित सौन्दर्य के अगाध सागर को वे काव्य के माध्यम से जन-समाज की शिराओं में प्रवाहित करना चाहते हैं। एक स्थान पर इन्होंने लिखा भी है :—

'मैं सुन्दरता में स्नान कर सकूँ प्रति क्षण
यह बने न बंधन।'

प्रेम को भी ये एक विराट् भावना के ही रूप में स्वीकार करते हैं, बन्धन के रूप में नहीं। जो इनके स्वप्नों को कुण्ठित कर दें, स्वाधीनता को पंगु करदे तथा भावों को संकीर्णता की परिधि में जकड़ दे, ऐसा कोई भी बन्धन

इन्हें स्वीकार नहीं। सुख दुख के प्रति पंत जी का दृष्टिकोण एक शुद्ध दार्शनिक का सा है। इसी से वे कहते भी हैं—

मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख;
सुख दुख की आँख मिचौनी
खोले जीवन अपना मुख!

सुख दुख में सदैव इनकी दृष्टि साम्य ढूँढ़ती है—

जग पीड़ित है अति दुख से
जग पीड़ित रे अति सुख से,
मानव जग में बँट जायें
दुख-सुख से औ सुख-दुख से!

अन्तः और बाह्य सब में सामंजस्य स्थापित करना ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य है। विश्व वेदना की वह्नि में दीपक की 'लौ' की भाँति मंद मंद गल कर अकलुष, अनिंद्य तथा कोमल बनना ही उनके मन की साध है। प्रत्येक ताप में सौन्दर्यानुभूति करना उनका ध्येय बन गया है—

"तपरे मधुर मधुर मन!
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ कोमल,
तपरे विधुर-विधुर मन!"

पंत जी सदैव बाह्य जगत और आन्तरिक चेतना में सामंजस्य चाहते हैं। वे यंत्र और जीवन का समन्वय चाहते हैं। उनका विश्वास है कि भौतिक तत्वों में दिव्य तत्वों के समावेश से ही जन-जीवन कल्याणमय हो सकता है। यही पन्त जी के राम राज्य की कल्पना भी है और यही है उनका स्वर्णिम स्वप्न। इसी सत्य की पूर्ति के लिये पन्त जी ने 'लोकायन' नामक संस्था की स्थापना की है। वे इस संस्था द्वारा युग चेतना तथा लोक चेतना के

स्तर को उठाना चाहते हैं। किशोरावस्था से ही व्यक्तिगत जीवन के सुख-दुःख के रंगीन और कोमल स्वप्नों से अभ्यस्त आँखें, आज एक विश्व व्यापी सुख और शांति के विराट स्वप्न को सँजो रही हैं, अपने ही जीवन के सौरभ में डूबे हुए और परिमल में भीगे हुए पंख, जो केवल तितलियों और फूलों के सौन्दर्य को ही अपनी दृष्टि में भर पाते थे, आज एक विराट सौन्दर्याकाश का अवगाहन करने लगे हैं। कवि के हिमालय की छाया में पले स्वप्न आज गगन-चुम्बी शिखर पाना चाहते हैं।

यद्यपि इनकी सरल स्निग्ध जीवन ज्योति को अनेकों बार झंझाओं से जूझना पड़ा है पर ये सदैव उनसे बचकर निकल गये हैं और आज युग-पथ पर अपनी आलोक रश्मियाँ बिखेर रहे हैं। इनकी अमर चेतना का प्रदीप युग-युग तक निरंतर जलता रहे और हम सदैव उसके प्रकाश का आभास पाते रहें, यही कामना है।



पंत की काव्य कला और कृतियाँ

* * *

छाया युग की प्रसाद, पंत और निराला त्रयी प्रसिद्ध हैं। इनमें प्रत्येक का अपना-अपना निजी व्यक्तित्व है। 'प्रसाद' ने 'माया' (नारी) 'पंत' ने 'प्रकृति' और 'निराला' ने 'पुरुष' के प्रति अधिक अभिलाष व्यक्त किये हैं और इस प्रकार आधुनिक हिन्दी काव्य में विविधता के दर्शन कराये हैं। पंत जी हिन्दी के युग प्रवर्तक कवि हैं। पंत जी का व्यक्तित्व उनकी कविता में पूर्ण रूपेण दृष्टिगोचर होता है परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वह केवल काव्य के क्षेत्र में ही सांस लेते हैं। व्यवहारिक बाह्य जीवन में भी उनका पर्याप्त स्थान है। पर फिर भी उनके व्यक्तित्व के सम्पूर्ण मूल्यांकन करने के हेतु हमें उनकी काव्यधारा की ओर ही दृष्टिपात करना पड़ेगा। पंत जी की अभी तक निम्न कविता पुस्तकें हमारे सामने आ चुकी हैं। उनका रचना काल की दृष्टि से क्रम इस प्रकार है :—(१) वीणा (१९१८), (२) ग्रन्थि (१९२०), (३) पल्लव (१९२२-२६), (४) गुञ्जन (१९२६-३२), (५) युगान्त (१९३५), (६) युगवाणी (१९३७-३९), (७) ग्राम्या (१९४०), (८) स्वर्ण किरण (१९४७), (९) स्वर्ण-धूलि (१९४८), (१०) मधुज्वाल (१९४८), (११) युगपथ (१९४९), (१२) उत्तरा (१९४९), (१३) अतिमा (१९५५)। इनके अतिरिक्त कवि ने इन्हीं संग्रहों में से चुन कर दो रचना-संग्रह और सम्पादित किये हैं, जो 'पल्लविनी' और 'आधुनिक कवि' (नं० २) नाम से प्रकाशित हुए हैं।

आँख खोलते ही कवि ने हिमालय के अनुपम सौन्दर्य को देखा। प्रकृति चिर तरुणी, चिर विकासोन्मुखी है, अतः उसका कवि पंत भी सदैव

विकसित होता रहा। पंत के किशोर कवि में प्रकृति के मार्ग से परोक्ष सत्ता के प्रति कुतूहल का भाव जाग्रत होता है परन्तु आयु व परिस्थिति के साथ साथ उसकी भावना में भी परिवर्तन होता जाता है। अतः हम कवि की 'वीणा' में अरूप सत्ता का, 'ग्रन्थि' में रूप जगत का—विशेषतः नारी रूप का—'पल्लव' में प्रकृति का, 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में समाज का, 'स्वर्ण किरण' 'स्वर्ण धूलि' तथा 'उत्तरा' में अवचेतन मन का आत्मोन्मुख-विकास-स्वर सुनते हैं। कवि को काव्य प्रणयन की प्रेरणा वास्तव में प्रकृति निरीक्षण से ही प्राप्त हुई है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका में स्वयं कवि ने स्वीकार किया है "कि कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्म भूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घन्टों एकान्त में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था; और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर एक अव्यक्त-सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था तो वह दृश्य पट, चुप चाप मेरी आँखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल, कूर्मांचल की छायांकित पर्वत श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत मुकुट हिमालय को धारण किये हुई हैं, और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाये हुई हैं; किसी भी मनुष्य को अपने महान् नीरव सम्मोहन के आश्चर्य में डुबा कर, कुछ काल के लिये भुला सकती हैं! और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गम्भीर आश्चर्य की भावना, पर्वत की तरह, निश्चय रूप से, अवस्थित है। प्रकृति के साहचर्य से जहाँ एक ओर मुझे सौन्दर्य, स्वप्न और कल्पना जीवी बनाया, वहाँ दूसरी ओर जनभीरु भी बना दिया। मेरा विचार है कि 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक मेरी सभी रचनाओं में प्राकृतिक-सौन्दर्य का प्रेम किसी रूप में वर्तमान है।

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
'बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन!'

आदि वीणा के चित्रण, प्रकृति के प्रति, मेरे अगाध मोह के साक्षी हैं। प्रकृति निरीक्षण से मुझे अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना में अधिक सहायता मिली है, कहीं उससे विचारों की भी प्रेरणा मिली है। प्राकृतिक चित्रणों में प्रायः मैंने अपनी भावनाओं का सौन्दर्य मिलाकर उन्हें ऐन्द्रिक चित्रण बनाया है, कभी-कभी भावनाओं को ही प्राकृतिक-सौन्दर्य का लिवास पहना दिना है।........प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखने वाली, नारी के रूप में देखा है। साधारणतः प्रकृति के सुन्दर रूप ही ने मुझे अधिक लुभाया है।'—(आधुनिक कवि) यह किशोर मनोवृत्ति, जिसने परोक्ष को झाँकने की जिज्ञासा उत्पन्न की थी, शीघ्र ही प्रकृति की ओर सघन हो गई और फिर प्रकृति से व्यष्टि (नारी) में केन्द्रित हो गई। पर यह अवस्था भी अधिक न ठहर सकी। कवि पुनः व्यष्टि से समष्टि तथा समष्टि से पुनः व्यष्टि की ओर उन्मुख दीख पड़ता है। हेगल (Hegel) का कथन है कि कवि संसार के अन्तःकरण में प्रविष्ट होकर आत्मानुभूति प्राप्त करता है और उस अनुभूति को अपनी प्रवृत्ति (Mood) के अनुसार व्यक्त करता है। पंत का कवि लहरी (Moody) है। प्रारम्भ में कवि ने अन्तर्मुखी बन आत्मा का शब्द सुना और फिर उसे धीरे-धीरे प्रकृति का मौन निमंत्रण मिलने लगा और इस प्रकार कवि। अन्तर्मुखी से बहिर्मुखी होता गया, पर यह स्थिति भी कुछ ही काल तक रही और कवि को फिर किसी के घने, गहरे रेशम के बालों का अनुपम सौन्दर्य उलझाने लगा। अब कवि पूर्णतः व्यष्टि रूप की ओर मुड़ा और मानवीय सौन्दर्य का गायक बन बैठा—

"तुम्हारे रोम-रोम से नारि।
मुझे है स्नेह अपार।
तुम्हारा मृदु उर में सुकुमारि।
मुझे है स्वर्गागार।
तुम्हारे गुण हैं मेरे गान
मृदुल, दुर्बलता, ध्यान,

तुम्हारी पावनता अभिमान
शक्ति पूजन सम्मान,
तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु औहास
सृष्टि के उर की सांस"

और भी,

"तुम्हारी आँखों का आकाश, सरल आँखों का नीलाकाश।
खोगया मेरा खग अनजान, मृगेक्षिणि! इनमें खग अज्ञान।"

पर नारी का प्रेम, उसका सौन्दर्य कवि की तृषा को शांत न कर सका। कवि के मन को नारी से निराशा मिली और कवि पुनः व्यष्टि से समष्टि की ओर झुका। पर कवि को ज्ञात होता है कि, बिना व्यक्ति के आत्मिक विकास के, समाज का विकास सम्भव नहीं है, और वह मानसिक प्रवृत्ति के धरातल पर भौतिक तथा आध्यात्मिक समन्वय के लिये आतुर हो जाता है। उसे विश्वास हो जाता है कि इसी समन्वय के द्वारा मानव को पूर्ण किया जा सकता है अथवा इसी समन्वय में मानव की पूर्णता निहित है। कवि आत्मा को 'मानव-मन' का परिष्कृत रूप मानता है। इसी लिये कवि गाता है—

'आज हमें मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख।'

इस प्रकार गुञ्जन तक पहुँचते-पहुँचते कवि की किशोर भावना का सौन्दर्य-स्वप्न जैसे विशृंखल हो गया। अपनी अनुभूति की अनुपयोगिता से आहत होकर उसने अपने चिन्तन का क्षेत्र विकसित कर लिया और प्रकृति के माध्यम से असीम चेतन तक पहुँचने की जो एक अज्ञात लालसा उसके अन्तर में छिपी थी उससे हठात् विमुख होकर जीवन के अशेष विफल पथ पर वह सक्रिय चिह्नों की खोज में निकल पड़ा। कवि ने जीवन की सूक्ष्मता में पैठकर उसके चिरन्तन स्वरूप को हृदयंगम करने का प्रयास किया। कवि सौन्दर्य स्रष्टा से जीवन द्रष्टा बन बैठा। उसकी कलात्मक चेतना विकसित होते-होते प्रकृति के माध्यम से मानवात्मा में प्रविष्ट हुई और

इन्हीं से अन्तभू त रूप-व्यापारों ने उसके हृदय पर मार्मिक प्रभाव डालकर उसके भावों का प्रवर्त्तन किया। 'ज्योत्सना' में कवि ने लिखा भी है—

"न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर
देवता यही मानव शोभन,
अविराम प्रेम की बाँहों में
है मुक्ति यही जीवन बन्धन!"

यह बात स्मरण रखने की है कि पंत जी की आध्यात्मिकता धार्मिक भूमि पर स्थित नहीं है। वह मनोवैज्ञानिक है। उन पर विवेकानन्द का प्रभाव गहरा तथा अमिट रूप में पड़ा है। इसीलिये वे अद्वैतवाद के मूल सिद्धान्त विभिन्नता में एकता (Unity in diversity) के दर्शन होते हैं। पाश्चात्य मानववाद भी अद्वैतवाद के इसी सिद्धान्त की प्रतिध्वनि है। पंत जी की 'ज्योत्स्ना' इसी मानववाद की साक्षी है, जिसका विकास 'युगान्त' के पश्चात् 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में विशद रूप से हुआ है। अद्वैत-वाद अथवा मानववाद के साथ ही साथ इनकी रचना के समय कवि पर मार्क्सवादी तथा गांधीवादी, दो एक दूसरे से पूर्ण विपरीत, सिद्धान्तों का भी यथेष्ट प्रभाव पड़ा। मार्क्सवादी सिद्धान्तों के प्रभाव में आकर पंत जी की विचार धारा बन गई थी कि "बाह्य परिस्थितियों के बदलने से सांस्कृतिक चेतना में परिवर्तन होता है।" मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना उसकी वस्तु-परिस्थितियों से निर्मित सामाजिक सम्बन्धों का प्रतिबिम्ब है।" पर उनकी वृत्ति इसमें अधिक न रम सकी। सन् १९४४ के पश्चात् उनकी धारणा परिवर्तित होती गई—

"सामाजिक जीवन से कहीं महत् अन्तर्मन।"

कवि के इस परिवर्तित दृष्टिकोण पर अरविन्द की आत्मविकासवादी साधना का प्रभाव पर लक्षित होता है। इस प्रकार पंत का कवि गत्यात्मक (Dy namic) है। आन्तरिक और वाह्य परिस्थितियों से वह सतत् प्रभावित होता रहता है। "मैंने अपने युग की, विशेषतः देश की प्रायः सभी महान् विभूतियों से किसी न किसी रूप में प्रभाव ग्रहण किया है। 'वीणा,'

'पल्लव' काल में मुझ पर कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव रहा है, 'युगान्त' एवं बाद की रचनाओं में महात्मा जी के व्यक्तित्व तथा मार्क्स के दर्शन का। किन्तु इन सब में जो एक परिपूर्ण एवम् सन्तुलित अन्तर्दृष्टि का अभाव खटकता था उसकी पूर्ति मुझे भी अरविन्द के जीवन दर्शन में मिली।........इस अन्तर्दृष्टि को मैं विश्व-संक्रान्ति काल के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण एवम् अमूल्य समझता हूँ।" कवि सामूहिक सुख दुखों एवम् जीवन वैषम्य में झाँकने को उत्सुक दीख पड़ा—

"मानव! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति?
आत्मा का अपमान प्रेत औ' छाया से रति।"

चिर पीड़ित मानवता के स्नेहलस्पर्श से उसमें नीरव क्रान्ति का उद्भव हुआ और कवि ने जीवन का अधिक व्यापक और चिरन्तन स्वरूप आँका—

"मिट्टी से भी मटमैले—तन
फटे, कुचैले, जीर्ण वसन—
× × ×
कोई खण्डित, कोई कुण्ठित
कृश बाहु, पसलियाँ रेखांकित
टहनी सी टाँगें, बड़ा पेट
टेढ़े मेढ़े विकलांग घृणित
× × ×
लोटते धूलि में चिर परिचित।"

किन्तु कवि की आत्मा अधिक समय तक इस बौद्धिक स्वीकृति से आश्वस्त न हो सकी। भौतिक संघातों से ऊबकर वह पुनः चिरन्तन सत्य और कल्पना के समानान्तर शाश्वत सनातन गुणों की ओर आकृष्ट हुआ। 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्णधूलि' में कवि की आत्मा का मुक्त उल्लास, साधना

की तल्लीनता और शाश्वत जीवन जागृति की स्फूर्ति है। उसे जीवन की पूर्णता में स्वर्णिम आभा और एक नया आलोक फूटता दिखाई देता है—

यह छाया भी है अविच्छिन्न
यह आँख-मिचौनी चिर सुन्दर
सुख-दुख के इन्द्र धनुष रंगों की
स्वप्न सृष्टि अज्ञेय, अमर।"

'युगपथ,' 'उत्तरा' आदि कवि की परवर्त्ती कृतियों में उसकी आत्मभाव की परिधि व्यापक होती गई है। जीवन का स्थूल अर्थ, यथार्थता और अनुक्रम मानों मिट गया है, उसके स्तब्ध प्राण अति मानवी, अलौकिक परिव्याप्ति, किसी अन्तर्भव सत्य से अनुप्राणित है। कलाकार और मानव चेतना में जो सहज विद्रोह उठ खड़ा हुआ था वह तिरोहित हो गया। जीवन के स्थूल पहलुओं से आज वह एक विशाल आत्मा की अन्तर्साक्षी में रम गया है। महात्मा जी ने जिस प्रकार सत्य के प्रयोग किये थे उसी प्रकार सम्भवतः पंत भी हिन्दी कविता क्षेत्र में अपनी प्रवृत्तियों का प्रयोग प्रकाशित करते दृष्टिगोचर होते हैं। उनके कौन कौन से प्रयोग स्थायित्व प्राप्त करेंगे अथवा कर सकेंगे, यह काल के गर्भ की बात है, परन्तु यह निस्सन्देह एवं निस्संकोच कहा जा सकता है कि किशोर कवि पंत लक्षणात्मक अभिव्यक्त रखते हुए भी अधिक प्रासादिक हैं और प्रौढ़ कवि पंत अभिधामूलक अभिव्यक्ति में भी दुरुह हैं। उनकी आधुनिकतम कविताएँ अव्यक्त मनके उच्च स्तरों का ज्ञान कराना चाहती हैं। 'उत्तरा' में स्वयं कवि ने लिखा है—"एकता का सिद्धान्त अन्तर्मन का सिद्धान्त है, विविधता का सिद्धान्त बहिर्मन तथा जीवन के स्तर का; दूसरे शब्दों में एकता का दृष्टिकोण ऊर्ध्वदृष्टिकोण है और विभिन्नता का समदिक् विविध तथा अविभक्त होना जीवन सत्य का सहज अन्तर्जात गुण है। इस दृष्टि से भी ऐसे किसी विश्व जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती, जिसमें ऐक्य तथा वैचित्र्य संयोजित न हो।" इस कथनमें भी कवि का बाहरी और भीतरी योग लक्षित है। कवि ने आदर्श और वस्तुवादी दृष्टिकोणों में केवल धरातल का ही भेद माना है और उन धरातलों को परस्पर अविच्छिन्न

रूप में जुड़ा हुआ अनुभव किया है। सत्यं, शिवं सुन्दरम् संस्कृति तथा कला का धरातल है, भूख और काम प्राकृतिक आवश्यकताओं का। संस्कृति को कवि ने हृदय की शिराओं में बहने वाला मनुष्यत्व का रुधिर माना है। 'ग्राम्या' में सांस्कृतिक समस्या की ओर कवि ने इङ्गित किया है। 'ग्राम्या' की प्रथम कविता में ही कवि ने एक स्वप्न देखा है—

"जाति वर्ण की, श्रेणि वर्ग की तोड़ भित्तियाँ दुर्धर,
युगयुग के बन्दी गृह से मानवता निकली बाहर।"

'ग्राम्या' में वस्तुतः चेतन मन की क्रीड़ा का उद्देश्य उपचेतन मन पर विजय पाना कहा गया है। भीतर-बाहर की खाई पटाना ही कवि के काव्य का लक्ष्य प्रतीत होता है। 'ग्राम्या' में इसीलिए भौतिकवादिता के साथ सांस्कृतिक विकास का आग्रह घोषित किया गया है—

"राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत के सम्मुख,
अर्थ साम्य भी मिटा न सकता मानव जीवन के दुख—
आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित
विविध जाति वर्गों, धर्मों का होना सहज समन्वित,
मध्य युगों की नैतिकता को मानवता में विकसित।"

इस प्रकार कवि की मानसिक उथल पुथल का थोड़ा-बहुत आभास मिल जाता है। कवि विवेकानन्द के सार गर्भित कथन—"मैं योरोप का जीवन सौष्ठव तथा भारत का जीवन दर्शन चाहता हूँ"—को अपने युग के अनुरूप चरितार्थ करना चाहता है। युग मानव अध्यात्मिक, मानसिक और भौतिक संचय को 'परस्पर संयोजित' कर सके, यही कवि का स्वप्न प्रतीत होता है। इस प्रकार 'वीणा' से 'उत्तरा' तक आते आते कवि ने एक गहरे पाट को लाया है। और आज वह अनेक चक्करदार मोड़ों से निकल कर अपने अभीप्सित पथ पर आ गया हूँ। अब उसे किस ओर मुड़ने की प्रेरणा मिलेगी यह भविष्य की बतलायेगा।

पंत जी हिन्दी साहित्य के एक जागरुक कवि हैं। उन्होंने हिन्दी संसार को अपनी जो रचनाएँ दी हैं उनमें भाषा की नवीनता है, भावों का

माधुर्य है और विचारों की गम्भीरता है। समयानुसार इनकी रचनाओं में परिवर्तन होता रहता है अर्थात् 'पल्लव' और 'गुंजन' के पन्त 'ज्योत्सना' के पन्त नहीं हैं और 'ज्योत्सना' के पन्त 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' के पंत नहीं हैं तथा 'ग्राम्या' के पंत 'स्वर्णधूलि' और 'उत्तरा' के पंत नहीं हैं; पर इस विभिन्नता के कारण पंत के कवि के विकास में कहीं भी बाधा नहीं पड़ी है। 'वीणा' से 'उत्तरा' तक उनके विचारों, भावों और काव्य-सौंदर्य में होने वाले परिवर्तन को तीन भागों में वर्गीकृत करने पर भी उनकी कला के विशेष प्रवाह में प्रारम्भ से लेकर अब तक एक रुपता है, जो उनकी अपनी शैलीगत विशेषता है। पंत जी की रचनाओं का प्रथम एवम् प्रारम्भिक युग उनकी सौन्दर्य-भावनाओं का युग है। इस युग के अन्तर्गत कवि की 'वीणा' से 'युगांत' तक की रचनाओं को लिया जा सकता है। इन रचनाओं का काल सन् १९१८ से सन् १९३५ तक आंकना चाहिये। पंत प्रकृति सुषमा के सुकुमार कवि हैं। उनकी रचनाओं में प्रकृति के मनोरम रूप का जैसा सुन्दर चित्रण हुआ हैं वैसा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। उनकी सौन्दर्यानुभूति की कविताओं में मंद मंद संगीत है, सघन झंकार नहीं। प्रकृति के सुखद व्यापारों की ओर उनका ध्यान अधिक आकृष्ट हुआ है, प्रकृति के उग्ररूप का चित्रण उनकी रचनाओं में बहुत कम है। 'वीणा' को बहुत सो कविताओं को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो स्वयं प्रकृति ने नवीन शोभा, नवीन सुषमा, नवीन मधुरिमा और नवीन मृदुलिमा ने उनके गीतों में सहज सौन्दर्य का प्रसार किया है। 'वीणा' में कवि ने प्रकृति प्रेम के अतिरिक्त एक आदर्श भावना की भी छोटी सी झलक मिलती है। 'वीणा' के गीत कवि के प्रकृति-प्रेम और प्रारम्भिक आदर्श-भावना के स्वरूप और शब्दमय मूर्तिमान चित्र हैं। जैसे :—

तुम अदृश्य हो, दृग अगम्य हो,
किसे छिपाए हो छबिमान !
मेरे स्वागत भरे हृदय में
प्रियतम ! आओ, पाओ स्थान !'

शनैः शनैः पंत जी का अध्ययन बढ़ता रहा और वे श्रीमती सरोजिनी

नायडू और कवीन्द्र रवीन्द्र के गीतों से विशेष प्रभावित हुए। इसी समय इन्होंने कालिदास का 'रघुवंश' भी पढ़ा और इसकी कल्पनाओं तथा चमत्कारिक उपमाओं से भी प्रेरणा गृहण की। इस समय की उनकी कृति 'ग्रन्थि' है। 'ग्रन्थि में विशेषतः प्रेमानुभूति सम्बन्धी रचनाएँ हैं। 'ग्रन्थि' वियोग शृङ्गार का काव्य है जो एक युवक की प्रणय-कहानी पर आधारित है। इसका नायक स्वयं कवि है और इसकी कथा, अतः, आत्मजीवन से ही ली गई है। सायंकाल के समय नायक की नौका जल में तिरोहित हो जाती है, और वह इसकी अतल गहराई में संज्ञाहीन हो जाता है, पर जब उसे चेत होता है तो वह अपने को एक कोमल सुन्दर बालिका के क्रोड़ में सिर रखे पाता है शनैः शनैः उसका प्यार विकसित होता है पर कवि को इस प्रणय में निराश मिलती है और नायिका का ग्रन्थि-बन्धन किसी दूसरे के साथ हो जाता है। इस प्रकार यह कथा दुखान्त वातावरण में समाप्त होती है। 'ग्रन्थि' में प्रेम, परिहास, रति, स्मृति; आशा; अश्रु, वेदना, उन्माद आदि वियोय शृङ्गार के सुन्दर उपकरणों का भावनामय चित्रण है। कवि प्रेम को लक्ष्य करके कहता है—

"ओ भोले प्रेम! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से, जहाँ
× × ×
+ + +
पर नहीं तुम चपल हो अज्ञान हो,
हृदय है मस्तिष्क रखते हो नहीं।"

गीतिमयता इस काव्य की विशेषता है। कला की दृष्टि से भी यह दुःखान्त वर्णनात्मक शैली की अत्यन्त सुन्दर अलंकृत रचना है। अलंकारों और उक्तियों ने उनके नये हाथों में पड़कर बड़ी ही अनूठी छटा दिखाई है। 'पल्लव' की रचनाओं में शब्द, रचना और ध्वनि सौन्दर्य के विशेष दर्शन होते हैं। वीणा काल की रचनाओं में एक रहस्यमय बालिका का सा सौन्दर्य है जो 'पल्लव' में आकर यौवन के रस को, मांसलता को और विशेष संवेदन-

शीलता को प्राप्त कर लेता है। 'पल्लव' की 'उच्छ्वास' और 'आंसू' शीर्षक कविताएँ अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़ी है। इन रचनाओं का आधार कवि की विशेष आत्मानुभूति है। 'आंसू' में पंत जी कहते हैं:—

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुपचाप; बही होगी कविता अनजान।"

वेदना की अनुभूतियों के चित्रण में पंत जी को बहुत सफलता मिली है। प्रेम की अनुभूति अन्तर की है, अतः इनकी रचनाओं में प्रभविष्णुता तथा सत्यता है। प्रेमवृत्ति की परिधि के अन्तर्गत आने वाली जितनी सुकुमार भावनाओं की व्यंजना इन्होंने की है, उतनी संभव है, आधुनिक कवियों की रचनाओं में नहीं देखने को मिलती। 'पल्लव' में प्रेमगीतों के अतिरिक्त कल्पना प्रधान और भाव प्रधान उत्कृष्ट रचनाएँ है। 'वीचिविलास' विश्व-बेणु, निर्झरगान, निर्झरी, और नक्षत्र आदि कविताएँ कल्पना प्रधान रचनाएँ हैं। मोह, विसर्जन, मुस्कान, स्मृति, मधुकरी आदि 'पल्लब' की भावप्रधान कविताएं हैं। 'विसर्जन' और 'मुस्कान' उत्कृष्ट गीति-काव्य हैं। वालापन, छाया, मौन निमंत्रण, बादल और स्वप्न रचनाओं में भाव और कल्पना का सुन्दर समन्वय बन पड़ा है। नारी, विश्व-व्याप्ति, जीवन-यान और शिशु आदि रचनाओं में चिन्तन की प्रधानता है। 'पल्लव' की भाषा अत्यन्त सुगठित, प्रवाहपूर्ण और प्रगीत काव्य के सर्वथा अनुकूल है। 'पल्लव' में कवि का दार्शनिक पक्ष और विचारधारा पिछली रचनाओं से अधिक जागरुक है। कवि के अपने शब्दों में " 'पल्लव' युग का मेरा मानसिक विकास एवं जीवन की संग्रणीय अनुभूतियों तथा राज-विराग का समन्वय बिजलियों से भरे बादल की तरह प्रतिविम्बित है।" 'पल्लव' के बाद 'गुञ्जन' कवि की आत्मा का उन्मन गुञ्जन है 'ज्योत्सना' में जिस सत्य के सार्व भौमिक दर्शन करने का प्रयत्न किया गया है 'गुञ्जन' में उसी की व्यक्तिगत साधना है। उसमें विश्व के प्रति संवेदना, विस्मय की भावना, चिंतन, जीवन के प्रति आकर्षण और उससे निर्मित विश्व मानवता के प्रति कवि का विशेष दृष्टिकोण सामने आता है। कवि के हृदय में एक संवेदना की जाग्रति होती है—

जग पीड़ित रे अति दुख से
जग पीड़ित रे अति दुख से,
मानव जग में बँट जावें,
दुख-सुख से औ सुख दुख से।"

कवि ने 'मानव' शीर्षक कविता में जीवन के प्रति बदने वाले दृष्टिकोण को व्यक्त किया है। 'भावी पत्नी के प्रति', 'आँख,' 'मुस्कान,' 'नौकाबिहार,' 'एक तारा,' 'चाँदनी' 'विहग के प्रति' आदि रचनाओं में भाव और कल्पना का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। 'गुञ्जन' की कुछ कविताओं में सृष्टि के सौन्दर्य में अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य के दर्शन किये गये हैं। पंत जी अलौकिक छवि के अखिल व्याप्त सुकुमार नारी के स्वरूप के उपासक हैं। यह नारी रूप प्रकृति के विभिन्न स्वरूपों में कहीं माता है, कहीं सहचरी है, और कहीं प्रेयसी। वह निखिल भुवन मोहिनी एक रूप में अनेक होकर चतुर्दिक प्रकृति में अपनी शोभा सुषमा का प्रसार करती है। 'पल्लव' के मौन-निमंत्रण' में उन्होंने अपने आप को प्रेमिका के रूप में, 'गुञ्जन' में प्रेमी के रूप में और 'वीणा' में बालिका के रूप में देखा है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने रहस्यवाद की रूढ़ियों का अनुसरण नहीं किया है। 'पल्लव' तक पंत जी प्रकृति के केवल सुन्दर, मधुरपक्ष में अपने हृदय के कोमल और मधुर भावों के साथ लीन थे, कर्म-मार्ग उन्हें कठोर ही कठोर दिखाई देता था। पर अब वे मानव जीवन के संघर्षों की ओर झुकते हैं। इस नये दृष्टिकोण को विकसित होने का अवसर 'ज्योत्सना' नामक रूप-नाटिका में प्राप्त हुआ जिसमें अमूर्त भावनाओं को मूर्तपात्रों के व्यक्तित्व में चित्रित किया गया है। भाव कथा अति सूक्ष्म है। पात्र विभिन्न भावनाओं के प्रतीक हैं। इसमें कवि संसार को प्रेम का नवीन स्वर्ग बनाने की अपनी सैद्धान्तिक कल्पना को भावनाओं के प्रतीक पात्रों द्वारा पूरा करता है। इसमें पंत जी ने अपने मानववाद के सिद्धान्त को पूरा किया है। पंत जी सुख दुःख तथा आत्मा और भूत को निमित्त मात्र मानते हैं, इसीलिये उनके प्रति अनावश्यक लोभ न रखकर उनका समुचित संकलन करलेते हैं। उभय द्वन्द्वात्मक तत्वों से मेरे एक परम सत्य को पा लेने के लिये वे अपने निरपेक्ष दृष्टिकोण में एक तटस्थ द्रष्टा

हैं। उनकी दृष्टि में जीवन का वर्तमान संघर्ष शाश्वत् नहीं है। उसका कभी न कभी अन्त होगा ही।

'युगान्त' कवि के सौन्दर्य युग की अन्तिम और प्रगति युग की प्रारम्भिक रचना है। कवि ने स्वयं कहा है—" 'युगान्त' में मैं निश्चय रूप से इस परिणाम पर पहुँच गया था कि मानव सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी है।" 'वीणा' से 'युगान्त' तक कवि का विकास प्रकृति के मानव की ओर, कल्पना से चिंतन की ओर, नारी कला से पौरुष कला की ओर है। परन्तु उसमें सौन्दर्य भावनाओं की प्रधानता है और अन्त में उसका दृष्टिकोण भूत और आत्मा के समन्वय की ओर उन्मुख होता है, जिस पर गांधीवाद का स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है, जिसमें भूत में चेतना और शरीर में आत्मा, समाज में व्यक्ति की ओर आकर्षण है और नवयुग के निर्माण की मांगलिक भावना के आधार ये ही केन्द्र हैं। पंत जी की वाणी में लोक-मंगल की आशा और आकांक्षा के साथ घोर 'परिवर्तनवाद' का स्वर भी भरा हुआ है। गत युग के अवशेषों को समूल नष्ट करने के लिये मानव को उत्तेजित करते हुए वे कहते हैं :—

गर्जन कर मानव-केसरि !
प्रखर नखर नव-जीवन की लालसा गड़ा कर !
छिन्न भिन्न कर दे गत युग केशव को दुर्धर !

सामाजिक जीवन में क्रांति के हेतु कवि की यह हुँकार यह घोषणा करती है कि वह क्रांति और शांति दोनों ही चाहता है। संहार और सृजन दोनों को युगवाणी दे रहा है। 'युगवाणी' में शोषणहीन जनयुग की आकांक्षा, जनता की नैतिक आवश्यकताओं की पूर्ति की मांग, मध्य युगीन रूढ़ियों की प्राचीनता के प्रति विद्रोह है और निवास, भोजन और मानसिक विकास के अनिवार्य नैतिक अधिकार का समर्थन है। 'युगवाणी' की भाषा में सूक्ष्मता और विश्लेषण की शक्ति है। 'युगवाणी' में भौतिकता के प्रति प्रबल आकर्षण होते हुए भी कवि आत्मा के प्रति आस्था रखता है इसलिए

'युगवाणी' में पूर्ण भौतिक दर्शन का सैद्धान्तिक निरूपण नहीं हुआ है और उसमें अध्यात्म दर्शन के भौतिक दर्शन के साथ समन्वय के प्रयत्न का आभास मिलता है। 'युगवाणी' में सिद्धान्त और चिन्तन की प्रमुखता है। परन्तु 'ग्राम्या' में पहुँच कर यही शैली भावात्मक हो गयी है। 'ग्राम्या' में ग्राम्य जीवन का दर्शन है। इसमें उन्होंने ग्राम के समस्त रूपों को, वहाँ के नर-नारियों को, नित्य प्रति के जीवन को, उसकी संस्कृति को व्यष्टि रूप में नहीं, समष्टि रूप में देखा है। ग्राम युवती, ग्राम नारी, कट पुतले, गाँव के लड़के, वह बुड्ढा, ग्राम बधू, वे आँखें, मजदूरनी आदि ऐसी ही कविताएँ हैं। कुछ कविताएँ सामान्य जीवन से भी सम्बन्ध रखती हैं। पंतजी को ग्राम्य जीवन के प्रति बौद्धिक सहानुभूति है। 'युगवाणी' में सिद्धान्तों का स्फुट-निरूपण है और चिन्तन है। 'ग्राम्या' में वह लोक जीवन है जिसके लिये कवि सिद्धान्तों का चिन्तन करता है। अतः 'युगवाणी' बुद्धि है तो 'ग्राम्या' भाव। पहला सिद्धान्त है और दूसरा जीवित आधार। 'ग्राम्या' के लोक चित्रों में करुणा का स्पर्श है। परन्तु इस बौद्धिक जागरण में पुनः परिवर्तन हुआ। कवि की आत्मा पर योगी अरविन्द की आध्यात्मिक साधना का प्रभाव पड़ा। लोक जीवन से कवि पुनः दूर हो गया। अस्वस्थता के कारण पंत जी को एकान्तवास करना पड़ा जिसने इन्हें अन्तर्मुख बना दिया। कवि ने एक नवीन काव्य युग का अनुष्ठान किया। इस युग की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं—'स्वर्ण धूलि', 'स्वर्ण किरण' और 'उत्तरा'। 'स्वर्ण धूलि' की अधिकांश रचनाओं का आधार सामाजिक है और 'स्वर्ण किरण' में चेतना-प्रधान कविताएँ हैं। 'स्वर्ण किरण' में प्रकृति और जीवन के प्रति आध्यात्मिक आकर्षण है। 'स्वर्ण किरण' में उपनिषद् की भावनाओं से अनुप्राणित आध्यात्मिक चेतना प्रधान कविताएँ हैं, इसमें प्रकृति की चेतना के प्रति पूजा की भावना है। 'उत्तरा' और 'युगपथ' आध्यात्मिक चेतना प्रधानयुग की ही रचनाएँ हैं। इनमें जीवन सृष्टि की भूत और चेतन प्रगति का समन्वय करने की साधना है। 'उत्तरा' और 'युगपथ' दोनों ही चिन्तन-प्रधान कवि के दार्शनिक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करने वाली अन्तश्चेतना वादी कविताएँ हैं, जिनकी भाषा में सूक्ष्म बौद्धिक विश्लेषण की शक्ति है,

मांसल सौन्दर्य का आकर्षण कम। इस प्रकार पंत जी की कविता का हिन्दी में सीधा विकास हुआ है। छायावाद और प्रगतिवाद दोनों में ही उन्होंने नेतृत्व किया है—छायावाद में 'पल्लव' द्वारा और प्रगतिवाद में 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' द्वारा। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण आशा-वादी है। साधन में उनका अटूट विश्वास है और उसको ही वे जीवन का ध्येय समझते हैं। गतिशीलता में सदैव उनकी आस्था रही है। वे जो कुछ भी लिखते हैं—सोच समझ कर और चिंतन करके लिखते हैं। उनकी गम्भीरता और संयत व्यक्तित्व उनकी कविता से प्रकट होते हैं। ये मौलिक कलाकार हैं। जिस साधना को लेकर वे आज भी चल रहे हैं वह बड़ी ही पवित्र एवम् जनहित की है। उनकी कविता युग युग तक अमर रहेंगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।



'वीणा' से 'ग्राम्या' तक

(भाव तथा कलागत विशेषताओं का वर्णन)

कवि की रचनाएँ उसके विकास-सूत्र की परिचायक होती हैं। कवि के कलापक्ष तथा भावपक्ष दोनों के ही विकास का इतिहास उसकी रचनाओं में ही अङ्कित रहता है। कवि पंत हिन्दी में रोमाण्टिक युग के प्रवर्तकों में से एक हैं किन्तु उनकी रचनाओं में उनके काव्य का विकास-क्रम भिन्न प्रवृत्तियों, भावों और विचारों की भूमि का स्पर्श करता हुआ प्रवाहित होता है। पंत जी की भावधारा प्रकृति के रम्य दृश्यों से प्रारम्भ होकर ग्राम्य दर्शन तक पहुँचते पहुँचते एक विशिष्ट काव्य युग का निर्माण करती है अर्थात् 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक की रचनाएँ एक युग विशेष के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं। 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक का काल सन् १९१८ से लेकर सन् १९४० तक का है।

'वीणा':– 'वीणा' पंत जी की सन् १८ की कृतियों का संग्रह है और यह उनकी प्रथम कृति है। यों तो वीणा का प्रकाशन 'पल्लव' के प्रकाशन के पश्चात् हुआ है। फिर भी 'वीणा' की कविताओं का रचना काल 'पल्लव' के रचना काल के पूर्व है। कवि ने इस कृति को 'दुध मुँहा प्रयास' और 'बाल-कल्पना' की संज्ञा से अभिहित किया है और 'वीणा' की भूमिका में लिखा है कि "इस संग्रह में दो एक को छोड़कर अधिकांश रचनाएँ सन् १९१८–१९ की लिखी हुई हैं। उस कवि जीवन के नवप्रभात में नवोढ़ा कविता की मधुर नूपुर-ध्वनि तथा अनिर्वचनीय सौन्दर्य से एक साथ ही आकृष्ट हो, मेरा 'मंद कवि-यशः प्रार्थी निर्बोध, लज्जा भीरु कवि वीणा-

वादिनी के चरणों के पास बैठ, स्वर-साधन करते हुए, अपनी आकुल उत्सुक हृत्तन्त्री से बार बार चेष्टा करते रहने पर, अत्यन्त असमर्थ अँगुलियों के उल्टे सीधे आघातों द्वारा जैसी कुछ भी अस्फुट अस्पष्ट अंक में जागृति कर सका हूँ, वे इस वीणा के स्वरूप में आपके सम्मुख उपस्थित हैं।" इसी 'बाल-कल्पना 'वीणा' ने हिन्दी कविता कानन में एक नया फूल लगाया, जिसकी मादक सुगन्ध ने द्विवेदी युग के कलावंतों के हृदय में आतङ्कमय स्पन्दन भर दिया। इस काव्य संग्रह में हमें पंत के कवि की भावधारा का प्रथम परिचय प्राप्त होता है। कवि बाह्य जगत के सौन्दर्य से प्रभावित है, परन्तु उसका वस्तु सौन्दर्य अंकित न कर भाव सौन्दर्य की की सृष्टि करने का प्रयास करता है। इसका विशेष कारण है कवि के भावुक मन पर स्वामी विवेकानंद और रवीन्द्र के अध्यात्मवाद का प्रभाव। अतः उनका (कवि) किशोर संसार अल्मोड़े के प्राकृतिक सौन्दर्य से मुग्ध और रवीन्द्र के अध्यात्मदर्शन से समृद्ध था। कवि का भाव-विह्वल मन एक उकसाहट का अनुभव करता है। वह कुतूहल से पूछता है, "यह सब क्या है?" उसके हृदय को यह कौन झिंझोड़ रहा है, किसकी चपल, मृदुल अँगुलियाँ उसकी हृत्तन्त्री को इस पागलपन से झंकृत कर देती है?—

'छवि की चपल अँगुलियों से छू
मेरे हृत्तन्त्री के तार,
कौन आज यह मादक अस्फुट,
राग कर रहा है गुञ्जार।'

कवि के भाव-सौन्दर्य ने कहीं प्रार्थना का, कहीं आत्म-निवेदन का, कहीं विश्व प्रेम का, कहीं आत्मनिष्ठ प्रकृति-अङ्कन का रूप संवारा है, परन्तु सभी स्थलों पर भाव सौन्दर्य की प्रधानता है और रूप सौन्दर्य का स्थान गौण। समस्त सृष्टि सौन्दर्यानुभूति से परिपूर्ण है। कवि ने अभी तक यथार्थ जीवन की कठोरताओं को नहीं देखा है जिसके कारण वह समस्त संसार में प्रेम का सुनहला प्रकाश देखता है। जैसे—

मम जीवन की प्रमुदित प्रात
सुन्दरि! नव आलोकित कर!

विकसित कर नव सुरभित कर,
गुञ्जित कर कल कुञ्चित कर,
खिला प्रेम का नव जल जात,
बढ़ा कनक कर निज मृदुतर!

× × ×

बना मधुर वीणा निज मात,
एक गान कर मम अन्तर! —'वीणा'

कवि का दृष्टिकोण केवल प्रेम के क्षेत्र में ही नहीं, प्रत्युत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आशावादी है। 'वीणा' की प्रार्थना परक कविताओं पर कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का प्रभाव है। ये प्रार्थनाएँ 'मां' सम्बोधन से की गई हैं और उससे नितान्त किशोर आदर्शों पर दृढ़ रहने का कैशोर्य सुलभ भोला वरदान मांगा गया है। काव्य की दृष्टि से ये कविताएँ बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं किन्तु इनकी सरलता दर्शनीय है। इन प्रार्थनाओं में छायावाद का अस्फुट आभास मिलता है, जो इनको 'हे दयामय हम सब को शुद्धताई दीजिए' वाले द्विवेदी युग के या अन्य प्राचीन प्रार्थना गीतों से पृथक करता है। इनमें अपने सुख-दुख, आशा-निराशा सब कुछ उसकी (मां की) सुषमा और महत्व के आगे अर्पित कर केवल उसका प्यार तथा विश्वकल्याण कर वरदान पाने की चाह है। उसकी वे प्रार्थनाएँ एक भक्त की भगवान से प्रार्थनाएँ ही नहीं बच्चे की मां से क्रीड़ा और उस क्रीड़ा से मां के हृदय में उठते प्यार और उमंगों को देखने की स्वाभाविक कामना भी है। उसका शिशु हृदय जैसे विह्वलता सी कुछ अनुभव कर रहा हो—

'तरल तरंगों में मिलकर,
उछल उछल कर हिल हिल कर,
मां, तेरे दो श्रवण पुटों में
निज क्रीड़ा कलरव भर दूँ,
अमर अध-खिली बाली में।'

ये प्रार्थनागीत पर्याप्त अच्छे हैं और कवि की अवस्था को देखते हुए

इनका महत्व और भी बढ़ जाता है। प्रार्थना विषयक कविताओं के अतिरिक्त, इसमें प्रकृति विषयक कविताएँ भी हैं! परन्तु कवि की प्रकृति जड़ नहीं, वरन् चेतन है। इस संग्रह की रचनाओं में चिन्तन नहीं, वरन् भाव ही मुख्य है। 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि का आना रंगिनि' कविता उनकी सर्वोत्कृष्ट कविताओं में से एक है। इसमें अनुभूति, कल्पना, सौन्दर्यानुभूति एवम् संगीत का संतुलित समन्वय है। 'वीणा' में एक दो स्थान पर असंगत दोष देखने को मिलता है, पर उसे बहुत कम अथवा न के बराबर ही समझना चाहिए। जहाँ कहीं कवि ने समझदार होने का प्रयास किया है वहीं वे, असंगत भी हो गये हैं। 'कृषक बाला' की कविता में एक दो असंगति मिलती हैं। एक पद्य लीजिए—

सास - ननद - भय, भूख अजय,
श्रान्ति, अलस औ श्रम अतिशय,
तथा काँस के नव गहनों से,
अर्चन करता है सदार,
आश्विन सुषमा शाली में!

इस पद्य में पहली दो पंक्तियों का दूसरी पंक्तियों में से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। प्रथम दो पंक्तियों में कवि ने कृषक बाला की निर्धनता, रूढ़ि-प्रियता और कटु परिस्थितियों का वर्णन है और 'तथा' शब्द से जोड़ी हुई दूसरी दो पंक्तियों में उसके प्राकृतिक वैभव और सुख तथा सौन्दर्य का वर्णन है जो संगत नहीं। 'सुषमा-शाली' का प्रयोग भी ठीक नहीं है। इसी प्रकार से एक स्थान पर और भी असंगति है—

मां अपने जन का पूजन,
ग्रहण करो पत्रं-पुष्पम्,
सरल नाल सा सीधा जीवन,
स्वर्ण मंजरी से भूषित,
बाली से श्रृङ्गार तुम्हारा,
करता है वय-बाली में।

इसकी पहली पंक्तियों में कृषक बाला के मातृत्व की अर्चना की गई है किन्तु अगली पंक्तियों में उसकी 'वय-बाली' और उसके शृङ्गार पर ही बल है न कि मातृत्व की गरिमा पर। पर यह पद्य उतना असंगत नहीं। सब मिलाकर 'वीणा' संग्रह संतोषप्रद और प्रशंसनीय है।

'ग्रन्थि' :—सन् १९२० ई० में जब पंत जी गर्मियों की छुट्टियों में कालेज से घर आये तो वहाँ 'ग्रन्थि' की रचना हुई। यह प्रेम पर रचित कवि का प्रथम काव्य है। 'ग्रन्थि' एक प्रेम कहानी के साथ-साथ एक विरह काव्य भी है। इसमें एक खण्ड काव्य की कथावस्तु देखने को प्राप्त होती है। 'वीणा' में पंत का कवि आशावादी बना था, पर 'ग्रन्थि' में आकर वह निराशावादी हो गया है। यद्यपि 'ग्रन्थि' की कथा पूर्णतः काल्पनिक है पर फिर भी इसमें जो भावात्मक सचाई (Emotional Sincerity) है, उसके कारण 'ग्रन्थि' की कथावस्तु आत्म कथा जैसी प्रतीत होती है। 'ग्रन्थि' में कवि की पीड़ा गम्भीर से गम्भीरतम् होकर उसे छा लेती है। सम्पूर्ण 'ग्रन्थि' काव्य इसी प्रकार रोदन में ही समाप्त होता है। कवि आँसू पोंछने का प्रयास भी नहीं करता। कवि की वेदना प्रेयसी के विरह का परिणाम है और उसे प्रेयसी की चाह है। इसके हेतु समन्वय खोजना अच्छा होता अथवा ऐसा करना अस्वाभाविक होता, यह नहीं कहा जा सकता।

'ग्रन्थि' की अभिव्यक्ति और भाव-प्रणाली, दोनों ही छायावादी ढंग की नहीं, ये बहुत कुछ संस्कृत-काव्य से प्रभावित हैं। आधुनिक लाक्षणिक प्रयोग तथा विशेषण-विपर्यय इत्यादि अलंकार कम ही प्रयुक्त हुए हैं। संस्कृत की शैली का प्रयोग यहाँ गुण ही बन कर आया है, जैसे—

निज पलक, मेरी विकलता साथ ही,
अवनि से, डर से मृगेक्षिणी ने उठा,
एक पल निज स्नेह-श्यामल दृष्टि से,
स्निग्ध करदी दृष्टि मेरी सीप सी।

उसकी पलकों का और कवि की विकलता का साथ ही 'उठना' आधुनिक

शैली नहीं, किन्तु कितना आकर्षक लगता है। अस्तु, 'ग्रन्थि' की अनुभूति का आधार सम्भवतः काल्पनिक नहीं, यदि ऐसा हो भी, जैसा कि स्वयं पंत जी कहते हैं, तो भी वह इतना मूर्त है कि उसे कल्पना से अधिक ही समझना चाहिये। बच्चन जी के विचार में "पंत जी कल्पना के गायक हैं—अनुभूति के नहीं, इच्छा के गायक हैं, वासना-तीव्र इच्छा के नहीं।" किन्तु इस उद्धरण को 'ग्रन्थि' पर पूरा लागू नहीं किया जा सकता; ग्रन्थि में वे वास्तव में अनुभूति और तीव्र इच्छा के ही गायक हैं। पर अन्तिम पदों में व्यर्थ का फैलाव आगया है और अनुभूति सूख सी गई है। सब मिलाकर 'ग्रन्थि' की अपनी विशेषताएँ हैं :—(क) इसमें कवि की दृष्टि प्रकृति की ओर नहीं है, प्रत्युत उसकी समस्त भावनायें, कल्पनाएँ नायिका के साकार आलंबन को पाकर साकार हो उठी हैं। (ख) 'वीणा' में कवि का दृष्टिकोण निराशावादी रहा है। (ग) यद्यपि इसकी कथावस्तु की आधारशिला कल्पना ही है पर फिर भी वह वास्तविक घटना की भाँति भावमय प्रतीत होती है। (घ) सम्पूर्ण काव्य का सौन्दर्य वेदनामय अश्रु में बिखरा हुआ है। (ङ) इसकी रचना-शैली पर संस्कृत काव्य-शैली का प्रभाव है। (च) इसमें छायावाद की शैलीगत विशेषताओं का प्रयोग अल्प मात्रा में हुआ है, क्योंकि यह एक वर्णनात्मक काव्य है। (छ) वेदना के फलस्वरूप कवि ने जीवन और जगत के सम्बन्ध में कुछ अपनी मान्यताएँ स्थिर की हैं, जिनका विकसित रूप आगे की रचनाओं में मुखर है।

'पल्लव' :—'पल्लव' पंत जी का तृतीय काव्य-संग्रह है। इसमें पंत जी की सन् १९१८-१९ की कुछ विशिष्ट रचनाएँ (जो 'वीणा' में संग्रहीत नहीं हुई) और पीछे की सन् १९२५ तक की चुनी हुई कविताएँ संग्रहीत हैं, इस प्रकार कवि के सन् १९२५ तक के विकास का यह अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। सर्व प्रथम इसी संग्रह में पंत की प्रतिभा को पूर्ण उन्मेष प्राप्त हुआ है। प्रायः सभी विद्वान् लेखकों ने जैसे डा० रामविलास शर्मा, शांति प्रिय द्विवेदी, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, इलाचन्द्र जोशी, नगेन्द्र, 'मानव' इत्यादि ने 'पल्लव' को एक महान् कृति कहा है पर मैं सर्वथा ऐसा नहीं

समझता। यद्यपि यह एक उत्कृष्ट रचना है पर इसे सर्वोत्कृष्ट रचना कदापि नहीं कहा जा सकता। 'पल्लव' में 'परिवर्तन' कविता ही सबसे सुन्दर है। 'उच्छ्वास' में बहुत कुछ असंगत बातें भी हैं। इसके साथ ही 'पल्लव' में छाया, नक्षत्र, स्याही की बूँद आदि असुन्दर रचनाएँ भी हैं। 'पल्लव' में अधिकांश काल्पनिक प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ हैं। 'पल्लव' का ऐतिहासिक महत्व है, क्योंकि सर्व प्रथम छायावाद के प्रवर्तन का श्रेय इसे प्राप्त है। 'पल्लव' की प्रथम कविता से ही कवि का स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। वह अपनी कविता के सम्बन्ध में कहते हैं—

"न पत्रों का मर्मर संगीत,
न पुष्पों का रस, राग, पराग,
एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल मुस्कान;
सरल शिशुओं के शुचि अनुराग,
वन्य विहगों के गान!
हृदय के प्रणय-कुञ्ज में लीन,
मूक कोकिल का मादक गान,
बहा जब तन मन बन्धन हीन
मधुरता से अपनी अनजान
खिल उठी रोओं की तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल!"

इस प्रकार पंत जी भावप्रधान कवि हैं। उनकी अत्यधिक भावुकता के कारण कुछ विषय अस्पष्ट हो गये हैं। इसमें हृदय की प्रधानता है और वह शिशुओं का शुचि अनुराग न होकर युवक का उन्मुक्त प्रणय गान ही है। 'पल्लव' की 'आँसू' और 'उच्छ्वास' कविताएँ प्रेम भावनाओं से ओत प्रोत हैं। 'पल्लव' में प्रकृति चित्र यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं। प्रकृति के प्रति कवि का आकर्षण प्रारम्भ से ही है पर वह अपने आप को नारी सौन्दर्य से भी

आकृष्ट पाता है। प्रकृति और नारी के बीच द्वन्द्व चलता है और अन्त में प्रकृति की ही विजय होती है। प्रकृति-परक कविताओं में वीचि-विलास, मौन निमंत्रण, बादल, नक्षत्र, वसंत श्री, मधुकरी आदि हैं। 'पल्लव' में कुछ ऐसी भी कविताएँ हैं जिनमें कवि की चिंतनाशक्ति मुखर हो उठी है। जैसे—विश्व व्याप्ति, जीवन यान, नारी और शिशु आदि। पंत जी के अपने शब्दों में—"'पल्लव' युग का मेरा मानसिक विकास एवम् जीवन की संग्रहणीय अनुभूतियों तथा रागविराग का समन्वय बिजलियों से भरे बादल की तरह प्रतिबिम्बित है।" 'परिवर्तन' 'पल्लव' की सर्वश्रेष्ठ रचना है। इस कविता में एक विशेष आवेश, प्रवाह और बंधा हुआ विस्तार है। 'परिवर्तन' कवि की मानसिक और साहित्यिक दोनों प्रवृत्तियों का परिचायक है। महाकवि निराला ने 'परिवर्तन' की प्रशंसा में कहा था कि वह किसी भी चोटी के कवि की श्रेष्ठ रचना से मैत्री स्थापित कर सकता है। 'परिवर्तन' की भाषा में जितना ओज है उतना पंत की अन्य रचनाओं में नहीं। इस एक ही कविता में जीवन के विभिन्न रंगों का समावेश है। शृङ्गार, वीभत्स और करुणा सभी के रंग इसमें समाये हैं। 'परिवर्तन' के प्रति स्वयं कवि ने भी कहा है "इस कविता जगत् में नित्य जगत् को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में जैसा परिवर्तन के रचना काल से प्रारम्भ होगया था, 'परिवर्तन' उस अनुसन्धान का केवल प्रतीक मात्र है।" सभी ओर भीषण चक्र चल रहा है, पर न जाने क्यों मनुष्य अपनी अकिंचन शक्ति पर इतना घमंड करता है? कवि, वास्तव में, गम्भीरता के साथ इस विराट परिवर्तन को देख रहा है—

अहे निष्ठुर परिवर्तन!
तुम्हारा ही तांडव-नर्तन,
विश्व का करुण विवर्तन!

इस कविता में कवि ध्वंस और निर्माणकारी दोनों ही परिवर्तन के पक्षों का चित्रण बड़ी ही विदग्धता से कर सका है—

अहे दुर्जेय विश्व-जित्
तुम नृशंस नृप से जगती पर चढ़ अनियंत्रित,

करते हो संसृति को उत्पीड़ित मद मर्दित,
नग्न नगर कर, भग्न भवन, प्रतिमाएँ खण्डित,
हर लेते हो विभव, कला कौशल चिर संचित
अहे निरंकुश ! पदाघात से जिनके विह्वल
हिल हिल उठता है टलमल,
पद–दलित धरातल !"

कवि स्पष्ट देखता है कि यह सुख दुख, अश्रु हास, सृजन-सिंचन-संहार एक ही लय, एक ही विराट भावना के दो छोरों में झूल रहे हैं—

"एक ही तो असीम उल्लास, विश्व में पाता विविधाभास।"

किन्तु यह सृजन और स्थिति, सभी नश्वर और अस्थाई हैं, इस भीषण परिक्रमा में परिवर्तन सभी को लीन रहा है। इस प्रकार 'परिवर्तन' में अत्यन्त प्रभावशाली चित्र उपस्थित किये गये हैं; सभी शब्द जैसे एक भीषण ताल का सृजन कर रहे हैं, शब्दों के साथ साथ चित्र ऐसे उघड़ते आते हैं कि देखते ही बनता है। नव-परिणीता का सद्यः वैधव्य वर्णन तो वेदना और पीड़ा का साकार चित्र है—

'खुले भी न थे लाज के बोल,
खिले भी चुम्बन शून्य-कपोल,
हाय ! रुक गया यहीं संसार, बना सिन्दूर अँगार।'

इस प्रकार 'परिवर्तन' कविता बहुत ही उत्कृष्ट बन पड़ी है; इसमें अनुभूति और कला दोनों अत्युन्नत स्तर पर पहुँच गये हैं। वास्तव में इस कविता को पंत काव्य में ही नहीं सम्पूर्ण छायावादी काव्य में बड़ा प्रतिष्ठित स्थान मिलना चाहिये। 'पल्लव' की भाषा एक गम्भीरता लिए हुये है जिसकी पृष्ठ-भूमि प्रतीकात्मकता तथा चित्रात्मकता की द्योतक है। जिस प्रकार पंत जी की आन्तरिक प्रवृत्तियाँ क्रमशः गम्भीर से गम्भीरतम की ओर विकासोन्मुखी हुई हुई हैं, पंत जी की भाषा भी भावानुकूल परिवर्तित होती गई है। शब्दों का मनोविज्ञान इस रूप में प्रतिपादित किया गया है जहाँ आकर आलोचकों की

समझदारी भूल सी जाती है। उदाहरण के लिये विवर्तन और परिवर्तन प्रायः एक ही अर्थ के द्योतक हैं ! परन्तु विवर्तन का शब्द मनोविज्ञान मानव की विवशता है और परिवर्तन का मनोविज्ञान साधारण गति में सीमित है।

गुञ्जन :—गुंजन तक आते आते कवि का हृदय गम्भीर एवम् मानव सुख दुःख परक हो बैठा है। इसमें सन् १६२६ से लेकर १६३१ तक के मध्य की कविताएँ संगृहीत हैं। 'गुञ्जन' पंत जी के प्राणों का 'उन्मन गुञ्जन' मात्र है। गुंजन में कवि के जीवन के प्रति एक नवीन दृष्टिकोण देखने को प्राप्त होता है। 'गुञ्जन' की रचना 'पल्लव' की शैली पर अवश्य हुई है, परन्तु इसमें भाव-धारा की दिशा पूर्णतः परिवर्तित है। कवि की भाव धारा की सबसे बड़ी विशेषता है—धरातल का उत्कर्ष, जिसके कारण उसका प्रेम व्यक्तिगत आकांक्षा के रूप में नहीं रह जाता, वरन् विश्व-कल्याण की साधना बन जाता है। 'गुञ्जन' में सौन्दर्यान्वेषण में तल्लीन रहने वाला कवि दर्शन की ओर प्रवृत्त हुआ है। 'गुञ्जन' के पहले कवि की कल्पना का संसार था हृदय, परन्तु अब आत्मा है। इसीलिए इसमें भावावेश की न्यूनता और चिन्तन एवम् मनन की मुख्यता है'—कृष्णकुमार सिन्हा। गुञ्जन का कवि मानव जीवन का गायक प्रतीत होता है। वह सुख दुख, आशा-निराशा, हानि-लाभ, संयोग-वियोग, जीव जगत्, मुक्ति ईश्वर आदि पर नवीन दृष्टिकोण से विचार करने को बाध्य हुआ है।

'गुञ्जन' का कवि चिंतन प्रधान कवि है। वास्तव में कवि ने 'गुञ्जन' में भावना एवम् चिंतन में समन्वय करने का प्रयास किया है। यही समन्वयवादी भावना 'गुञ्जन' में पंत की भावधारा का पृष्ठाधार है। इस समन्वय का परिणाम यह होता है कि कवि मध्यम मार्ग का पक्षपाती हो जाता है और प्रतिपल साधना द्वारा व्यक्तित्व के उत्कर्ष को जीवन की सार्थकता का आधार मानता है। ईश्वर पर कवि को पूर्ण विश्वास है। बंधन और मुक्ति के सम्बन्ध में कवि की भावना वेदान्त की अपेक्षा वैष्णव धर्म की पद्धति के अधिक निकट है। कवि के लिये बन्धन ही मुक्ति है और मुक्ति ही बन्धन है। 'गुञ्जन' अतः एक प्रकृति-काव्य नहीं, प्रत्युत मानव-काव्य है। नारी के

प्रति भी कवि का दृष्टिकोण अत्यन्त नवीन रूप धारण कर लेता है। इसमें शरीर-नारी का चित्रण नहीं, वरन् भाव-नारी का चित्रण किया गया है। श्री यशदेवजी के शब्दों में "गुञ्जन में प्रायः तीन प्रकार की कवितायें हैं, सबसे पहले लगभग पन्द्रह कविताओं में सुख दुख का समन्वय या मानव महत्व की स्वीकृति है। दूसरी कक्षा में लगभग चौदह कविताएँ प्रेयसी के प्रति प्रेम-निवेदन की हैं और तीसरा 'बैच' प्रकृति सम्बन्धी कविताओं का है। इनके अतिरिक्त तीन चार कविताएँ विविध हैं। इस प्रकार 'गुञ्जन' निर्धारित सीमाओं में प्रायः चला है।"—(पंत का काव्य और युग)

युगान्त :—'युगान्त' की कविताओं का रचना काल सन् १६३४ से १६३६ तक माना जाता है। 'युगान्त' पंत जी की भावधारा में दिशान्तर के रूप में समझना चाहिये। 'गुञ्जन' का व्यक्तिगत कवि 'युगान्त' में युग का, मानव समाज का कवि बन गया है। 'युगान्त' की अनेक कविताएँ 'गुञ्जन' की चिन्तन-प्रधान प्रणाली में रखी जा सकती हैं। 'युगान्त' में छाया युग का ह्रास और प्रगति युग का प्रारम्भ होता है। इसे प्रगति युग की भूमिका के रूप में भी देखा जा सकता है। स्वयं कवि का कथन है—'युगान्त में मैं निश्चय रूप से इस परिणाम तक पहुँच गया था कि मानव सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी है।' 'युगान्त' का कवि 'गुञ्जन' में व्यक्तिगत साधना पर बल देता देता है, पर 'युगान्त' में पहुँच कर कवि की दृष्टि समष्टि की पीड़ाओं की ओर गई, जिसके दुख से उसका हृदय आन्दोलित हो उठा। कवि जड़वाद से अभिभूत मानवता का परित्राण पाने का इच्छुक है, क्योंकि इसी कारण तो आज विश्व में इतने संघर्ष दिखाई देते हैं। मानवात्मा आज जड़ बन्धनों से कराह रही है—

'जड़वाद जर्जरित जग में,
अवतरित हुए आत्मा महान,
यंत्रभिभूत जग में करने,
मानव जीवन का परित्राण।'

(बापू के प्रति)

'युगान्त' में कवि की अन्तर्मुखी प्रवृत्ति बहिर्मुखी हो गई है, वह व्यक्ति को छोड़कर समाज की ओर मुड़ा है। इस तरह 'युगान्त' में नव-मानव युग का उद्घोष है परन्तु इतना तो अवश्य कहना पड़ेगा, कि यह पूञ्जीवादी नवीन मानवतावादी एवम् उदारतावादी दर्शन से अधिक नहीं है। श्री यशदेवजी के शब्दों में 'कवि के विचार में श्रमजीवी यंत्रवाद और जड़वाद के कारण ही दुखी हैं, पूँजीवादी अर्थ प्रणाली के कारण नहीं।'

युगवाणी :—वैसे तो 'युगान्त' में ही कवि की वाणी बदल गई है, परन्तु 'युगवाणी' से कवि ने एक नयी सृष्टि की रचना प्रारम्भ की।

'युगवाणी' में सन् १९३७ से सन् १९३९ के मध्य में लिखी हुई रचनाएँ संगृहीत हैं। पंत जी के शब्दों में कवि ने 'युगवाणी' में युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया है और साथ ही साथ 'युग की मनोवृत्ति का आभास भी। इसमें तत्कालीन राजनैतिक वादों का स्वर मुखर हुआ है और वे हैं—मार्क्सवाद, गांधीवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद और भौतिकवाद। इसमें समाज के लगभग प्रत्येक वर्ग की गाथा है और नारी-समाज के उत्थान के आन्दोलन की विचारधारा की अभिव्यक्ति है। इसमें प्रकृति-सम्बन्धी रचनाएँ भी हैं और कवि ने निराला, भारतेंदु, द्विवेदी आदि महान् साहित्यकारों के प्रति श्रद्धा के दो फूल चढ़ाये हैं। 'युगवाणी' में कवि ने गांधीवाद और मार्क्सवाद के मध्य एक स्वतन्त्र मार्ग स्थापित करने का प्रयास किया है। कवि ने साम्यवाद को भारतीय रंग में भिगो कर रखा है तथा इस प्रकार अपनी मौलिकता का पूर्ण परिचय दिया है।

'ग्राम्या' :—'ग्राम्या' की आधार शिला 'युगवाणी' है। डा० नगेन्द्र के शब्दों में 'युगवाणी' प्रगतिवादी पंत का वाक्य था—'ग्राम्या' उसका प्रयोग।' 'युगवाणी' में आधुनिक प्रगतिवादी सिद्धान्तों का जो प्रारम्भिक स्वरूप है, उसको बलिष्ठ बनाने के लिये कवि ने 'ग्राम्या' की रचना की है। 'ग्राम्या' में 'युगवाणी' के पश्चात् की सन् १९४० तक की ५३ कविताएँ संगृहीत हैं। समयानुकूल जिन-जिन विचारधाराओं का प्रभाव कवि पर पड़ा है उन सबका स्वरूप 'ग्राम्या' में दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने यहाँ ग्राम

जनता को 'रक्त मांस के जीवों' के रूप में नहीं देखा है, प्रत्युत एक मरणोन्मुखी संस्कृति के अवयव-स्वरूप देखा है और ग्रामों को सामंत युग के खंडहर के रूप में—

"यह तो मानव लोक नहीं रे यह है नरक अपरिचित
यह भारत का ग्राम, सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित।
× × ×
मानव दुर्गति की गाथा से ओत प्रोत मर्मान्तक
सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमांचक।"

साथ ही साथ जीवन की यथार्थ घटनाओं का रंग-परिज्ञान के साथ मेल भी किया गया है। वास्तव में कवि की बौद्धिक सहानुभूति, ग्राम्य जनता की मरणोन्मुखी संस्कृति, के प्रति खूब निखरी है।

इस प्रकार प्रकृति तथा सौन्दर्य प्रेमी कवि पंत ने अपनी कविता को यथार्थ की ओर मोड़ देने का प्रयत्न किया है। प्रकृति, सौन्दर्य, नारी, व्यक्तिगत जीवन आदि विषयों से हटकर कवि मार्क्सवाद तथा गांधीवाद के सिद्धान्तों के समन्वय के आधार पर एक नवीन संस्कृति के निर्माण में संलग्न दीख पड़ता है। संसार में रह कर वह अपने को इसके प्रभावों तथा इसकी विषमताओं से दूर न रख सका। उसे व्यक्तिगत सुख की अपेक्षा सामाजिक उद्बोधन के गीत गाने ही पड़े हैं। छायावादी प्रभावों को छोड़ कर उसे प्रगतिवादी विचारों में आना ही पड़ा है। इस प्रकार कवि ने 'वीणा' से 'ग्राम्या' तक आते आते सौन्दर्य तथा छाया युग को लांघ कर प्रगति युग का श्रीगणेश किया है। उसने भारत की अधिकांश ग्रामीण जनता की मरणोन्मुख संस्कृति को उबारने का प्रयत्न किया है, उसे पुनः अनुप्राणित करने की चेष्टा की है।



पंत के काव्य में मानव-भावना



'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' का रचना काल सन् १९३३–४१ है। इनमें हमें पंत जी का मानव सम्बन्धी दार्शनिक दृष्टिकोण और मानव-सम्बन्धी भावनाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। इन तीनों का मुख्य विषय 'मानव' अथवा मनुष्य समाज है। पंत जी के मानववाद पर दृष्टिपात करने से पूर्व यह परम आवश्यक है कि हम उनके काव्य की पृष्ठिभूमि जानें। सन् १९३५–३४ तक की पंत जी की काव्य साधना में हमें विशेषतः अकृत्रिम निसर्ग काव्य, प्रकृति की भावुक उपासना मिलती है। कवि की दृष्टि प्रकृति के रम्य दृश्यों में पूर्णरूप से रमी हुई है। बाल-सदृश वह अपने आनंद में विभोर उनसे बातें करता है। सन् २४ की रचना 'परिवर्तन' में प्रकृति के ऋतु परिवर्तन के दृश्य ही मानव-जीवन के प्रतीक के रूप में आये हैं। सन् १९३२ की रचना 'गुञ्जन' में कवि ने करवट बदली है, वह सृष्टि के सौन्दर्य-लोक से मानव जीवन की ओर आता दीख पड़ता है। पंत जी की काव्य धारा में विकास क्रम है। वे अध्यात्म से प्रकृति और प्रकृति से मानव की ओर आये हैं। प्रारम्भ से ही यह भावना लोगों में चली आती है कि प्रकृति ने सदैव मानव-हृदय को प्रेरणा दी है, वह सदैव मानव के दुख सुख में सहायक रही है। मानव प्रकृति की गोद में जन्म लेता है, खेलता है, बड़ा होता है तथा उससे जीवन में बढ़ने की प्रेरणा ग्रहण करता है। पर पंत जी ने इस भावना को पूर्णतः बदल दिया है। वे कहते हैं कि इस प्रकृति को मनुष्य ने हँसना, रोना, मिलना, बिछुड़ना सिखाया है, प्रकृति ने मनुष्य को नहीं—

"तुम मेरे मन के मानव,

+ + + +

सीखा तुम से फूलों ने
मुख देख मंद मुसकाना,
तारों ने सजल नयन हो
करुणा किरणें बरसाना।
सीखा हँसमुख लहरों ने
आपस में मिल खो जाना,
अलि ने जीवन का मधु पी,
मृदु राग प्रणय के गाना।" —मानव (गुञ्जन)

वास्तव में ठीक स्थिति तो यही है कि मनुष्य ही प्रकृति से सीखता है। आज भी प्रकृति की गोद में मनुष्य उत्पन्न होता है, मनुष्य की गोद में प्रकृति नहीं। परन्तु साथ ही यह बात भी अस्वीकार नहीं की जा सकती कि मनुष्य के गौरव से ही वसुधा की वस्तुओं का गौरव अक्षुण्ण है, मनुष्य के सम्बन्ध से ही सब वस्तुएँ सुन्दर हैं, मनुष्य की कला वृत्ति ही सब वस्तुओं को वाणी देती है। अर्थात् मनुष्य ही जीवन का केन्द्र बना हुआ है, सब का मूल्य उसी के सम्बन्ध से है। मनुष्य की चिन्तन शक्ति, उसकी सौन्दर्य भावना तथा उसकी कला वृत्ति ही प्रकृति के समस्त व्यापारों में गुणों का निर्माण करती है। दार्शनिक बर्कले (Berkeley) ने भी कहा है कि सम्पूर्ण विश्व के क्रिया-कलापों की स्थिति मानव की चिंतन तथा विश्लेषण शक्ति पर ही निर्भर है।

एक अंधे के लिये रात्रि और दिवस में कोई अन्तर नहीं रहता, उसके लिये सुन्दर असुन्दर सब बराबर है। फूलों के खिलने में हास, आलोक में सजलता, रात्रि में नीरवता, जल में निर्मलता, लहरों की टकराहट में आलिंगन का आवेश और तन्मयता तथा उस गुनगुनाहट में प्रणय का सम्पादन देखना 'मानव' का ही काम है। कुछ भी हो 'गुञ्जन' तक कवि का दृष्टिकोण व्यक्ति-

गत ही अधिक रहा है, समष्टि के लिये संवेदन शील वह नहीं हो सका है—

'मेरा प्रति पल सुन्दर हो,
प्रतिदिन सुन्दर, सुखकर हो,
यह पल पल का लघु जीवन,
सुन्दर, सुखकर, शुचितर हो !'

अतः सन् १९३४ के पूर्व की रचनाओं में पंत जी का मानव-सम्बन्धी दार्शनिक दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं है, न परिपक्व। फिर भी उनकी विशेषताएँ हैं। 'युगांत' में मनुष्य को सृष्टि की सुन्दरतम् रचना बताते हुए कवि ने उसके बाह्य शरीर और आंतरिक सद्गुणों की प्रशंसा की है।' उसके शरीर की शिराओं, उसमें बहने वाले मादक रक्त, दृढ़ वाहु, स्फीत वक्ष, कर, पद, अंगुलि, नख आदि सभी के सौन्दर्य को उसने सराहा है। मनुष्य का सबसे बड़ा गुण उसकी दृष्टि में है मानवता की भावना। प्रेम को अब कवि केवल कल्पना की वस्तु नहीं समझता—

"सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम्,
निर्मित सब की तिल सुषमा से
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम !"

और भी :—

"मानसी भूतियाँ ये अमंद,
सहृदयता, त्याग, सहानुभूति,—
जो स्तम्भ सभ्यता के पार्थिव,
संस्कृति स्वर्गीय,—स्वभाव पूर्ति !
प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हें !
उपभोग करो प्रतिक्षण नव नव
क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में
यदि बने रह सको तुम मानव !"

अब कवि मानव से प्रार्थना करता है कि वह नवीन मानवता का सृजन करे तथा जो कुरूप और असुन्दर है उसे वह सुन्दरता के आवरण से ढक दे। ऊपर ताकने से उसे स्वर्ग नहीं मिलेगा। उसे चाहिए कि वह अपनी वसुन्धरा को देखे :—

"इस विश्री जगती में कुत्सित
अन्तर चितवन से चुन चुन कर
सार भाग जीवन का सुन्दर
मानव ! भावी मानव के हित
जीवन पथ पर जाओ ज्योतित !
इस कुरूप जगती में कुत्सित
अन्तर-बाह्य-प्रकृति पर पा जय,
नव विज्ञान ज्ञान कर संचय,
मानव ! भावी मानव के हित
नव संस्कृति कर जाओ निर्मित !" —उद्बोधन

एक काल था जब अध्यात्मिकता के आधार पर मानव की व्याख्या की जाती थी तथा भौतिकता का सर्वथा तिरस्कार किया जाता था, पर अब युग पलटा है। भौतिकता का प्रश्न ही आज का जीवन प्रश्न बन गया है। मनुष्य की व्याख्या में जिस अंश का प्राधान्य होगा, संस्कृति की व्याख्या में भी उसी अंश की प्रधानता रहेगी। 'मानवता' और 'संस्कृति' दो शब्द कवि के मस्तिष्क में निरन्तर चक्कर काट रहे हैं। कवि पर सामयिक साम्यवाद और गांधीवाद के प्रभाव जबरदस्त पड़े हैं। कवि कल्पना करता है कि 'पूँजीवाद' तथा 'साम्राज्यवाद' का विनाश अब निकट ही है। यह जो विश्व में ताण्डव प्रलयंकर चल रहा है यह नवयुग, नव-संस्कृति का सूचक है। सामंतवाद की भाँति पूँजीवाद और साम्राज्यवाद का नाश होकर फिर—

"जन युग की स्वर्णिम किरणों से होगी भू आलोकित,
नव-संस्कृति के नव प्ररोह होंगे शोणित से सिंचित !"

साम्यवाद ने विश्व को भौतिक दर्शन दिया है; मनुजता को उसके दुख-दैन्य से परित्राण दिलाया है; सुप्त मानव के हृदय में प्राण-चेतना की है; और

समाज में साम्य स्थापित करने का प्रयास किया है। तथा गाँधीवाद ने संसार को मानवता का संदेश दिया है, मानव को सत्य, अहिंसा, सहानुभूति आदि मनुजोचित गुणों से आभूषित किया है। बिना मानवता के भौतिक दर्शन पूर्णतः निष्फल तथा निष्प्रयोजन हो जाता है। इस प्रकार कवि ने मार्क्सवाद गाँधीवाद में समन्वय करने का मौलिक प्रयास किया है। यहाँ कवि मध्य पथ का अनुसरण कर रहा है। कवि विचार करता है कि न जाने कब से दार्शनिक, अर्थशास्त्री, संगीतज्ञ, कलाकार, राजनीतिज्ञ और शिल्पकार सभी मानव की एक आदर्श-पूर्ण प्रतिमा गढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं परन्तु मूर्ति अभी तक अपूर्ण ही है।

अपने प्रयत्नों में इनको असफल होते देख पंत जी कवि के पास आते हैं और पूछते हैं कि क्या वह मानव की निर्दोष मूर्ति का निर्माण कर सकेगा ?

'हे राजनीतिविद्, अर्थविज्ञ !
× × ×
तुम बना न सके उसे स्वतन्त्र !
हे दर्शनिज्ञ, शत तर्कों से,
× × ×
तुम भी न दे सके मानव को
उसकी मानवता का प्रमाण !
× × ×
गायक, था कोमल, मधुर कंठ,
× × ×
मानव उर तुम मानव उर में
लय कर न सके, गा मर्म गान।
कवि, नव युग की चुन भाव राशि
नव छंद, आभरण, रस विधान,

तुम बन न सकोगे जन मन के
जाग्रत भावों के गीत यान !'

कवि की उत्कंठा और आकुलता ने कविता में प्राण डाल दिये हैं और उसे गहरी मार्मिकता प्रदान की है। पर यहाँ एक बात कहना आवश्यक हो जाता है और वह यह कि जीवन की समग्रता को इनमें से कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। केवल प्रत्येक किसी, जीवन के, एक अंश को सुधार सकता है, उसे सुन्दर बना सकता है। प्रत्येक की अपनी अपनी सीमा है। अर्थ शास्त्रियों, दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों तथा कलाकारों ने जीवन को अधिक उज्ज्वल और सुन्दर बनाने का प्रयास किया है, पर इनमें से कोई भी जीवन को सम्पूर्णता प्रदान न कर सका। पर कवि को जो यहाँ विशेष स्थिति में रखा गया है उसका एक कारण है कि कवि को, विचारकों और साधकों की अपेक्षा, विशेष व्यापक दृष्टि प्राप्त है। वह चाहे तो, राजनीति, दर्शन, अर्थनीति, संगीत, चित्र, शिल्प सभी को अपने में समेट सकता है। कवि जीवन को जितनी व्यापकता प्रदान कर सकता है उतना अन्य व्यक्ति नहीं। कारण यह है कि भावनाओं को आंदोलित करने का जो अमोघ अस्त्र उसके पास है, वह अन्य किसी के पास नहीं। पर जीवन को समग्रता प्रदान करने के हेतु सब के योगदान की आवश्यकता है। एक बार मानव जीवन की ओर बढ़ जाने पर मानव जीवन की असंगतियाँ और विपत्तियाँ उसकी समस्त यथार्थता, कवि के सम्मुख उपस्थित हो जाती है। इसके मूल में जाने की कवि की इच्छा होना स्वाभाविक ही है। अब प्रश्न होता है कि हमारे सामाजिक और वैयक्तिक दुखों का मूल कारण क्या है ? पंत जी ने इन सब पर विचार किया है। प्रगति का अर्थ, कवि की दृष्टि, में, मानव सुख की वृद्धि में समाहित है—यह स्पष्ट सत्य, जिसका अर्थ-वैशिष्ठ्य इतना सीधा सादा होने के कारण ही खो सा जाता है, यह महत्वपूर्ण सत्य, पंत जी ने इस प्रकार रखा है :-

'मांस मुक्ति है भाव मुक्ति, औ भाव मुक्ति जीवन उल्लास,
मांस मुक्ति ही लोक मुक्ति भव जीवन का जो चरम विकास।'

—युगवाणी

मानव की पूर्णता के लिये आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के सुधारों

की आवश्यकता है। 'युगवाणी' की दो रचनाएँ 'खोज' और 'द्वन्द्व' इस सम्बन्ध में देखने योग्य हैं—

'आज मनुज को खोज निकालो !
जाति वर्ण संस्कृति समाज से
मूल व्यक्ति को फिर से चालो !
देश राष्ट्र के विविध भेद हर
धर्म नीतियों में समत्व भर,
रूढ़ि रीति गत विश्वासों की
अंध यवनिका आज उठालो !'

स्त्री-पुरुष के आपसी सम्बन्ध को लक्ष्य करके 'ग्राम्या' में एक बड़ी ही मनोरंजक रचना है, जिसका नाम है 'द्वन्द्व' प्रणय। कवि को शिकायत है कि मनुष्य का प्रणय समाज में गोपन रीति से, शंकित हृदय से चलता है। उनका मत है कि प्रेम का व्यवहार, चुम्बन आदि नर-नारी के बीच वैसी ही खुल कर चलना चाहिये जैसे प्रकृति के जीवों में होता है। उदाहरणार्थ जैसे किरण लहर का चुम्बन करती है, अलि जैसे कुसुम का रस पान करता है, सुरभि जैसे समीर में समा जाती है, पक्षी जैसे मिलन से पूर्व गाते हैं, मृग-मृगी जैसे मिथुन के पूर्व सींगों से शरीर रगड़ते हैं। कितना आकर्षक है यह प्रणय ! पर एक बात यहाँ मैं कहूँगा कि मानव चिन्तनशील है, तथा जिस समाज में वह रहता है उसकी कुछ अपनी सीमायें, मर्यादायें हैं। यदि प्रकृति के अविकसित तथा अचिंतनशील पशु पक्षियों की भाँति मनुष्य भी गली, हाट, बाजार में खुल्लम खुल्ला प्रेम करता फिरे तो समाज की दुर्दशा हो जाये तथा सौन्यर्य की दृष्टि भी संस्कृत न रहेगी। पर हाँ यह बात अवश्य माननीय है कि प्रणय के रास्ते में जो माँ, बाप तथा सामाजिक बंधन व्यवधान बन कर आते हैं, उन्हें मिट जाना चाहिये जिससे कि प्यार करने वाला युग्म, जी भर कर स्वतन्त्रता से प्यार कर सके।

"मानव को महान्, विशाल जन समाज के रूप में देखने वाले पंत जी स्वर्जित प्रतिष्ठा से सम्पन्न, एकाकी तथाकथित 'स्वतन्त्र' व्यक्ति के ही

हृदय के सुख दुख के राग में नहीं डूब जाते। इसका एक कारण यह है कि उनके आनन्दग्राही हृदय में जन समुदाय की सामूहिक भावना को भी ग्रहण और चित्रित करने की शक्ति है।"—श्री वेडेकर।

धोबी, कहार आदि गरीब लोगों का जीवन इतना अपूर्ण, दयनीय और भिंचा हुआ है कि सामान्य कवि के लिये उनकी सामाजिक भावनाओं में तन्मय और तल्लीन होना तो दूर रहा, उन भावनाओं के अस्तित्व का आभास भी उसे नहीं हो सकता। मगर पंत जी की रचनाओं में 'धोबियों का नृत्य' और 'कहारों का रुद्र नृत्य' देखने को मिलते हैं। दलित, शोषित, अधिकार-वंचित लोगों के जीवन में भी उद्दाम राग रंग कितना उत्साह भर सकता है, और उनके हृदय में छिपी कितनी मस्ती उभार सकता है—यह उपरोक्त कविताओं में हम अनुभव करते हैं।

श्री वेडेकरजी के शब्दों में—"पंत जी की कविताओं में हम प्रगतिशील और प्रयत्नशील मनुष्यों का, और विशेष रूप से मनुष्य समाज का, चित्रण देखते हैं। इस दृष्टिकोण से उन्हें जन-समाज का कवि कहना योग्य होगा। तथापि, यह देखना आवश्यक है कि कहीं-कहीं उनके मानव का जो चित्र हमारे सम्मुख आता है वह वास्तविकता से हटा हुआ और गलत होता है। उनकी आधुनिक रचनाओं में 'मार्क्स के प्रति', 'यंत्र के प्रति', 'मजदूर के प्रति' आदि कविताएँ हैं; जिनमें मार्क्सवाद का समर्थन और स्पष्टीकरण परिलक्षित है, किन्तु इनमें उनका 'मानव' अभी तक पुरानी चैतन्यवाद की संज्ञा के कोये से मुक्त नहीं हो सका है।" पंत जी ने मार्क्सवाद का अध्ययन किया है, मार्क्स का शिष्यत्व ग्रहण किया है। अनेक रचनाओं में, जिन्हें केवल प्रचारात्मक पद्य कहना चाहिये उन्होंने मार्क्सवादी तत्वों को छन्दोबद्ध किया है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि उनकी 'मानव'-कल्पना मार्क्सवादी है। पंत जी पूर्ण रूप से मार्क्सवादी नहीं हैं, क्योंकि पंत जी समाज की निरन्तर प्रगति का कारण पंत जी इस प्रकार बताते हैं—

'मानवता का रक्त-मांस जग जीवन से चिर ओत-प्रोत',

—(युगवाणी)

इस 'जीव चैतन्य' का अर्थ क्या है ? पंत जी उत्तर देते हैं :-

'क्षुद्र आत्म पर भूल, भूत सब हुए समन्वित
तृण तरु से तारालि-सत्य है एक अखंडित
मानव ही क्यों इस असीम समता से वंचित' —(ग्राम्या)

इस असीम समानता से मानव कैसे वंचित रह सकता है ? इस जग जीवन ही को पंत जी कभी-कभी "चिन्मय प्रकाश" कहते हैं :

'चिन्मय प्रकाश से विश्व उदय, चिन्मय प्रकाश में विकसित, लय !
जड़ चेतन, चेतन जड़ बन बन रचते चिर सृजन प्रलय आभनयं,'
—(पल्लविनी)

पंत जी के मत से अविकृत आत्मा इस जग जीवन का एक अंश है। वे कहते हैं कि इस 'नित्य, शुद्ध और पवित्र सत्य' अर्थात् मनुष्य आत्मा को, भौतिकता के मद ने ग्रस लिया है। वे हाड़ मांस के मानव को सम्बोधन करते हुए कहते हैं—

'भूतवाद उस स्वर्ग के लिये है केवल सोपान !
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन, अम्लान।'— (युगवाणी)

'मानव विकास को 'जीव चैतन्य' तत्व के आधीन दिखाने का प्रयत्न जो पंत जी ने किया है उस कारण उनकी सामाजिक कल्पना में उलझाव पैदा हो गया है।' उनके मतानुसार संसार का मूल तत्व प्रेम ही है—

'भव तत्व प्रेम, साधन हैं उभय विनाश, सृजन
साधन बन सकते नहीं सृष्टि गति में बन्धन !'—(ग्राम्या)

मार्क्सवादी सिद्धान्त वास्तव में शहरी क्रांति के लिये ही उपयुक्त थे। पाश्चात्य देशों में मजदूर क्रांति द्वारा नव समाज का निर्माण करना ही मार्क्स का सिद्धांत था। अतः मार्क्स दर्शन एकांगी रह जाता है। पर पंत जी तो मनुष्य सभ्यता को ग्रामों में ही पाते हैं :—

"मनुष्यत्व के मूल तत्व ग्रामों ही में अन्तर्हित,
उपादान भावी संस्कृति के भरे यहाँ हैं अविकृति।

"शिक्षा के सत्याभासों से ग्राम नहीं हैं पीड़ित,
जीवन के संस्कार अविद्या तम में जन के रक्षित।"

इस प्रकार के अनेकों उदाहरण दिये जा. सकते हैं। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि पंत जी के जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण को मार्क्सवादी बतलाना युक्ति संगत नहीं। उनको हम पूर्ण रूप से चेतन्यवादी, जीव-चेतन्यवादी ही मान सकते हैं। पंत जी ने, मार्क्सवादी दर्शन को स्पष्टता, विश्वास और पूर्णता के साथ उपस्थित किया है। पंत जी ने साम्यवादी विचारधारा को उसी रूप में न अपना कर उसमें पूर्णता देने और उसकी कमियों को पूरा करने के लिए अन्य मनीषियों एवं चिन्तकों की विचारधारा को समन्वित किया है। अतः उन्होंने साम्यवादी भावधारा को अर्थात् उसके दर्शन को लोक-कल्याण की भावना का पर्यायवाची मानकर अपनाया है। प्रत्युत उन्होंने तो साम्यवादियों के संकीर्ण दृष्टिकोण को लक्षित करके कहा है कि--

"हाड़ मांस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज ?
हाथ-पांव संगठित चलायेंगे जग-जीवन काज ?
दया द्रवित हो गए देख दारिद्र्य असंख्य तनों का ?
अब दुहरा दारिद्र्य उन्हें दोगे निरुपाय मनों का ?
आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम ?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?
मानव कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल ?
सरिता का जल मृषा ? सत्य केवल उसके दो कूल ?

अध्यात्म और भौतिकता के सम्बन्ध में पंत का दृष्टिकोण उनके शब्दों में ही देखिये—"विशिष्ट व्यक्ति की चेतना सदैव ह्रासोन्मुख समाज की रूढ़ि रीति-नीतियों से ऊपर होती है, उसके व्यक्तित्व की सार्वजनिक उपयोगिता रहती है। अतएव उसे किसी समाज और युग में मान्यता मिल सकती है। विचार और क्रम में किसका प्रथम स्थान है। हीगल (Hegel) का 'आइडिया' (Idea) प्रमुख है कि 'मार्क्स' का 'मैटर' (Matter)—ऐसे तर्क और

ऊहापोह व्यर्थ जान पड़ते हैं । उन्नसवीं सदी के शरीर और मनोविज्ञान संबंधी अथवा आदर्शवाद-वस्तुवाद सम्बन्धी विवादों की तरह अध्यात्म और भौतिकवाद का विषय है शाश्वत (निरपेक्ष) चेतना। दोनों ही एक दूसरे के अध्ययन और ग्रहण करने में सहायक होते हैं और ज्ञान के सर्वाङ्गीण समन्वय के लिए प्रेरणा देते हैं ।" पंत जी भौतिकवादी हैं, विज्ञान पर उनकी पूर्ण आस्था है पर वे चाहते हैं कि हमारा देश वैज्ञानिक अनुसंधानों से लाभान्वित हो, यहाँ के निवासी 'अपने जीवन को समृद्धि से परिपूर्ण करें ।' यंत्रों के पक्ष में उन्होंने प्रशस्ति वाक्य भी लिखे हैं । यह गांधी जी का प्रभाव है । आज पंडित नेहरू भी इसी मानववाद और भौतिकवाद समन्वित सिद्धान्तों पर भारत देश को आगे बढ़ाना चाहते हैं । उनका पंचशील का सिद्धान्त भी इसी ओर एक सबल प्रयास है । इस प्रकार भौतिक साधनों को ही कवि ने सब कुछ नहीं माना है । अतएव कवि की इच्छा है—

'संस्कृत हों सब जन, स्नेही हों, सहृदय, सुन्दर,
संयुक्त कर्म पर हो संयुक्त विश्व निर्भर ।
राष्ट्रों से राष्ट्र मिलें, देशों से देश आज,
मानव से मानव—हो जीवन—निर्माण काज ।'

पंत का कवि सामाजिक जीवन के पुनरुत्थान के लिए क्रान्ति और शांति दोनों का पोषक है, संहार और सृजन दोनों का कायल है । कवि की वाणी में लोक मंगल की आभा और आकांक्षा के साथ साथ 'परिवर्तनवाद' का स्वर भरा हुआ है । कवि क्रान्ति के माध्यम से उस पुरातन का, जिसमें पाखण्ड, अनीत, द्वेष और मनोमालिन्य है, विनाश चाहते हैं और उसके स्थान पर नवयुग का निर्माण चाहते हैं जिसमें—

'निज कौशल, मति, इच्छानुकूल
सब कार्य निरत हों भेद भूल,
बन्धुत्व-भाव ही विश्व-मूल ।'

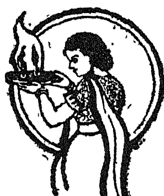
यही भावना उनकी रचनाओं में विकास पा रही है ।

अन्त में मैं पुनः उनके आशावाद की चर्चा करना चाहूँगा। एकाधबार पंत जी भी वैराग्य भाव में संसार को अपूर्ण, अस्थिर कहकर आत्मत्याग का दर्शन हमारे सामने रखते हैं—

"चिर पूर्ण नहीं कुछ जीवन में अस्थिर है रूप जगत का मद,
बस आत्म त्याग, जीवन विनिमय, इस संधि जगत में है सुखप्रद।"

पर इस प्रकार की भावना से कवि को निराशा नहीं होती और इसलिए उनकी कविता में जो जीवन है, जो विकासशीलता है, उसमें शक्ति है और हम इस शक्ति का अनुभव करते हैं। पंत जी एक आशावादी कवि हैं और भविष्य में भी रहेंगे और समाज और 'मानव' के उत्थान के लिए वे सदैव प्रयत्नशील दीख पड़ेंगे। इसी से तो वे कहते हैं :—

"............मेरे प्राण सौन्दर्यवादी हैं, और मेरा सौन्दर्य लोक प्राण है, इसीलिए मैं कम्युनिज्म से प्रभावित हूँ।"



पंत का 'पल्लव' और उसकी अनुभूति



'पल्लव' में सन् १६१८–१६ की विशिष्ट रचनाएँ, जो ग्रन्थि-वीणा में स्थान न पा सकीं, तथा उसके पश्चात् सन् १६२५ तक की कविताएँ संग्रहीत हैं। इस प्रकार कवि के सन् २५ तक के विकास का यह अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। सर्व प्रथम इसी संग्रह में कवि पंत की प्रतिभा को पूर्ण उन्मेष प्राप्त हुआ है। प्रायः सभी अलोचकों की दृष्टि में पंत जी की प्राकृतिक तथा अन्य सभी रचनाओं में यह एक सर्व श्रेष्ट कृति है। जिस काल में ये रचनाएँ की गई हैं उस समय कवि अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों से प्रभावित रहे हैं। यही कारण है कि इन कविताओं में टेनीसन की स्वर साधना, शैली की कल्पना, कीट्स की मादकता और वर्डस्वर्थ की प्रकृति का निदर्शन पाते हैं। इन रचनाओं में हम एक विशेष प्रकार की शब्द रचना और सौन्दर्य ध्वनि पाते हैं। "वीणा की रहस्य प्रिय बालिका अधिक मांसल, सुरुचिपूर्ण बनकर प्रायः मुग्धा युवती का हृदय पाकर जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील हो गई है। 'सोने का गान', 'निर्झर गान', 'मधुकरी', 'निर्झरी', 'विश्ववेणु', 'वीचिविलास' आदि रचनाओं में वह प्रकृति के रंग जगत् में अभिनय करती सी दिखाई देती है। अब उसे तुहिन वन में छिपे स्वर्ण जाल का आभास मिलता है, ऊषा की मुस्कान कनक मन्दिर लगने लगी है। वह अब इस रहस्य को नहीं छिपाना चाहती कि उसके हृदय में कोमल वाण लग गया है। निर्झरी का अञ्चल अब आँसुओं से गीला जान पड़ता है, उसकी कल-कल ध्वनि उसे मूक व्यथा का मुखर भुलाव प्रतीत होती है। वह मधुकरी के साथ फूलों के कटोरों से मधुपान करने को व्याकुल है।

सरोवर की चञ्चल लहरें उससे आँख-मिचौनी खेलकर उसके आकुल हृदय को दिव्य प्रेरणा से आश्वासन देने लगी है।" 'पल्लव' कृष्णकुमार सिन्हा जी के शब्दों में छायावाद युग का मेनिफेस्टो है, क्योंकि इस पुस्तक में सर्व प्रथम छायावाद के बहिरंग की परीक्षा हुई। 'पल्लव' की प्रथम कविता से ही कवि का स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है, वह (कवि) अपनी कविता के सम्बन्ध में कहता है :—

"न पत्रों का मर्मर संगीत,
न पुष्पों का रस, राग, पराग,
एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल मुस्कान;
सरल शिशुओं के शुचि अनुराग,
वन्य विहगों के गान!
कल्पना के ये विह्वल बाल,
आँख के अश्रु, हृदय के हास,
वेदना के प्रदीप की ज्वाल,
प्रणय के ये मधुमास;
सुछवि के छाया बन की साँस,
भर गई इनमें हाव, हुलास!
आज पल्लवित हुई है डाल;
झुकेगा कल गुञ्जित मधुमास;
मुग्ध होंगे मधु के मधु-बाल,
सुरभि से अस्थिर मरुताकाश!"

इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि पंत जी एक भावना प्रधान कवि हैं। इसमें संकलित कविताओं की आधार भूमि है कवि की भावुकता, जिसके कारण कहीं-कहीं विषय अस्पष्ट ही रहे हैं। इसमें 'हृदय का प्राधान्य है और वह शिशुओं का शुचि अनुराग न होकर युवक का उन्मुक्त प्रणय गान ही है।' 'पल्लव' की 'उच्छ्वास' और 'आँसू' शीर्षक कविताएँ प्रेम भावना से

ओत प्रोत सुन्दर रचनायें हैं। ये दोनों रचनायें अत्यन्त ही हृदयस्पर्शी हैं। इनमें भी 'आँसू' अधिक सुन्दर है। 'आँसू' में पीड़ा जब घनीभूत हो जाती है और प्रत्येक कल्पना और' अनुभूति जब उसी का भार ढोती चलती है उस समय हृदय कितना विह्वल हो उठता है। देखिये :—

कभी उर में अगणित मृदुभाव,
कूजते हैं विहगों से हाय!
अरुण कलियों के कोमल घाव,
कभी खुल पड़ते हैं असहाय।

प्रेम के घावों की अरुण कलियों से उपमा कितनी मधुर और संगत है। और प्रेम की पीड़ा भी कितनी मधुर होती है! प्रणयी उसका स्वागत करे या विस्मृति चाहे! वह निर्णय ही नहीं कर पाता कि यह 'विरह है अथवा वरदान!' किन्तु यह वरदान कितना कसकता है इस हृदय में! वह प्रणय को ही कोसने लगता है :—

करुण है हाय! प्रणय,
नहीं दुरता है जहाँ दुराव;
करुण नर है वह भय,
चाहता है जो सदा बचाव।

प्रेम ऐसी वस्तु है जिसे मनुष्य छिपाना चाह कर भी नहीं छिपा पाता है, अथवा वह छिपाना चाहता ही नहीं, केवल अभिनय भर करता है। यह कैसी विडम्बना है यह! और उस पर यह भय कि न जाने वे क्या सोचेंगे, कैसा अनुभव करेंगे! सारे ही इरादे और निश्चय एकदम बिखर जाते हैं। ब्राउनिंग अंग्रेजी कवि इसी भाव को कितनी विदग्धता से वर्णन करता है :—

"Had I said this Had I done This!
So I might win, So I migh miss"

"यदि मैंने यह कहा होता, यदि मैं यह उपाय करता, तो वे अवश्य

प्रसन्न हो जाते, मैंने उन्हें अवश्य जीत लिया होता ; पर यदि वे नाराज हो जाएँ !" इसी भाव को एक उर्दू कवि में देखिये—

"इरादे बाँधता हूँ, सोचता हूँ, तोड़ देता हूँ,
कहीं ऐसा न हो जाए ··· कहीं ऐसा न हो जाए।"

किन्तु पंत जी की पीड़ा इन सबसे गहरी है, यहाँ प्रिय ही नहीं रूठे, लोग भी बाधक हैं ; और यह हृदय भी तो नहीं भरता !

"करुण तम भग्न हृदय,
नहीं भरता है जिसका घाव,
करुणा अतिशय उसका संशय,
छुड़ाते हैं जो जुड़े स्वभाव !!
किए भी हुआ कहाँ संयोग ?
टला टाले कब इसका वास ?
स्वयं ही तो आया यह पास,
गया भी, बिना प्रयास।"

इस संशय ने पंत जी को पर्याप्त पीड़ा पहुँचाई है, क्योंकि 'उच्छ्वास' में भी उन्होंने इसे बहुत कोसा है। एक प्रणयी हृदय कितनी आशाओं से अपनी प्रेयसी को कल्पनाओं से सजाता है। पर जब वह निराश हो उठता है और उसे अपनी स्वप्न मरु की मरीचिका की भाँति लगने लगते हैं, तब उसके हृदय के तार टूट जाते हैं और प्रेमी का सम्पूर्ण संसार वेदना और उच्छ्वास बन जाते हैं। 'उच्छ्वास' में यही भाव देखिए :—

"बालकों का सा मारा हाथ,
कर दिये विकल हृदय के तार !
नहीं अब रुकती है झंकार,
यही था हा ! क्या एक सितार ?
हुई मरु की मरीचिका आज,
मुझे गंगा की पावन धार !

स्वानुभूति मूलक एक और कविता 'मौन-निमंत्रण' 'पल्लव' में सराहनीय है। इसमें सभी पद एक से ही सप्राण हैं, 'आंसू' की भाँति भिन्न वर्णी नहीं। पर यह रचना 'आँसू' जैसी उत्कृष्ट नहीं। इसमें कवि की अनुभूति 'आँसू' जैसी गहरी नहीं। इसमें वह सुख-दुख, स्पृहा-वितृष्णा, उत्पत्ति-विनाश, सर्वत्र एक अनंत लय, शाश्वत संगीत का आभास पाता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है, जैसे अनन्त हृदय का अपार स्नेह उसे संकेत कर रहा है......"मिलन सुख के लिये। वह सोचता है, कौन है वह चिर सुन्दर, खुल कर सामने क्यों नहीं आ जाता? नीरव चाँदनी जब अपनी स्वप्निल अंगुलियों से विश्व शिशु को तन्द्रा के पालनों में सुला देती है, तब वह कौन है जो स्वप्न रथ पर मेरे हृदय में संचरण करता है और तारक रश्मियों से मुझे निमंत्रण देता है?—

'स्तब्ध ज्योत्सना में जब संसार, चकित रहता शिशुसा नादान,
विश्व के पलकों पर सकुमार, विचरते हैं जब स्वप्न आजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन, निमन्त्रण देता मुझको मौन।'

जब विश्व-पतझड़ की डाली वसन्त से यौवन का वरदान पाती है और अवसाई वनस्पतियाँ अनजाने ही एक कसक से विह्वल होकर खिल पड़ती हैं, तब ओ विराट सौन्दर्य, कौन हो तुम, जो मुझे प्रेम-निकेत की ओर पथ दिखलाते हो?—

"देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर कैसे मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन!"

इसी प्रकार वह सर्वत्र एक आह्वान का मौन संकेत पाता है, जो उसे उत्सुक कर छिप जाता है। कवि जान नहीं पाता, वह कौन इस अनन्त का सूत्रधार है जो परदे के पीछे से डोरी हिलाया करता है? अध्यात्मवादी इसे रहस्यवाद की पहली सीढ़ी कहते हैं। "पल्लव" के कवि का दूसरा विषय है—

प्रकृति। इसमें यत्र तत्र प्रकृति के अत्यंन्त ही सुन्दर खण्ड चित्र मिलते हैं। प्रकृति के प्रति कवि का आकर्षण बचपन से ही रहा है, परन्तु कभी कभी नारी सौन्दर्य उसके हृदय को आकृष्ट करने का प्रयास करती है, पर वह अपने आप को नारी को पूरी तरह से समर्पित नहीं कर देता है। प्रकृति और नारी के बीच उसकी आत्मा में द्वन्द्व चलता है और अन्त में प्रकृति की ही विजय होती है। जैसे :—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को,
तज कर तरल तरंगों को
इन्द्र धनुष के रंगों को
तेरे भ्रू भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग सा मन ?
भूल अभी इस जग को। —मोह ('पल्लव')

प्रकृति परक कविताओं में वीचिविलास, मौन निमंत्रण, बादल, नक्षत्र, वसंत श्री, मधुकरी आदि हैं; प्रकृति में कवि ने चेतना का आभास देखा है। मानव की भाँति उसमें भी क्रिया कलाप होते रहते हैं। प्रकृति सदा से ही मानव हृदयों को आश्वासन देती रहती है तथा उसके व्यक्तित्व में मानव को चेतना प्रदान करने की अक्षम्य शक्ति है। वीचिविलास में कवि कहता है :—

'मुग्धा की सी मृदु मुस्कान
खिलते ही लज्जा सी म्लान;
स्वर्गिक सुख की सी आभास
अतिशयता में अचिर, महान्;
दिव्य भूति सी आ तुम पास,
कर जाती हो क्षणिक विलास,
आकुल उर को दे अश्वास!'

इस प्रकार कवि का हृदय प्रकृति के साहचर्य्य से आश्वासन पा रहा है। प्रकृति के सम्पर्क में कवि के आकुल उर को शांति मिलती है। आगे चलकर कवि 'नक्षत्र' शीर्षक कविता में प्रकृति के अनिंद्य सौन्दर्य के साथ साथ दार्शनिक चिंतन का भी समावेश कर रहा है। नक्षत्र के जीवन को देखकर कवि मानव के क्षणिक जीवन पर विचार करने लगता है। देखें :—

'ऐ अनंत की अगम कल्पना,
ऐ अशब्द – भारति अविषय
आदि नग्न सौन्दर्य निरामय।
मुग्ध सृष्टि की चरम – विजय !
× × ×
ऐ नश्वरता के लघु बुद् बुद्,
काल चक्र के विद्युत कण,
ऐ स्वप्नों के नीरव चुंबन,
तुहिन दिवस, आकाश सुमन !'

धीरे धीरे कवि मानव जीवन की विषमताओं तथा उसके तत्वदर्शन की ओर अग्रसर हो रहा है। कल्पना से कवि भाव के क्षेत्र में पदार्पण कर रहा है। कल्पना का साम्राज्य कब तक मन को भुलावे में रख सकता है। जीवन की विषमताएँ कभी न कभी तो मन को अपनी ओर सोचने के लिए आकृष्ट कर ही लेती हैं 'बादल' कविता में कवि की चिंतना शक्ति मुखर हो उठी है। बादल में भाव तत्व के साथ साथ कल्पना तत्व भी समाहित है :—

"पर्वत से लघु धूलि, धूलि से,
पर्वत बन, पल में साकार—
काल चक्र से चढ़ते, गिरते
पल में जलधर, फिर जलधार;
कभी हवा में महल बनाकर,
सेतु बाँधकर कभी अपार,
हम विलीन हो जाते सहसा,
विभव भूति ही से निस्सार !"

इस प्रकार भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से 'पल्लव' एक प्रौढ़ रचना है, तथा इसमें कवि का दार्शनिक पक्ष एवम् विचारधारा पूर्व रचनाओं से अधिक जागरूक है। पंत जी के अपने शब्दों में—"पल्लव युग का मेरा मानसिक विकास एवं जीवन की संग्रहणीय अनुभूतियाँ तथा राग विराग का समन्वय बिजलियों से भरे बादल की तरह प्रतिबिम्बित है।" 'पल्लव' की सर्वश्रेष्ठ रचना है 'परिवर्तन', जिसका हिन्दी साहित्य में एक विशिष्ट स्थान है। 'परिवर्तन' में युग की विशेषताओं, युग की वाणी और कटु सत्य एक ही साथ मुखरित हो उठा है। 'परिवर्तन' के एक एक सत्य को लेकर कवि बड़ी ही गम्भीरता से उसकी कटुता का अनुभव करता है। सभी ओर भीषण चक्र चल रहा है, स्वच्छन्द.........अनर्गल.... .., उसे कोई रोक नहीं सकता और न बदल ही सकता है। महत्तर से महत्तम शक्तिशाली सम्राट, या विराट् से विराट् प्राकृतिक शक्तियाँ भी उसके अंकुश के आगे विवश हो जाती हैं। वह पुकारता है—"ओ अनंत शक्ति ! तुम्हारी क्रीड़ा कितनी भीषण है। कोमल से कोमल और कठोर से कठोर तुम्हारे इस मर्दन में शून्य हो जाता है। तुम अविराम.........एक अरुद्ध चक्र के समान, ब्रह्माण्ड की छाती पर अनस्तित्व की भीषणता से घूम रहे हो। यहाँ सभी कुछ ध्वस्त हो रहा है; केवल तुम्हीं शाश्वत् इस सृजन संहार के व्यापार में मन बहला रहे हो !" वास्तव में यही कविता का दर्शन भी है। कवि बड़ी गम्भीरता से इस जग के परिवर्तन-क्रम को देख रहा है :—

खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण क्षण;
अभी उत्सव औ हास हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु उच्छ्वास !
अचिरता देख जगत की आप,
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डालता पातों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश;

भारतीय दर्शन का खुला प्रतिपादन कवि ने 'परिवर्तन' नामक कविता में किया है। उसका विश्वास है कि एक अनंतशक्ति-चिरंतन शक्ति निरंतर क्रीड़ा कर रही है। कोमल, वीभत्स तथा कठोर सभी उसमें मिलकर, उस तक पहुँच कर एक हो जाते हैं। फिर भी, वह चिरन्तन शक्ति, भौतिकता से सर्वदा अछूती रहती है। इसके अतिरिक्त 'परिवर्तन' की विशेषता है उसकी भाषा की जो कवि के चिन्तन के फलस्वरूप वह भावना के समकक्ष हो गई है। 'परिवर्तन' की विशिष्ठता प्रकृति चिंतन तथा सौन्दर्य से जीवन चिंतन की ओर मुड़ने में है। कवि पथ में आई हुई वस्तुओं के प्रभाव से ही केवल प्रभावित नहीं हुआ है, वरन् उसका व्यक्तिगत चिन्तन भी प्रस्फुटित हो गया है। 'परिवर्तन' में कवि का दृष्टिकोण सापेक्षिक-दृष्टिकोण (तुलनात्मक) रहा है। वह अपने पैरों की जमीन को देखता है और फिर पीछे की ओर। उसके मन में एक गहरी और गम्भीर विषमता आ जाती है। वह वर्तमान की तुलना अतीत से करने लगता है। अतीत का आकर्षण सौन्दर्य, सुख वैभव आज नहीं है और आज का जीवन भविष्य की गोद में सीमित हो जायगा। विकास-प्रिय मानव वास्तव में नित्य प्रति पतनोन्मुख है। प्रभात-सन्ध्या में, प्रणय-चुम्बन आँसुओं में, मधुऋतु पतझर में, जीवन मृत्यु में परिवर्तित होता ही रहता है और यही जड़ विश्व का चेतन रहस्य है। सभी वस्तुएँ, एक एक कण—अस्थिर हैं, परिवर्तनशील हैं—

अहे वासुकि सहस्त्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्षःस्थल पर !
शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुण्डल
दिङ् मण्डल।

अथवा :—

एक सौ वर्ष, नगर उपवन
एक सौ वर्ष विजन वन !
यही तो है असार संसार
सृजन, सिंचन, संहार !

संसार की असारता का उल्लेख करते हुए कवि सुख दुख का चिंतन करता है। कवि कहता है कि यदि संसार का सुख सर्वदा दुख में परिवर्तित होता रहता है तो दुख भी तो सुख में परिवर्तित हो जाता है। हमें किसी भी वस्तु की उपयोगिता का केवल एक ही पक्ष नहीं देखना चाहिये, प्रत्युत दूसरे पक्ष को भी ध्यान में रखना चाहिये। परिवर्तन संसार के लिये आवश्यक नियम है। नवीनता लाने के लिये परिवर्तन आवश्यक है और नवीनता आकर्षण है—हृदय के आनन्द का विराम स्थल है :—

'बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार;
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया, क्षमा औ प्यार !'

× × ×

आज का दुख कल का आह्लाद,
और कल का सुख, आज विषाद;
समस्या, स्वप्न गूढ़ संसार,
पूर्ति जिसकी उस पार !
जगत जीवन का अर्थ विकास,
मृत्यु, गति क्रम का ह्रास !

'परिवर्तन' नामक चिन्तनशील कविता से कवि ने अपने मनन और चिंतन से कुछ निष्कर्ष निकाले हैं—(१) विश्व का स्वरूप द्वन्द्वात्मक है, अतः हमें तुलनात्मक दृष्टिकोण से इसका अध्ययन करना चाहिये। (२) परिवर्तन अनादि काल से आये हुए नियमक कारण होता है—

'हाय री दुर्बल भ्रांति !
कहाँ नश्वर जगती में शान्ति ?
सृष्टि ही का तात्पर्य अशान्ति !
जगत् अविरल जीवन संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम—'

(३) विश्व सुखों का ढेर नहीं है। परिवर्तन के नियम के कारण उसमें सुख दुख, हर्ष-विषाद आते ही रहते हैं और यही जीवन का आकर्षण भी है। (४) परिवर्तन को विश्व का आवश्यक विधान समझना चाहिए, क्योंकि बिना परिवर्तन के नवीनता नहीं प्राप्त होगी, जो जीवन तथा विश्व के लिये आकर्षण की वस्तु और हमारे मन के लिये शांति स्थल है। बिना नवीनता के जीवन थका पका सा, बोझिल दिखाई देगा और वह पूर्णतः नीरस लगने लगेगा। इस प्रकार कवि ने जीवन के अच्छे और बुरे दोनों पहलुओं को संभाला है और कहा है कि इन्हीं दोनों पहलुओं के संतुलन का नाम जीवन है। इस प्रकार श्री फूलदेव जी पाण्डेय के शब्दों में 'कवि में भविष्यात्मक मानव चिंतन के अंकुर यहीं दिखाई देने लगते हैं।' वास्तव में हिन्दी जगत में 'परिवर्तन' कविता का एक विशिष्ठ स्थान है। 'पल्लव' का सम्पूर्ण सौन्दर्य भाव, भाषा तथा लय का—इसी पर बहुत कुछ आधारित है। महाकवि निराला जी के शब्दों में—'परिवर्तन किसी भी बड़े कवि की कृति से निःसंकोच मैत्री कर सकता है।' भाव और भाषा दोनों ही दृष्टियों से यह कविता अद्वितीय है। इसकी भाषा में ओज और प्रवाह जीवन दर्शन के साथ-साथ चले हैं। जीवन के सभी रंग वीभत्स, करुण, श्रृङ्गार इसमें समाहित हैं। 'परिवर्तन' के सम्बन्ध में स्वयं कवि के ये शब्द अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं :—"इस कविता जगत् में नित्य जगत् को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में जैसे परिवर्तन के रचना काल से प्रारम्भ हो गया था, 'परिवर्तन' उस अनुसंधान का केवल प्रतीक मात्र है।"

प्रकृति और सौन्दर्य का उपासक यह कवि प्रारम्भ से ही चिन्तनशील रहा है। यह उसके कवित्व और वक्तव्य से ध्वनित होता है। जब वह

किशोर था, तभी उसने विवेकानन्द और रामतीर्थ का दर्शन हृदयंगम किया। विवेकानन्द का दर्शन आध्यात्मिकता के माध्यम से राष्ट्र की सेवा करना है और रामतीर्थ का दर्शन जगत् के माध्यम से आध्यात्मिकता को प्राप्त करना है। कवि के ऊपर इन दोनों दर्शनो का प्रभाव पड़ा है। 'पल्लव' की 'परिवर्तन' कविता में हम यह चिंतन देख आये हैं। 'पल्लव' तक आते-आते उसका चिंतन प्राधान्य पा लेता है और 'परिवर्तन' में इसी से कवि अशांति से विकल होकर पुकार उठता है :—

"एक सौ वर्ष नगर उपवन, एक सौ वर्ष विजन वन।
यही तो है असार संसार, सृजन, सिञ्चन, संहार॥"

'पल्लव' में, सारांश में, कवि की प्रतिभा का प्रौढ़ विकास है। 'वीणा' और 'ग्रन्थि' में किशोरावस्था के गीत हैं और 'पल्लव' में यौवनावस्था के। अब कवि की अनुभूति और भावोन्माद में स्वाभाविक वेग आ गया है और कवि अब कल्पना को खुल कर खेलने देता है।



'गुंजन' की दार्शनिक पृष्ठभूमि

SSS

'पल्लव' में चाहे कवि का अनुभूतिगत योग प्रकृति के साथ रहा हो या नहीं, वह उसके पास ही अधिक रहा; किन्तु 'गुञ्जन' में मानवीय भावनाएँ सौन्दर्य और महत्व ने उसे अधिक आकर्षित किया। 'पल्लव' के उपरांत 'गुञ्जन' का आगमन हुआ। 'पल्लव' के बाद ही कवि पर दैहिक और दैविक विपत्तियों का आक्रमण हुआ। इसी बीच कवि दर्शन और उपनिषद् के अध्ययन की ओर भी झुके तथा जीवन रहस्यों के अनुसंधान में प्रवृत्त हुए। इस प्रकार उनके जीवन की दिशा ही परिवर्तित हो गई। कवि के जीवन में कुछ समय के लिए नैराश्य और उदासीनता छा गई। मानव के जीवन के अनुभवों का इतिहास बड़ा ही करुण प्रमाणित हुआ। जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी। 'पल्लव' में कवि ने कहा है :—

'खोलता इधर जन्म लोचन
मूँदती उधर मृत्यु क्षण क्षण
वही मधु ऋतु की गुञ्जित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार
अकिंचनता में निज तत्काल,
सिहर उठती, जीवन है भार।

परन्तु धीरे धीरे भारतीय दर्शन ने कवि के मन को स्थिर कर दिया और कवि ने 'गुञ्जन' में आकर अपने जीवन के प्रति एक नवीन आशा-समन्वित दृष्टिकोण को लेकर ईश्वर जीव, प्रकृति, मुक्ति आदि समस्याओं पर विचार

किया। भौतिक जगत से कवि का विश्वास उठ गया और उसने भारतीय आस्तिकता का आँचल दृढ़ता के साथ पकड़ा। जैसे :—

'जग जीवन में उल्लास मुझे,
'नव आशा, नव अभिलाष मुझे,
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे।'

'पल्लव' का व्योम विहारी गीत-खग 'गुञ्जन' में जीवन के विटप पर उतर आया है। कवि ने जीवन तरु को डाल डाल की फेरी लगाई है और पाया है कि इस तरु की डाली में 'सुख के तरुण फूल हैं' और 'कुछ दुख के करुण शूल' :—

'देखूँ सब के उर की डाली—
सब में कुछ सुख के तरुण फूल,
सब में कुछ दुख के करुण शूल;
सुख-दुःख न कोई सका भूल ?''

मानव सदैव जीवन में चाहता है सुख की प्राप्ति करना पर उसे मिलता है दुख। पग पग पर उसे सुवासित पुष्पों के स्थान पर 'कुटिल काँटों' का सामना करना पड़ता है कवि जीवन की इस असंगति पर विचार करता है और पाता है कि हमारे दुखों का मूल कारण हमारी मृग-तृष्णा ही है—हमारी अमर्यादित अभिलाषायें हैं। उदाहरणार्थ वे कहते हैं :—

'बह जाता बहने का सुख,
लहरों का कलरव, नर्तन,
बढ़ने की अति इच्छा में,
जाता जीवन से जीवन।'

कवि को जीवन की 'अति उत्पीड़न' तथा 'अतिशय दुख' दोनों ही स्थिति विकृत दिखाई देती हैं। कवि तो चाहता है—

'मानव जग में बँट जावें,
दुख सुख से औ' 'सुख दुख से।'

और फिर— 'सुख दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरण;
फिर घन में ओझल हो शशि,
फिर शशि में ओझल हो घन।'

यह जीवन के प्रति कवि का समन्वयवादी दृष्टिकोण ही है। ईश्वरत्व पर विश्वास करके ही जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है :—

'सुन्दर विश्वासों से ही बनता रे सुखमय जीवन,
ज्यों सहज सहज सांसों से चलता उर का मृदु-स्पन्दन'

स्वयं पंत जी कहते हैं—"गुञ्जन में मेरी बहिर्मुखी प्रकृति सुख दुःख में समत्व स्थापित कर अन्तर्मुखी बनने का प्रयत्न करती है।" कवि कहता है कि सुख दुख क्षणिक है और आत्मा चिरन्तन है, शश्वत् है। आत्मा को सुख दुख कभी नहीं सताते। यही भारत का दार्शनिश दृष्टि कोण भी है। आत्मानन्द सुख दुख के कठोर प्रहारों से विचलित नहीं होता है:—

'अस्थिर है जग का सुख दुख,
जीवन ही नित्य चिरन्तन ?
सुख दुख के ऊपर, मन का
जीवन ही रे अवलम्बन।'

कवि को ईश्वर की चेतना सत्ता पर तो पूर्ण विश्वास है पर उनका ईश्वर अद्वैतवाद का ब्रह्म नहीं, उन्हें तो ईश्वर के प्रत्यक्ष रूप से प्रेम है। अद्वैत-वादी ब्रह्म को वे 'मोती वाली मछली' कहते हैं। जिसके पाने के लिये उन्हें सागर के निस्तल जल में जाना होगा—जीवन की गहराई में उतरना होगा; यह उनके स्वभाव के सर्वथा प्रतिकूल है। वे द्वैत को चाहते हैं क्योंकि द्वैत में ही उनका व्यक्तित्व सुरक्षित रह सकता है। वे तो विश्व सुन्दरी प्रकृति के रस एवम् भाव सौन्दर्य में ही अवगाहन करके ईश्वर का मनोहारी रूप देखना पसन्द करते हैं :—

"सुनता हूँ इस निस्तल जल में
रहती मछली मोती वाली,

पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल माली।
आयेगी मेरे पुलिनों पर
वह मोती की मछली सुन्दर
मैं लहरों के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छवि जीभर।'

कवि ने प्रकृति एवम् जीव की सत्ता को चिरन्तन माना है। वह इन वस्तुओं को (प्रकृति-वस्तुओं को) नश्वर नहीं कहना चाहता, क्योंकि इनकी नश्वरता में ही संसार असार है और मानव शीघ्र ही विरक्त होने के लिये प्रचेष्टाशील होने लगेगा। इसी हेतु ईश्वर की महत्ता के सदृश प्रकृति और जीव की भी महत्ता है। इनका कम महत्व नहीं 'मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन' में ही अमरता का सन्देश है। जिस प्रकार जीवनधारा चिर व्यापी है, चिरन्तन एवम् शाश्वत् है, उसी प्रकार प्रकृति भी। इसका निर्देश कवि ने 'नौका विहार' शीर्षक कविता की अन्तिम पंक्तियों में किया है—

'शाश्वत् लघु लहरों का विलास।
हे जग जीवन के कर्णाधार!
चिर जन्म मरण के आर पार,
शाश्वत् जीवन नौका विहार।
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान,
जीवन का यह शाश्वत् प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।'

कवि की भावना सर्ववाद (Pantheism) के बहुत निकट है। सर्ववाद के अनुसार वे जड़ और चेतन में भिन्नता नहीं पाते हैं। सम्पूर्ण विश्व में एक चेतन सत्ता का आभास मानते हैं। जैसे—

'आत्मा है सरिता के भी,
जिससे सरिता है सरिता,

जल जल है, लहर लहर रे,
गति गति, सृति सृति, चिर भरिता।'

अर भी—

'मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर ;
यों मौन-मुग्ध किसके बल।'

पंत जी मुक्ति के इच्छुक नहीं, मुक्ति को वे बन्धन मानते हैं। वे तो मुक्तिभाव से पलायन करते हैं। क्योंकि वे मानव के जन्म मरण को शाश्वत् मानते हैं। वे तो जीवन को जब सार्थक समझते हैं जबकि मनुष्य जीवन की लहर लहर से खेलता चले :—

'जीवन की लहर लहर से, हँस खेल खेल रे नाविक,
जीवन के अन्तस्तल में, नित बूड़ बूड़ रे भाविक।'

अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि मानव जीवन की प्रत्येक लहर में, चाहे वह सुख की हो अथवा दुख की, हँसते-हँसते बह जाँए। इस प्रकार आत्म-चिंतन की उस्र ऊर्मि में हम इतने तल्लीन हो जायेंगे कि उसकी प्रत्येक लहर प्रिय प्रतीत होगी। इस जन्म मरण में जीवन की सार्थकता नहीं है। एक अंग्रेजी कविता इसी संबंध में देखिये :—

'Birth is not the beginning of life
Not death is ending
Birth and death begin and end
only a single chapter in life.'

इसी से तो यह अपेक्षित है कि मानव जन्म मरण के विचारों में न फँसकर जीवन के कर्तव्यों को पूरा करता जाए और जीवन को—

'सुन्दर से नित सुन्दर तर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे,
सुन्दर सुन्दर जग जीवन!'

दी हुई पंक्तियों के अनुसार बनाने में सदैव प्रयत्नशील रहे। मानव का वास्तविक सुख इसी में है कि वह अपने जीवन की प्रत्येक परिस्थितियों में हँसते-हँसते कार्य करता चला जाय। वस्तुतः सम्पूर्ण मानव जीवन की सार्थकता इसी में निहित है—

'महिमा के विशद जलधि में
हैं छोटे छोटे से कण
अणु से विकसित जग जीवन
लघु अणु का गुरुतम साधन।'

कवि पंत ज्ञान-शुष्क ज्ञान, से परे भागते हैं। इसे 'शून्य जृम्भामात्र निद्रित बुद्धि की' मानता है। इसी से निर्लिप्त भाव से वे कहते हैं :—

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का,
संस्कृति के स्वर्गिक-स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष विमर्षों का,
लगता अपूर्ण मानव जीवन,
मैं इच्छा से उन्मन उन्मन।
जग जीवन में उल्लास मुझे,
नव आशा, नव अभिलाष मुझे,
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे,
चाहिए विश्व को नव जीवन,
मैं आकुल रे उन्मन, उन्मन।'

अतः पंत जी ने जिज्ञासा प्रकट की है कि विश्व को नव जीवन चाहिए। पर उसका स्वरूप कैसा होगा। इसका उन्होंने स्पष्टीकरण 'ज्योत्स्ना' में इस प्रकार से किया है :—

"आदर्श चिरन्तन, अनुभूतियों की अमर प्रतिमाएँ हैं। ये तार्किक सत्य नहीं, अनुभावित सत्य हैं। आदर्शों को सापेक्ष दृष्टि से देखने पर ही मनुष्य उनकी आत्मा तक पहुँच सकता है। निरपेक्ष सत्य शून्य नहीं, वह सर्व है। प्रत्येक वस्तु का निरपेक्ष मूल्य भी है। आदर्श व्यक्ति के लिए असीम है।

देश, काल, समाज आदर्श की सीमाएँ हैं सार नहीं, उनके इतिहास हैं, तत्व नहीं।' इससे स्पष्ट होता है कि उनके आदर्शमय स्वरूप परम्परागत एवम् रूढ़िगत नहीं हैं। उनके आदर्श स्वभाव के अनुरूप चलते हैं। प्रवृत्ति-निवृत्ति-मार्ग (Positive, Negative, Attitudes) सदैव ही रहेंगे। दोनों ही अपने अपने स्थान पर सार्थक हैं।

जैसा कि पहले भी कह दिया गया है, 'गुञ्जन' मानव-काव्य है। अतः जो प्रकृति 'पल्लव' में शुद्ध, स्वतन्त्र रूप से आई है, वह यहाँ आकर मानव भावों की रंगभूमि बन गई है। प्रकृति के अणु अणु में चेतना का स्पन्दन है, प्राणों की धड़कन है। यहाँ प्रकृति और मानव में कोई अन्तर नहीं रह गया है। दोनों का निर्माण एक ही तत्व से हुआ है दोनों एक ही प्रकार के सुख दुख, आशा निराशा से प्रभावित हैं। प्रकृति सुशृंखलित और सुव्यवस्थित है—उसमें एक स्वरता है, एक संगीत है, मानव में अव्यवस्था है, उसमें एक संगीत का अभाव है। प्रकृति दुख के क्षणों में भी मुस्कान की ही कली बिखेरती है—पर मानव दुर्दिन में कातर हो जाता है, उसके अन्तर में चीत्कार होता है। मानव और प्रकृति में केवल यही अन्तर कवि दिखलाता भी है:—

'कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा
इन म्लान, मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा।'

पर इस अभाव के रहते हुए भी वैसे तो प्रकृति ने मानव से ही हँसना, रोना सीखा है। रूढ़िवादी भावना के अनुसार प्रकृति ने मानव को हँसना रोना सिखाया है पर क्यों कि कवि 'गुञ्जन' में पूर्ण मानववादी दृष्टिकोण को अपनाये हुये है अतः यहाँ के भाव भी परम्परा के विपरीत हैं। कुछ भी हो मानव और प्रकृति में है अटूट सम्बन्ध। प्रकृति मानव के दुख सुख में साथ साथ रहती है। 'गुञ्जन' की 'नौका बिहार' और 'एकतारा' दो कविताएँ प्रकृति चित्रण की अत्यन्त सुन्दर रचनाएँ हैं। प्रकृति के सुन्दर चित्रों के साथ साथ

कवि ने जीवन के शाश्वत रूप से बहने की ओर संकेत किया है। 'नौका-विहार' में गंगा की क्षीण धारा, संकेत पुलिन, प्रतिबिम्ब तारांकित नभ, चन्द्रिकोज्वल गौरांगी गंगा, विकल कोक और नाव की छपछप—सबका चित्रण इस प्रकार किया गया है कि वे सब मूर्त्त हो उठे हैं, पर यह प्रकृति का सौन्दर्य तो केवल उनके (कवि) के विचारों की अभिव्यक्ति के लिये आधार रूप है। 'नौकाविहार' के अन्त में जब नाव कलाकार पहुँचने लगती है तथा किनारा समीप आता जाता है तो कवि जीवन के किनारों, उसके क्रम तथा उदगम की व्याख्या करने लगता है। जैसे—

ज्यों ज्यों लगती है नाव पार
उर में अलोकित शत विचार!
इस धारासाही जग का क्रम, शाश्वत् इस जीवन का उद्गम्
शाश्वत् है गति, शाश्वत् संगम!
शाश्वत् नभ का नीला विकास, शाश्वत् शशि का यह रजतहास,
शाश्वत् लघु लहरों का विलास!
हे जग जीवन के कर्णधार! चिर जन्म मरण के आर पार,
शाश्वत् जीवन नौका विहार!'

इस प्रकार जीवन की शाश्वतता अशाश्वतता सम्बन्धी सम्भावनाएँ 'नौकाविहार' में प्रकृति चित्रण के साथ गुम्फित की गई हैं। 'एकतारा' कविता भी प्राकृतिक चित्रण की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। अन्त में तारक में व्यक्तित्व की कल्पना की गई है—

"क्या उसकी आत्मा का चिर धन स्थिर अपलक नयनों का चिन्तन?
क्या खोज रहा वह अपना पन?"

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कवि सम्पूर्ण प्रकृति में एक चेतन सत्ता का आभास, उसके प्राणों का स्पन्दन पाता है, अतः तारक में आत्मा अथवा व्यक्तित्व की कल्पना करना व्यर्थ नहीं है। फिर अपनी दार्शनिक शैली को अपनाते हुए मानव की ओर 'तारक' द्वारा इसी 'एकतारा' कविता में संकेत करते हैं—

"दुर्लभ रे दुर्लभ अपना पन, लगता यह निखिल विश्व निर्जन,
वह निष्फल इच्छा से निर्धन!
आकांक्षा का उच्छ्वसित वेडा
मानता नहीं बन्धन-विवेक!
चिर आकांक्षा से ही थर थर, उद्वेलित रे अह रह सागर,
नाचती लहर पर लहर लहर!"

कवि की दृष्टि में जीवन के दर्द का यही मनोवैज्ञानिक कारण है। इच्छाओं की भट्टी सभी के हृदय में है, वह उठना चाहती हैं। पर हमारी इच्छाओं की पूर्ति कभी नहीं होती और हम दुखी होते हैं, उद्वेलित होते हैं। अमर्यादित आकांक्षाएँ पल भर के लिए ही आनन्द प्रदान करती हैं, पर दूसरे पल में ही वे जीवन-उद्देश्य की सिद्धि में बाधा पहुँचाती हैं। सत् इच्छाओं का होना जीवन को शान्तिमय एवम् सुखपूर्ण बनाने के हेतु अनिवार्य हैं।

पंत जी यद्यपि प्रकृति केकवि हैं यर 'गुञ्जन' में सर्वथा मानव गान करने लगे हैं। जिस प्रकार प्रकृति के भव्यचित्रण पंत जी के मानवदर्शन की पूर्ति के लिए आधार बनकर आये हैं, उसी प्रकार 'गुञ्जन' के 'प्रणय गीत' भी मानव दर्शन से ओत प्रोत हैं। कवि ने वियोग, दुख, संताप बहुत देखा है। अतः उसे व्यक्त करना तथा उसकी निवृत्ति के लिये उपचार ढूँढ़ना उसका ध्येय बन गया है। साथ ही साथ वह व्यक्तिगत भावनाओं से ऊपर उठ कर मानव जगत् की ओर बढ़ता है और मानव कवि बन बैठता है। नारी के प्रति कवि का दृष्टिकोण आधुनिक है। मानव-जीवन-रथ के पुरुष और नारी दो पहिए हैं। कवि जीवन की प्रगति के लिए नारी और पुरुष दोनों में अन्योन्याश्रयी सम्बन्ध मानता है। नारी पुरुष की पूरक है—

"निखिल जब नारी नर संसार
मिलेगा नव सुख से नववार,
अधर उर से उर अधर समान
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण!"

आगे और बढ़ते हैं:—

"आज तन मन मन-मन हों लीन,
प्राण ! सुख-सुख स्मृति स्मृति चिर सात्,
एक क्षण, अखिल दिशावधि-हीन,
एक रस, नाम रूप अज्ञात !"

'गुञ्जन' का कवि नारी मूर्ति में सम्पूर्ण विश्व की कोमलता, कमनीयता, माधुर्य और सौन्दर्य का समुच्चय पाता है। कवि नारी का सौन्दर्य प्रकृति के सौन्दर्य से बढ़कर पाता है—

"तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के बन में ज्वाल,
खड़े किंशुक, अनार कचनार
लालसा की लौ से उठ लाल।"

तथा :—

"नील कमल सी हैं वे आँख !
डूबे जिनके मधु में पाँख—,
मधु में मन—मधुकर के पाँख !
नील जलज सी हैं वे आँख !
जिन में बस उर का मधु बाल
कृष्ण कनी बन गया विशाल,
नील सरोरुह सी वे आँख !"

प्रकृति के रूपों की जब मूर्तिमत्ता होती है तो नारी मूर्ति का सृजन करती है। नारी प्रणय का शाश्वत् नीड़ है। किन्तु नारी का प्रेम ऐन्द्रिक नहीं, वरन् उसका सम्बन्ध उसकी अन्तर की आत्मा से है—वह आध्यात्मिक प्रेम है। नारी सदैव 'आत्म-निर्मलता' में निरत रहती है—

'आत्म-निर्मलता में तल्लीन
चारु चित्रासी, आभासीन !'

कवि ने जहाँ-जहाँ सौन्दर्य का चित्रण किया है, वहाँ नारी के रूप का नहीं,

प्रभाव का प्रेषण किया है। नारी का सौन्दर्य अतीन्द्रीय और भावात्मक है। उस सौन्दर्य में उसका उन्मादकारी एवम् भावमय व्यक्तित्व की झाँकी प्राप्त होती है :—

'तारिका-सी तुम दिव्याकर,
चन्द्रिका की झंकार!
प्रेम-पंखों में उड़ अनिवार,
अप्सरी - सी लघुसार,
स्वर्ग से उतरी क्या सोद्गार,
प्रणय हंसिनि सुकुमार!
हृदय-सर में करने अभिसार,
रजत-रति, स्वर्ण विहार।'

इतना ही नहीं वरन् स्त्री पुरुष की भावना है, उसका व्यक्तित्व है; उसकी कल्पना है तथा उसकी पूर्ति है। जैसे :—

"कल्पना तुम में एकाकार,
कल्पना में तुम आठों याम;
तुम्हारी छबि में प्रेम अपार,
प्रेम में छबि अभिराम;
अखिल इच्छाओं का संसार,
स्वर्ण छबि में निज गढ़ छबिमान,
बन गई मानसि! तुम साकार
देह दो एक प्राण!"

स्त्री प्रेम है तथा उसके दोनों पक्ष संयोग और वियोग का वर्णन देकर प्रणय काव्य को पूर्ण किया है। जीवन में भी सदैव हास और दुख दोनों अवस्थाएँ रहती हैं, संयोग और वियोग प्रणय को इन्हीं दोनों अवस्थाओं (सुख दुःख) का प्रतीक मान लेनां ठीक होगा सथा दोनों अवस्थाएँ जीवन की सर्वाङ्गीण सम्पन्नता के लिए आवश्यक हैं। इसी प्रकार प्रणय को परिपूर्ण करने के लिए

तथा उसमें अधिक मधुरता एवम् स्निग्धता लाने के लिए संयोग और वियोग का होना अनिवार्य है। संयोग पक्ष देखिए :—

"आज रहने दो यह गृह-काज
प्राण ! रहने दो यह गृह-काज
आज जाने कैसी बातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास
प्रिये, लालस - सालास वातास
जगा रोओं में सौ अभिलाष !'

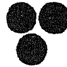
वियोग पर भी देखिए :—

"कब से बिलोकती तुम को
ऊषा आ वातायन से !
संध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आँगन से !
तुम आओगी, आशा में
अपलक हैं निशि के उडुगण
आओगी अभिलाषा से
चंचल, चिरनव, जीवन क्षण।'

इस प्रकार कवि ने वियोग अवस्था में भी आशा को नहीं छोड़ा है और वह कल्पना समन्वित इच्छा करता है कि 'प्रिय' तुम्हारे आने से ही जीवन में सरलता आ जायेगी तथा जीवन का प्रत्येक क्षण मधुर हो उठेगा। इस प्रकार पंत जी ने मानव जी को सुखी एवम् सम्पन्न बनाने के हेतु केवल सम् इच्छाओं, ऐक्य-भावना, सम-दृष्टि तथा भौतिकवाद तथा आध्यात्मवाद का समन्वय ही अपेक्षित नहीं माना है प्रत्युत नारी का प्रणय तथा उसका समीप रहना भी आश्वयक माना है। नारी और पुरुष दो अभिन्न अंग हैं; एक को दूसरे से पृथक करना जीवन की डाली को सुखा देना है। "भावी पत्नी के प्रति" तथा "तुम्हारी आँखों का आकाश" कविताएँ तो केवल कल्पना एवम् संगीत की दृष्टि से ही सुन्दर नहीं है, वरन् इन कविताओं को

देखने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे कवि की सौन्दर्यानुभूति रस मज्जित होकर आई हो।

सारांश में 'गुञ्जन' में तीन प्रकार की कविताएँ मानव सम्बन्धी, प्रकृति सम्बन्धी तथा प्रणय सम्बन्धी संगृहीत हैं पर ध्यान से देखने पर सब के पीछे मानव तथा उसके सुख सम्बन्धी भावना ही प्रधान है। उसके जीवन का संताप चाहे प्रकृति के सम्पर्क से मिटे अथवा नारी के सम्पर्क से, पर उसे मिटना ही चाहिये। वे तो जीवन को 'सुन्दर' से सुन्दतर देखना चाहते हैं। इस प्रकार 'गुञ्जन' में कवि-कल्पना की भाँति विचारों का भी गुम्फन है। वह दार्शनिक विचारों का एक वृहत्-शब्द-कोष है जिसमें इच्छा, व्यक्ति, समाज, ईश्वर के सम्बन्ध में चिन्तन करने योग्य अच्छी सामग्री भरी पड़ी है। इसमें साधना का भरपूर उपकरण है, परन्तु अतिशय साधना लोक-कल्याण के लिये लाभप्रद नहीं, इसीलिए 'सम इच्छा' ही जीवन की भीख है।



पंत के 'युगान्त' में अस्पष्ट युगबोध के चिन्ह



पंत जी बड़ी उत्सुकता से नवीनवादों को पकड़ रहे हैं। 'युगान्त' में यह आकर और भी स्पष्ट हो गया है। 'युगान्त' नाम से ही, जैसा कि स्पष्ट है, उन्होंने छायावादी काव्य धारा से सम्बन्ध विच्छेद किया है और 'प्रगतिवादी' होने की भूमिका बना रहे हैं। वास्तव में 'युगान्त' गुञ्जन और ज्योत्स्ना में कार्य शील प्रवृत्तियों का ही विकास है। यहाँ कवि 'नवीन' की ओर आशा और उत्साह से देखता है और पुरातन को एक निर्जीव तथा जड़ पथावरोध के रूप में। 'युगान्त' के प्रथम गीत में ही कवि माँगता है:—

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र, हे स्रस्त-ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण,
हिम ताप पीत, मधुवात भीत, तुम वीतराग, जड़, पुराचीन।

ये 'जीर्ण पत्र' मध्य युगों के जीवन्मृत मन्तव्य हैं, जो नये विचारों, नये भावों, नये सौन्दर्य, नये संगीत अथवा जीवन के नये बसन्त का स्थान घेरे हुए हैं। इनके झर जाने, पतझर हो जाने पर ही नई सृष्टि पल्लवित, पुष्पित एवम् उज्जीवित हो सकती है। इसलिये नवयुग के प्रतिनिधि गायक को कवि ने पुरातन के विध्वंस और नूतन के सृजन का सन्देश सुनाने के लिये प्रेरित किया है—

'गा कोकिल ! बरसा पावक कण
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बन्धन।'

जीवन के प्रभाव में भी 'युगान्त' का कवि आशान्वित था। वह अनुभव करता था कि वातावरण बदलेगा तथा मनुष्य को नव जीवन मिलेगा। कवि कहता है—"युगान्त में निश्चय रूप से इस परिणाम पर पहुँच गया था कि मानव-सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी है। जिन प्रेरणाओं से प्रभावित होकर यह कहा था उसका आभास 'ज्योत्स्ना' में पहिले ही हो चुका था।" कवि जिस युग का अन्त देख रहा था वह सामन्त युग और पूँजीवादी युग है इन्ही का अन्त 'युगान्त' है। मध्ययुग और पूँजीवादी युग की विकृतियाँ मानव के विकास मार्ग में बाधक है। इन युगों ने मनुष्य को आत्म विस्मृत बनाये रखने के लिये सभ्यता और संस्कृति का भ्रम जाल फैला रखा है। 'युगान्त' में कवि कहता है :—

'शत मिथ्या वाद-विवाद तर्क,
शत रूढ़ि नीति शत धर्म द्वार;
शिक्षा, संस्कृति, संस्था समाज,
व्रह पशु मानव का अहङ्कार।'

और कवि इसी से आगे कहता है :—

'झरे जाति-कुल-वर्ण-पर्ण घन,
अंध नीड़ से रूढ़ि-रीति छन,
व्यक्ति राष्ट्रगत राग द्वेष रण,
झरें, मरें विस्मृति में तत्क्षण।'

नवीन से कवि को आशा है क्योंकि मनुष्य की शक्ति और सत्प्रवृत्ति पर उसे विश्वास है। "मनुष्य"! वह सोचता है, "क्या नहीं कर सकता?" और तब वह उसकी शक्ति और सौन्दर्य के गीत गाने लगता है। किन्तु मानव जग आज जड़ बन्धनों में जकड़ा हुआ कराह रहा है, अतः वह उसी की जाग्रति की कामना करता है। कोई भी वस्तु उसी अंश तक उसे प्रिय है जहाँ तक वह मानव के लिये कल्याणकारी है। इसी से तो उसने कोयल से मधुर नहीं, आग्नेय गीत गाने को कहा है, क्योंकि उसे विश्वास है कि

इसी से नवीन 'मानवता' का जन्म होगा। और वह विश्वास करता है कि यह नवोदित मानवता अखण्ड और अविभाज्य होगी, उसमें राष्ट्र, जाति, वर्ग के भेद नहीं रहेंगे।

वह जड़वाद से अभिभूत मानवता का परित्राण चाहता है क्योंकि इसी से ये आज युद्ध-गर्जनायें, उत्पीड़न और अत्याचार दिखाई पड़ते हैं, मानवात्मा आज जड़ बन्धनों में कराह रही है, उसका परित्राण आज आवश्यक है—

'जड़वाद जर्जरित जग में,
अवतरित हुए आत्मा महान,
यन्त्रभिभूत जग में करने,
मानव जीवन का परित्राण।' —(बापू के प्रति)

आज वह संध्या-ऊषा, बसन्त-पतझड़ सभी को मानवीय महत्व में रंग कर देखता है; यदि इनसे मानवता सौन्दर्य प्रेरणा, शक्ति और उपदेश नहीं पा सकती, तो इनका कोई लाभ नहीं; आज उसके लिये मानव ही प्रधान है—वही एकमात्र महत्व है, उसी का सौन्दर्य गेय है। विहगों का भी उपयोग वह श्रम-जीवियों के निरस्त जीवन को नव-प्रेरणा दाता के रूप में ही देखता है—

आः, गा गा शत शत सहृदय खग
भर रहे नया इनमें जीवन,
ढीली है जिनकी रग रग।

पंत जी का मानव भी भाव वाचक संज्ञा है और अतः नव मानव युग का अर्थ उनके अनुसार नवीन चेतना और आध्यात्मिक उद्बोधन ही है। पुरातन को वे इसलिये मिटाना नहीं चाहते कि इसमें शोषण, अत्याचार और असमानता थी प्रत्युत् इसलिए कि उनमें वे ऐसे बन्धनों का अनुभव करते हैं जिन्हें वे जड़वाद जनित समझते हैं, और उनके विचार में वे आध्यात्मिक चेतना के साथ ही तिरोहित हो जायेंगे। इसका कारण स्पष्टतः परिस्थितियों को ठीक न समझना ही है। जाति, वर्ण और राष्ट्रों के विभाजन

को भी वह जड़वाद और मनुष्य की संकुचित बुद्धि का ही परिणाम समझता है। पंत जी 'निश्छल' निर्द्वन्द्व तथा निर्बन्ध मानवता का युग देखना चाहते हैं। पंत जी सूक्ष्म आध्यात्मिक प्रकाश के प्रतीक गांधी जी के द्वारा एक ऐसी संस्कृति की स्थापना चाहते हैं, जो सूक्ष्म चेतना द्वारा प्रतिष्ठित होगी। उनके विचार में राज्य, प्रजा, जन तथा साम्यवाद इत्यादि तन्त्र शासन-संचालन के मनुष्य निर्मित तथा सापेक्षक सिद्धान्त हैं, इनसे परे शाश्वत मानवता की प्रतिष्ठा ही वास्तविक सुख-श्री और समृद्धि ला सकती है। उदाहरण देखिये—(बापू के प्रति कविता से)

"विश्वानुरक्त हे, अनासक्त !
तुम मांस हीन, तुम रक्त हीन,
तुम अस्थि शेष, तुम अस्थि हीन,
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिर पुराण, हे चिर नवीन !

कविका अपना विश्वास है कि बाह्य क्रान्ति ध्वंसात्मक है और आन्तरिक क्रान्ति रचनात्मक। पंत जी स्वयं लिखते हैं—"बाहरी क्रान्ति की आभाषात्मकता की पूर्ति मेरा मन नवीन मनुष्यत्व की भावात्मक देन द्वारा करना चाहता है। 'द्रुतझरो जगत के जीर्ण पत्र, हे स्रस्त ध्वस्त हे, शुष्कशीर्ण,' द्वारा जहाँ पिछली वास्तविकता को बदलने के लिये ओजपूर्ण आह्वान है, वहाँ 'कंकाल जाल जग में फैले फिर नवल रुधिर पल्लवलाली' में 'पल्लव' काल की स्वप्न चेतना द्वारा उस रिक्त स्थान को भरने के लिए आग्रह भी है।...... 'ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बन्धन' के साथ ही 'हो पल्लवित नवल मानवपन', 'स्व मानव के हित नूतन मन' भी मैंने कहा है।" इस प्रकार कवि पंत दोनों प्रकार के नियमों—रचनात्मक एवम् ध्वंसात्मक को मानव जीवन में फलीभूत होते हुए देखना चाहते हैं। शांति प्रिय द्विवेदी जी के शब्दों में "छायावाद का प्राकृतिक दर्शन 'युगान्त' में सशक्त हो गया है। 'युगान्त' का कवि पुरातन पन्थियों की तरह 'हिमताप पीत, मधु-बात-भीत नहीं है। प्रकृति की मधुरता से उसमें नव-सृजन का उन्मेष होगया है।" 'परिवर्तन' में कवि ने मानव

जीवन का पतझर देखा था और उसे देखकर जीवन से उसे निराशा हो उठी थी, परन्तु 'युगान्त' तक आते आते उसमें उसके उद्धार के लिए आत्मबल आगया है। उसे पुनः आशा बंधी है। अतः वह अपनी अन्तः स्फूर्ति एवम् अन्तः चेतना से मानव को उत्साहित करता हुआ दीख पड़ता है :—

'बढ़ो अभय विश्वास चरण धर !
सोचो बृथा न भवभय कातर !'
× × ×
सुख-दुःख की लहरों के शिर पर
पग धर पार करो भवसागर !
बढ़ो, बढ़ो विश्वास चरण–धर !'

'युगान्त' में कवि ने मदान्ध भौतिकवाद के प्रतिकूल प्रकाशमान मानव-वाद को प्रतिष्ठित किया है और उसे अध्यात्म के परम-तत्व का सम्बल दिया है। कवि में विश्वास जाग रहा है कि यह संक्रमण काल है और भौतिकवादी शक्तियाँ अवश्य ही नष्ट होंगी। गत संस्कृतियाँ जिन्होंने मानवता के विकास को रोक रखा है अवश्य ही समाप्त होंगी तथा नव-मानवता पनपेगी। इसी विश्वास को कवि की वाणी में देखिए :—

'पा नव मानवता का विकास,
हँस देगा स्वर्णिम, वज्र-लौह
छू मानव आत्मा का प्रकाश !'

कवि के प्राण संसार में पुनः 'मधु का प्रात' लाने को व्याकुल हैं। वह अधिक जीर्ण शीर्ण अवस्था, मानव की नहीं देखना चाहता। उसका विश्वास है कि युग परिवर्तन होना ही चाहिए, इसके बिना जगत का, मानवता का कल्याण नहीं हो सकता। कवि सोये हुए मानव को जगाना चाहता है जिससे कि वह आगे बढ़ सके। स्वयं में आत्म बल का संचरण देख दूसरों को भी आत्म बल पैदा करने की कवि सलाह देता है तथा मानव को 'अभय, विश्वास' के साथ बढ़ने को प्रोत्साहित करता है। प्रकृति-चित्रण के द्वारा

भी वह वही संदेश देना चाहता है। हम बहुत पहले कह चुके हैं कि कवि प्रकृति को मानव के सुख दुखों की सहचरी मानता है। यहाँ प्रकृति के द्वारा कवि मानव को नव संदेश दे रहा है :—

"आः मधु प्रभात !—जग के तम में
भरती चेतना अमर प्रकाश,
मुरझाए मानस मुकुलों में
पाती नव मानवता विकास !"

नये युग के आगमन की कवि को पूर्ण आशा है, तभी तो वह उसकी शक्ति और सौन्दर्य का गीत गाता है। कोई भी वस्तु उसे उसी अंश तक प्रिय है जहाँ तक वह मानव के लिए कल्याणकारी है। और वह विश्वास करता है कि नवीन मानवता अखण्ड और अविभाज्य होगी, उसमें राष्ट्र, जाति के भेद नहीं रहेंगे। वह तो सोचता है कि क्या मनुष्य का परिचय 'मनुष्य' शब्द से नहीं हो जाता ? वह तो अमर शाश्वत् ज्योति है, उसका विभाजन क्या मिथ्या और कृत्रिम नहीं ? वह तो मानव को प्रकृति में सबसे सुन्दर मानता है। मानव को तो प्रभु का वरदान प्राप्त है, फिर उसे त्रिभुवन में किस वस्तु की कमी हो सकती है। देखिए—

"सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सब से सुन्दरतम,
निर्मित सब की तिल सुषमा से,
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम।

× × ×

मानव का मानव पर प्रत्यय,
परिचय मानवता का विकास,
विज्ञान ज्ञान का अन्वेषण,
सब एक, एक सब में प्रकाश !
प्रभु का अनन्त वरदान तुम्हें,
उपभोग करो प्रतिक्षण नव-नव,

क्या कमी तुम्हें है त्रिभुवन में,
यदि बने रह सको तुम मानव !"

इस प्रकार 'युगान्त' में प्रायः सर्वत्र मानवता के नव युग का ही आवाहन है। इसमें प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण बदला हुआ है और ऐन्द्रिय चित्रण का अभाव है। इस कोटि की कविताओं में—बसंत, तितली, संध्या, शुक्र, छाया, बांसों का झुरमुट आदि हैं। पंत की लेखनी द्वारा छाया की गहनता का अंकन अत्यन्त ही व्यंजना पूर्ण हो पाया है :—

'ओ मौन चिरंतन, तम - प्रकाश,
चिर अवचनीय, आश्चर्य पाश !
तुम अतल गर्त ! अविगत, अकूल,
फैली अनंत में बिना मूल !
अज्ञेय, गुह्य, अग जग छाई,
माया, मोहिनि, सँग सँग आई !
तुम कुहकिनि जग की मोह निशा,
मैं रहूँ सत्य, तुम रहो मृषा !'

'युगान्त' की कला के सम्बन्ध में कवि ने 'दो शब्द' में लिखा है—"युगान्त में 'पल्लव' की कोमल कान्तकला का अभाव है। इसमें मैंने जिस जीवन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में उसे अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवम् प्रदान कर सकूँगा।" 'युगान्त' में चाहे 'पल्लव' की विशद कलाकारिता न हो, किन्तु उसकी भावना वैसी कोमल कान्त है। 'युगान्त' में भी कवि भावाविष्ट कलाकार है। वह युगान्त और युगान्तर का गान गीत विहग की भांति सुनाना चाहता है—

'गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की संध्या की छवि !
गा सके खगों सा मेरा कवि
फिर हो प्रभात, फिर आवे रवि !'

'युगान्त' में कवि की आत्मा तो छायावाद-युग की है, किन्तु काव्य का कलेवर बहुत अंशों में बदल गया है। बहुत सी कविताएँ छंद, भाषा और शैली की दृष्टि से गद्य की सीमा तक पहुँच गई हैं। यथा—

'सन्ध्या के सोने के नभ में
तुम उज्ज्वल हीरक सदृश जड़े,
उदयाचल पर दीखते प्रात
अँगूठे के बल हुए खड़े।'

छायावाद-युग की शब्द सजीवता 'युगान्त' में भी देखने को प्राप्त होती है। जैसे —

'वे डूब गये—सब डूब गये
दुर्दम, उदग्रशिर अद्रि शिखर!

'दुर्दम, उदग्रशिर अद्रि शिखर' से आँखों के सामने दुर्लंघ्य और उत्तुङ्ग पर्वत-शिखरों का विराट चित्र खिंच जाता है। पंत जी, साथ ही, शब्द निष्णात हैं। उन्होंने अपनी सभी कृतियों में कुछ नवीन शब्द रखे हैं। 'युगान्त' नें लम्बे-पैने नखों का शक्तिवाचक एक नया शब्द 'नखर' आया है—

'प्रखर नखर नव जीवन
की लालसा गड़ाकर
छिन्न भिन्न करदे गत
युग के शव को दुर्धर।'

तितली को 'तिली' सम्बोधन करके उन्होंने सुकुमार कलेवर को और भी सुकोमल कर दिया है। इस प्रकार 'युगान्त' में पंत जी की कविता का ह्रास नहीं हुआ है। ब्रजभाषा के पश्चात् जैसे द्विवेदी युग ने कविता का नवीन प्रयोग किया, वैसे ही छायावाद के बाद 'युगान्त' में पंत ने। स्वास्थ्य केलिए शरीर के आधार की भांति उन्हें भाव के लिए युग के सुदृढ़ गद्य का आधार लेना पड़ा। "मैं और मेरी कला" में पंत जी लिखते हैं—"१६२१ के असहयोग आन्दोलन के साथ ही हमारे देश की बाहरी परिस्थितियों ने भी

जैसे हिलना डुलना सीखा है। युग युग से जड़ीभूत उनकी वास्तविकता में सक्रियता तथा जीवन के चिह्न प्रकट होने लगे। उनके स्पन्दन, कम्पन तथा जागरण के भीतर से एक नवीन वास्तविकता की रूप रेखाएँ मन को आकर्षित करने लगीं। मेरे मन के भीतर वे संस्कार धीरे धीरे संचित तो होने लगे, पर 'पल्लव' की रचनाओं में वे मुखरित नहीं हो सके; न उसके स्वर उस नवीन भावना को वाणी देने के लिए पर्याप्त तथा उपयुक्त प्रतीत हुए।" 'युगान्त' में काव्य-कला के परिवर्तन के साथ कविता का आलम्बन भी बदला। छायावाद-युग में प्रकृति आलम्बन रूप में आई, 'युगान्त' में मानव 'आलम्बन' बना है। पहिले मनुष्य और प्रकृति में पार्थक्य नहीं था, दोनों में एकात्म्य था, सारूप्य था।

मनुष्य और प्रकृति का साहचर्य्य युग युग से चला आता है :—

"यह लौकिक औ प्राकृतिक कला
यह काव्य अलौकिक सदा चला
आरहा,—सृष्टि के साथ चला।"

'युगान्त' से प्रकृति पीछे छूटने लगी है तथा मनुष्य सामने आने लगा है। कवि यहाँ कला की अपेक्षा जीवन को महत्व दे रहा है। इसी से तो 'ताज' शीर्षक कविता में कवि कहता है :—

'मानव! ऐसी भी विरक्ति
क्या जीवन के प्रति ?
आत्मा का अपमान,
प्रेत औ छाया से रति !!'

× × ×

'शव को दें हम रूप रंग आदर मानव का ?
मानव को हम कुत्सित चित्र बनादें शव का !'

उसका ध्यान श्रमजीवी मानव की ओर भी गया। वास्तव में कवि का दृष्टिकोण 'युगान्त' में दार्शनिक ही अधिक रहा है, यद्यपि 'युगान्त' का कवि यथार्थ से अनभिज्ञ नहीं है। वह अनुभव करता है :—

'लगती विश्री औ' विकृत आज मानव कृति,
एकत्व शून्य है विश्व मानवी संस्कृति !'

किन्तु यथार्थ से निष्कृति पाने के लिए उसके पास उस समय कोई स्पष्ट मार्ग नहीं था। कवि कहता है—"युगान्त के मरु में मेरे मानसिक निष्कर्षों के धुंधले पद चिह्न पड़े हुए हैं।"

'परिवर्तन' के दार्शनिक अनुशीलन के बाद 'गुञ्जन' 'ज्योत्स्ना' और 'पाँच कहानी' में कवि सार्वजनिक अशांति का कोई लोक-सिद्ध समाधान नहीं दे सका था। वह व्यक्ति की वृत्तियों और समाज की प्रवृत्तियों में सन्तुलन स्थापित कर रहा था। कवि अपेक्षाकृत दार्शनिक से मनोवैज्ञानिक हो गया था, किन्तु वह स्वप्न द्रष्टा ही बना रहा, ऐतिहासिक समीक्षक नहीं बन सका था। समस्या का यथार्थ रूप ओझल था। अतएव, 'परिवर्तन' के बाद सामाजिक धरातल पर आकर भी कवि को शांति नहीं मिली, यह 'युगान्त' से ज्ञात होता है :—

"मैं सृष्टि एक रच रहा नवल
भावी मानव के हित, भीतर,
सौन्दर्य, स्नेह, उल्लास मुझे
मिल सका नहीं जग में बाहर।"

सारांश में, पंत जी की प्रगतिशील रचनाओं में 'युगान्त' का वही प्रारम्भिक स्थान है जो छायावादी युग में 'वीणा' का था। 'वीणा' में अस्पष्ट सौन्दर्य बोध था, 'युगान्त' में अस्पष्ट युग बोध। एक में छायावाद का शैशव था, दूसरे में प्रगतिवाद का बाल्यकाल। 'वीणा' का विकास 'पल्लव' और 'गुञ्जन' में हुआ तथा 'युगान्त' का विकास 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में जाकर पूर्ण हुआ है।

पंत की 'ग्राम्या' में सामूहिक चेतना का विकास



'युगवाणी' के पश्चात् 'ग्राम्या' का प्रकाशन हुआ जिसमें सन् १९४० के मध्य तक की ५३ कविताओं का संग्रह है। इसमें ग्राम्य-जीवन सम्बन्धी रचनाएँ संगृहीत हैं। 'ग्राम्या' कवि के प्रयोगों से भरा पड़ा है। यहाँ तक आते-आते कवि अपने सिद्धान्त स्थिर कर चुका है। स्वभावतः 'ग्राम्या' की स्नायुओं में कवित्व का गाढ़ा रस प्रवाहमान है। उसके अंग भरे हुए और यौवन पीन हैं—

'है मांस-पेशियों में उसके दृढ़ कोमलता
संयोग अवयवों में, अश्लथ उसके उरोज।
कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज।'

यह मानो 'ग्राम्या' की महत्त्वमयी व्याख्या है। प्रकृति सौन्दर्य का गायक कवि मानों अब यथार्थ की भूमि पर उतर कर ग्रामीण जीवन के चित्रों को अंकित करने की ओर प्रवृत्त हुआ है। भारतीय ग्रामीण जन जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित कर ये कविताएँ नहीं लिखी गई हैं, इसका उत्तर पंत जी के शब्दों में है—"ग्रामों की वर्त्तमान दशा में वैसा करना प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।" खैर, कुछ भी हो, उन्होंने अपने महल के वातायन से भारतीय ग्रामीण जीवन का चित्र आँका है। कला के विचार से साप्ताहिक 'कर्मवीर' के विचार देखिये :—"ग्राम्या पके हुए धान से लहलहे खेत के समान है। उसमें ग्रामीण जीवन की आर्द्रता है। 'एस्थीट'

कवि ने कई सुन्दर चित्र-राग आलेखित किये हैं। भाषा और भी सरल, ओजस्वी और सजीव हो उठी है। कई जगह ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग है जो 'लोकल कलर' उत्पन्न करता है। ....'धोबियों का नाच', 'चमारों का नाच', 'कहारों का नाच', इफेक्ट की दृष्टि से अत्यन्त ललित चीजें हैं। 'भारत माता ग्राम वासिनी', 'अहिंसा', 'चरखा गीत' सुन्दर संघगीत (कोरस) हैं।" 'ग्राम्या' की पृष्ठ भूमि 'युगवाणी' है। कवि ने ग्राम जनता को रक्त मांस के जीवों के रूप में नहीं देखा है, एक मरणोन्मुखी संस्कृति के अवयव स्वरूप देखा है और ग्रामों को सामन्त युग के खण्डहर के रूप में। देखिये :—

'यह तो मानव लोक नहीं रे यह है नरक अपरिचित
यह भारत का ग्राम, सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित।

× × ×

मानव दुर्गति की गाथा से ओत प्रोत, मर्मान्तक,
सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमाञ्चक।'

जिस प्रकार डी० एच० लारेन्स ने निम्न कोटि की मानवता का अविकल चित्र खींचा है उसी प्रकार पंत ने भी 'ग्राम्या' में ग्राम्य जनता के रूप की झाँकी कराई है। 'ग्राम्या' के पूर्व पंत में जो आकार प्रियता थी, वह अब चित्र रूप में उतर आयी है। 'उसकी सर्वहारा मशीन के सम्पर्क में आई हुई जनता की बीमारी उनके राजनीतिक वर्ग संस्कार हैं, जिनका लारेन्स ने चित्रण किया है। अपने देश के जन-समूह की बीमारी उससे कहीं गहरी, आध्यात्मिकता के नाम में रूढ़ि-रीतियों एवम् अन्धविश्वासों के रूप में पधराये हुए उनके सांस्कृतिक संस्कार हैं। लारेन्स के पात्र अपनी परिस्थितियों के लिये सचेतन और सक्रिय हैं। 'ग्राम्या' के दरिद्रनारायण अपनी परिस्थितियों ही की तरह जड़ और चेतन—

'वज्रमूढ़, जड़भूत, हठी, वृष बांधव कर्षक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का चिर रक्षक।'

फिर लारेन्स जीवन के मूल्यों के सम्बन्ध में प्राणि शास्त्रीय मनोविज्ञान से प्रभावित हुआ है। परन्तु पंत का कवि ऐतिहासिक विचारधारा से, जिसका कारण स्पष्ट ही है 'कि वह पराधीन देश का कवि था। लारेन्स जहाँ द्वन्द्व-पीड़न (सेक्सरिप्रेसन) से मुक्ति चाहता है, पंत जी वहाँ राजनीतिक आर्थिक शोषण से। पंत का कवि ऐतिहासिक विचारधारा से अधिक इसलिये भी प्रभावित हुआ है कि उसमें कल्पना के स्रोत को विशद और वास्तविक पथ मिलता है। छायावाद के दिशाहीन शून्य-सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ान भरने वाली अथवा रहस्यवाद के निर्जन अदृश्य शिखर पर कालहीन विराम करने वाली कल्पना को एक हरी भरी ठोस जनपूर्ण धरती मिल जाती है।

'ताक रहे गगन ? मृत्यु नीलिक गहन गगन ?
निःस्पन्द शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भू को, स्वर्गिक भू को !
मानव पुण्य प्रसू को।'

इसी लक्ष्य परिवर्तन की ओर इङ्गित करता है। "कितनी चिड़िया उड़े अकाश, दाना है धरती के पास' वाली कहावत के अनुसार ऐतिहासिक भूमि पर उतरने से कल्पना के लिये जीवन के सत्य का दाना सुलभ और साकार हो जाता है; और कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय, कला कौशल, समाज शास्त्र, साहित्य, नीति, धर्म, दर्शन के रूप में खण्ड-खण्ड विभक्त मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना का ज्ञान अधिक यथार्थ हो जाता है।"—(आधुनिक कवि) कवि ने जीवन के परिवर्तन को स्वीकार किया है। परिवर्तन जीवन का एक अनिवार्य अंग भी है। युग भी एकरसता को पसन्द नहीं करता, वह भिन्न-भिन्न रसों का रसास्वादन करना चाहता है। साहित्य के साथ भी यही बात लागू होती है। वास्तव में वही कविता जीवित रह सकती है जो मानवीय मनोवृत्तियों का समयानुकूल रूप खींच दे। कवि पंत के काव्य मय जीवन का विकास क्रमशः हुआ, वह सर्व प्रथम सुकुमार अनुभूति का उपासक रह कर भाव प्रवण बन गया। इस प्रकार उन्होंने सौन्दर्य चिन्तन, दार्शनिक

चिन्तन, भौतिक चिन्तन की विवेचना की है। इस प्रकार कवि ने अन्त में आकर कविता को जन जीवन के साथ लगा दिया जिसकें कारण उसकी कविताएँ उच्चकोटि की बनीं। पंत जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि "भविष्य के साहित्यिक को इस युग के वाद-विवादों, अर्थशास्त्र और राजनीति के मतान्तरों द्वारा, इस संधिकाल की घृणा, द्वेष, कलह के वातावरण के भीतर से, अपने को वाणी नहीं देनी पड़ेगी। उसके सामने आज के तर्क-संघर्ष, ज्ञान-विज्ञान, तर्क-कल्पना—सब घुल मिलकर एक सजीव सामाजिकता और सांस्कृतिक चेतना के रूप में वास्तविक एवं साकार हो जायँगे। वर्तमान युद्ध और रक्तपात के उस पार वह एक नवीन, प्रबुद्ध, विकसित और हँसती बोलती हुई, विश्व निर्माण में निरत, मानवता से अपनी सृजन सामग्री ग्रहण कर सकेगा। इस परिवर्तन काल के विक्षुब्ध लेखक की अत्यन्त सीमाएँ और अपार कठिनाइयाँ हैं।" अपने इस विचारधारा से अनुप्राणित होकर कवि ने 'ग्राम्या' में सामाजिक प्रवृत्तियों को काव्य का आकार प्रदान किया है। कवि चाहता है कि जन जीवन में उस सत्य का अनुभव हो जो हमें वास्तव में वेदान्त के निकट लाता है। कवि चाहता है कि सर्व प्रथम जनवाद की शक्तियों का पूर्ण विकास हो; जन मानव पूर्णतया मुक्त और स्वतंत्र हो:—

'आज युग का गुण है—जन रूप,
रूप जन संस्कृति के आधार!
स्थूल, जन आदर्शों की सृष्टि
कर रही नव संस्कृति निर्माण,
स्थूल युग का शिव, सुन्दर, सत्य,
स्थूल ही सूक्ष्म आज, जन प्राण!'

इसलिये अहिंसा भी आज जनों के हित बन्धन बन रही है—

'वह मनुजोचित, कब ! जब जन हों विकसित।
भावात्मक आज नहीं वह; वह अभाव वाचक,
उसका भावात्मक रूप प्रेम केवल सार्थक।
हिंसा विनाश यदि, नहीं अहिंसा मात्र सृजन,

वह लक्ष्य शून्य अब ···· ···· ····. ···· ······
भव तत्व प्रेम साधन है उभय विनाश सृजन,
साधन बन सकते नहीं सृष्टि' गीत में बन्धन !'

प्रेम की उदार शक्ति से खाली होने के कारण ही गांधीजी का अहिंसा शस्त्र आज देश में सफल नहीं हो रहा है। 'स्थूल ही सूक्ष्म.आज' का एक सुन्दर उदाहरण 'सूत्रधार' शीर्षक कविता है, जिसमें यन्त्र की विवेचना और व्याख्या इस प्रकार की गई है—

'··················· मानवता का विकास
यन्त्रों के संग हुआ, सिखलाता नृ-इतिहास।
जीवन सौन्दर्य प्रतीक यन्त्र, जनके शिक्षक,
युग क्रान्ति प्रवर्तक औ, भावी के पथ दर्शक।
वे कृत्रिम निर्मित नहीं, जगत क्रम में विकसित,
मानव की यंत्र, विविध युग स्थितियों में वर्धित।'

परदेश के लिये जो मंगल स्वरूप है, वही असम्भव सा भविष्य में प्रत्यक्ष होने वाला स्वप्न है—

'अहिंसास्त्र जन का मनुजोचित
चिर अप्रतिहत है,
बल के विमुख, सत्य के सम्मुख
हम श्रद्धानत हे,
जन भारत हे
जाग्रत भारत हे' (राष्ट्र गान)

जिस 'विकसित मानव' और 'मुक्त हुए जन' से भविष्य का समाज निर्मित होगा, आज उसके एकांकी उदाहरण केवल महात्मा जी हैं—

'पूर्ण पुरुष, विकसित मानव तुम, जीवन सिद्ध अहिंसक,
मुक्त हुए तुम मुक्त हुए जन, हे जग-वंद्य महात्मन् !'

'ग्राम्या' में ग्राम्य जीवन के जो चित्र प्रस्तुत किये गये हैं उनमें चित्रात्म-

कता बहुत ही कलापूर्ण एवम् व्यंग्य अत्यन्त चुभते हुए हैं। इनमें नृत्यों का स्थान सर्वोत्कृष्ट और प्रमुख है। ऐसे वर्णन या चित्रण हिन्दी के लिये आज भी अपूर्व हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि ये महान् या सर्वाधिक महान् हैं, प्रत्युत् यह कि ऐसे 'काव्यों' का भी किसी भी साहित्य में अनिवार्य स्थान है, और इसके बिना साहित्य की 'समष्टि' अधूरी है। पंत जी के ये 'नृत्य-चित्रण' काव्य अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। देखिये--

'उसके पैरों में घुँघरू कल
नट की कटि में घंटियाँ तरल,
वह फिरकी सी फिरती चंचल,
नट की कटि खाती सौ-सौ बल,
लो छन छन, छन छन,
छन, छन, छन, छन,
ठुमक गुजरिया हरती मन।'

पंत जी की शब्द कुशलता 'पल्लव' की अपेक्षा यहाँ अधिक सराहनीय है। हमारे गाँवों में आज भी सभ्य पूर्वकाल तक के तत्व विद्यमान हैं। ये नृत्य गीत, सौदर्य-बोध, शृङ्गार, अति दैवी-विश्वास, सामूहिक जीवन की प्रागैतिहासिक स्थिति तथा विवाह-मृत्यु आदि की रीतियाँ न केवल वर्तमान से ही पिछड़ी हुई हैं, सामन्त युगीन नागरिक प्रगति से भी पीछे हैं। आज के युग में यह पिछड़ापन किसी भी देश के लिये लज्जा की बात हो सकता है। हमारे गाँवों में यही नहीं, भूख है, प्यास है, अभाव है और दीनता भी है; और ये ग्रामीण ही हमारे आज वास्तविक प्रतिनिधि हैं। पंत जी ने इस चित्रण में नृत्य और दर्शकों की उमंगों को दिखाकर इस असंस्कृत रुचि को उघाड़ कर रख देने का प्रयास किया है। इन चित्रों का महान् काव्य की दृष्टि से तो कोई स्थान नहीं, किन्तु हमारे जीवन के विशेष पहलू को प्रभावशाली ढङ्ग से प्रस्तुत कर सकने के कारण यह अत्यधिक सराहनीय है और इसका इसलिये विशेष स्थान भी है। अस्तु, इन कविताओं में पंत जी ने हमारे गाँवों की परिस्थितियों का आभास देकर हमारे समाज को उनके प्रति उद्बुद्ध

करने का प्रयास किया है, और चित्रण में आप काफी सफल भी रहे हैं। किन्तु एक बात अवश्य है, कि उनका लक्ष्य सामाजिक रीतियाँ ही अधिक हैं, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ नहीं, अतः ये सुधारवादी प्रवृत्ति तक ही सीमित रहे हैं। जहाँ कहीं इनका संकेत है भी, वह इतना शिथिल और गौण है कि उससे (सामाजिकता) की ही प्रतीति होती है।

कवि ने अपनी रचनाओं में हिंसा और अमंगल को स्थान नहीं देना चाहा है। हमें तो सबल उद्‌गार चाहिये, करुण, रोदन और चीत्कार नहीं। इनका तो अर्थ होगा, कवि के अपने शब्दों में 'केवल प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना।' हमें तो भावों का क्रियात्मक रूप पकड़ना है। मानव ट्रैजेडी के गहन गह्वरों में केवल इस कारण झाँकना है कि उनमें 'जीवन के संस्कार', 'भावी-संस्कृत-उपादान' और 'मनुष्यत्व के मूल तत्व' मिल सकें; कि जिनसे मानवता का निर्माण हो सके। 'मूल तत्वों के खोजने वाले इस निःसंग कवि की दृष्टि ग्रामीणों की आँखों में दूर तक डूबी है; घोर दारिद्रय की नंगी वृद्ध छाया वह छू सका है; ग्रामीण लड़कों की 'पशुओं से भीत मूक चितवन' भी उसने आँकी और अंकित की है; अगणित ग्रामों के 'चेतना विहीन' 'विश्वास मूढ़' निवासी, कठपुतले 'चिर रूढ़ रीतियों के गोपन सूत्रों में बँध' नर्तन करते उसने देखे हैं; संध्या के बाद—'गाँवों के कुलियों और दुकानदारों के जीवन में रोज जो हृदयहीन एक ट्रैजेडी गहरी होती जाती है, उसकी मौन मर्मान्तक कथा उसने प्रस्तुत की है। पर इन सब को घेरे हुए जो संध्या की सी एक ठहरी शान्ति, प्रकृति का मुक्त, स्वस्थ अनुराग, गंगा का निश्चल स्वर्गिक मर्मर है; जो खेत, वन, कूप, तड़ाग, पथ, पर्व, यात्रा, नहान, नाच रंग, रास आदि का खुला हुआ जीवन है,—वह जहाँ एक ओर पूर्वोक्त दृश्यों की भीषणता को अपनी पृष्ठ-भूमि पर रेखांकित करता है, वहाँ उनमें छिपे आरक्त प्राण-जीवों को खोल कर दिखाता भी है। एक विचित्र सुहास, व्यंग, कटूक्ति और साथ ही साथ एक दबी हुई करुणा और व्यथा उसमें मिली हुई है। कवि देश व्यापी दुर्व्यवस्था के छिपे कारणों को उलट रहा है। पर उसकी उँगलियों में जरा

कम्पन नहीं, बल्कि एक सिद्ध कुशलता सी लिये हुए उनमें एक स्वस्थ गुदगुदी है जो कहीं सरल है, कहीं सहज ही क्रूर, और कहीं स्वभावतः कौतुक-पूर्ण; पर एक स्वस्थ, निश्छल उत्साह उनमें प्रतिक्षण छिपा हुआ है।' 'ग्राम्या' में प्रकृति एक 'पल पल परिवर्तित' सौन्दर्य चित्र न रह कर मानव जीवन की पृष्ठभूमि से कुछ अधिक उभर, उसके दैनिक जीवन का एक बन, बल्कि उसके जीवन क्रम में एक मूक शक्ति रूप, भावनाओं में एक रस बोध सी, उसकी अनजान वैभव, उसकी श्री बन कर आती है। यह क्रम 'युगवाणी' में भली प्रकार से आरम्भ हो गया था। गाँव की प्रकृति एक सार्थक शक्ति है। वह फलदा है और मानो कर्म से मुक्त है। मोह-मुक्त वह एक दम नहीं; पर चिन्तन रहित है। वह गाँव का परिचित अपरिचित स्वर्ग है। ग्रामनिवासियों के आंतरिक दुखों की एक क्षीण छाया कभी कभी उस पर पड़ जाती है। पर वह शीघ्र ही कहीं खो जाती है।

अन्त में हम उनकी दो विशेष बातों का वर्णन करेंगे—'ग्राम्या' में व्यंग्य और नारी चित्रण। पहले हम व्यंग्य या 'सेटायर' को लेंगे।

'मनुष्य में स्वास्थ्य-संरक्षण का एक प्राकृतिक नियम है। अनुभूति परिस्थितियों पर विजय पाकर जब हम औरों को भी वैसी ही परिस्थितियों से मुक्त करना चाहते हैं, पर सामाजिक कारणों से वैसा करना अपनी शक्ति और स्वास्थ्य के लिये असम्भव या हानिकर प्रतीत होता है, तो एक अनजान प्रेरणा हमारी सहानुभूति को ही व्यंग्य और उपहास का रूप दे देती है, ताकि एक ओर तो अनजाने और परोक्ष में उन लोगों का उद्धार हो जो हमारे व्यंग का शिकार बनते हैं, और दूसरी ओर हमारे बचाव की तटस्थ स्थिति पूर्ववत् बनी रहे। यही स्वाभाविक प्रेरणा, व्यंग और उपहास का नैतिक आधार है।'

उपहास करने वाले में यदि तटस्थता न होगी तो उसका व्यंग कटूक्ति हो जायगा। उसमें यदि उपहास्य की परिस्थिति की सी पूर्व-अनुभूति न होगी, तो वह व्यंग विरस और रूखा होगा। इसके विपरीत, तटस्थता जितनी ही गहरी पूर्व अनुभूतियों से पुष्ट होगी, तथा उस तटस्थ-तल से

अनुभूतियाँ जितनी ही साफ अन्वेक्षित होंगी—व्यंग उतना ही स्पष्ट-सार्थक, साथ साथ उतना ही मार्मिक होगा। पंत जी के व्यंग की तरलता और गहराई और उसका आस्वादन भी—अभी बहुत कुछ भविष्य की चीज है। फिर भी 'ग्राम्या' ने उस भविष्य की ओर एक बहुमुखी संकेत किया है और बहुत ही स्पष्टतया किया है। सीधा खुला हुआ नारकीय व्यंग—जिसमें वर्ग-जनित विषमताओं और उपेक्षाओं पर भी छींटे हैं। हमें 'चमार चौदस के ढंग' में मिलता है—

'मजलिस का मसखरा करिंगा
जमीदार पर फबती कसता,
बाम्हन ठाकुर पर हैं हँसता,
बातों में वक्रोक्ति, काकु, औ,
श्लेष बोल जाता वह सस्ता,
कल काँटा को कह कलकत्ता।'

गाँवों में गहनों द्वारा शरीर लादने की पृथा पर कवि ने 'नहान' शीर्षक कविता के अलंकार वर्णन में व्यंग किया है। देश के वर्तमान में छिपे दबे सांस्कृतिक बीजों के प्रति कवि श्रद्धानत है। व्यंग में निहित आलोचनात्मक गाम्भीर समीक्षा के संतुलन द्वारा पंत जी ने शहरों के नारी जीवन में दिखावटी और सारहीन रंगीनी और विलास प्रियता पर कटाक्ष किया है। वह अत्यन्त सरस, सांकेतिक 'स्वीट पी के प्रति' में हमें देखने को प्राप्त होता है। इसमें केवल व्यंग ही नहीं है, प्रत्युत उसके पीछे की पीड़ा भी मर्मान्तक है :—

"कुल वधुओं सी अयि सलज्ज सुकुमार।
शयन कक्ष, दर्शनग्रह की शृङ्गार
उपवन के यत्नों से पोषित,
पुष्पयान में शोभित रक्षित;
कुम्हला जाती हो तुम निज शोभा ही के भार!"

ग्राम्या :— "क्या न बिछाओगी जन पथ पर
स्नेह सुरभिमय

पलक पंखड़ियों के दल !
स्निग्ध दृष्टि से जनमनहर
आँचल से ढक दोगी न शूल चय ?
जर्जर मानव पद तल ?"

'ग्राम्या' की नारी 'युगवाणी' से भी अधिक स्पष्ट और व्यापक रूप में आती है। कवि ने शहरी नारियों के चित्रण में वास्तविकता के 'स्केच' अधिक दिये हैं। कवि की ग्राम नारियाँ तो आदर्श टाइप के निकट पहुँच जाती हैं। 'ग्राम श्री' में तुलसा का उभरा हुआ व्यक्तित्व भुलाने पर भी नहीं भूला जा सकता :—

'हाँका करती दिन भर बन्दर,
अब मालिन की लड़की तुलसा।'

अस्तु, मुख्य प्रयोजन कवि का यह रहा है कि ग्राम-नारी के मुक्त, स्वस्थ, कृत्रिमता-रहित, कार्य विरत, अपेक्षित जीवन के सामने झूठी, निष्प्राण, विलास-प्रिय नागरिकाओं को रखे, जिनका जीवन की 'जग से चिर अज्ञात' अपने ही सौन्दर्य-वर्द्धन में लीन है। 'आधुनिका' का एक चित्रण देखिए:—

"लहरी सी तुम चपल लालसा श्वास वायु से नर्तित,
तितली सी तुम फूल फूल पर मँडराती मधु क्षण हित !
मार्जारी तुम, नहीं प्रेम को करती आत्म-समर्पण,
तुम्हें सुहाता रंग-प्रणय, धन-पद मद, आत्म प्रदर्शन !
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी मार्जारी
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी !"

नारी के प्रति, वैसे कवि की सदैव से ही सुन्दर भावना रही है। कवि जिस महान स्वतंत्रता के मुक्त वातावरण में नर-नारी के नये, सार्थक जीवन की कल्पना करता है, वहाँ तुच्छ, संकुचित वासनाओं और भावनाओं के लिए स्थान नहीं। नारी की वास्तविक महिमा दिखाकर कवि ने जीवन की विषमताओं का कुछ उपचार प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। 'स्वीट पी के

प्रति', 'स्त्री मजदूरिनी के प्रति', 'नारी', 'द्वन्द्व' मणय और उद्‌बोधन विभिन्न रूप में ये सभी इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। 'उद्‌बोधन' की पंक्तियाँ देखिए :—

"खोलो वासना के वसन
नारी नर !
वाणी के बहु रूप, बहु वेष, बहु विभूषण
खोलो सब, खोलो सब
एक वाणी;—एक प्राण, एक स्वर !
वाणी केवल भावों की वाहन,
खोलो भेद भावना के मनो वसन
नारी नर !
नव चेतन मनुज आज करें धरणि पर विचरण,
मुक्त गगन में समूह शोभन ज्यों तारागण।
प्राणों प्राणों में रहे ध्वनित प्रेम का स्पन्दन,
जन जन से रे बहे; मन से मन में जीवन;
मानव हो मानव—हो मानव में मानवपन
अन्न वस्त्र से प्रसन्न, शिक्षित हों सर्व जन;
सुन्दर हो वेश, सब के निवास हों सुन्दर,
खोलो परंपरा के कुरूप वसन,
नारी नर !"

इस प्रकार 'ग्राम्या' के कवि पंत ने ग्राम्य जीवन के यथार्थ चित्रों के आधार पर सामाजिक कुरीतियों, उन पर व्यंग्य आदि का दिग्दर्शन कराते हुए सामूहिक चेतना तथा विकास की ओर इङ्गित किया है। कवि का विश्वास है कि जब तक सम्पूर्ण मानव समाज—स्त्री और पुरुष—कटिबद्ध होकर एक साथ कार्य न करने का प्रयास करें, तब तक समाज का विकास नहीं हो सकता। 'ग्राम्या' में पंत जी ने सामाजिक प्रयोग किये हैं तथा सामाजिक विकास के लिए हमारा मार्ग दर्शन भी किया है।

'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि'

SSS

'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' पंत जी की उनके काव्य के तृतीय युग—अध्यात्म युग, की रचनाएँ हैं। सन् १९४० तक 'ग्राम्या' समाप्त हो चुकी थी और उसके पश्चात् देश में असहयोग आन्दोलन की लहर दौड़ गई। पंत जी कुछ दिनों पाँडुचेरी में सन्त अरविंद के सम्पर्क में रहे। उन्होंने योगी अरविंद की आध्यात्मिक साधना का कविता द्वारा अभिनन्दन किया। लोक जीवन से वे कुछ विरक्त से हो गये, क्योंकि उन दिनों में कुछ अस्वस्थ थे अतः वे एकान्त में अधिक रहे। ऐसी स्थिति में मननशील व्यक्ति का दृष्टिकोण दार्शनिक एवं आध्यात्मिक बन जाना स्वाभाविक ही है। उसका एकान्त उसे अन्तमुर्ख बना ही देता है। रचनाओं के प्रगति युग में कवि का मूर्त समस्याओं और साम्यवादी लोक जीवन दर्शन की ओर खिंचाव था, वह युगीन प्रभाव से उत्पन्न अस्थायी बौद्धिक जागरण मात्र ही था। इससे उसे अपने सहज रूप में बदलते देर न लगी। 'ज्योत्स्ना' में जिस आध्यात्मिक मानववाद के दर्शन हुए थे, वही इस युग में समन्वय के आधार पर विकसित होने वाला अन्तर्चेतनावादी नव-मानववाद बन गया। पंत जी के आध्यात्मवाद का आधार जीवन से विरक्ति नहीं, मानव के विकास के प्रति मनोवैज्ञानिक अनुरक्ति है। पंत जी मानते हैं कि मानव विकास के लिये अन्तर का विकास होना अनिवार्य है। अविकसित चेतना पार्थिव विकास में सहायता नहीं कर सकती। इसलिये वे भूत और चेतना, अध्यात्म और भौतिकता और मन और मस्तिष्क का समन्वय करके एक पूर्ण मानवीय विकास की कल्पना करते हैं। उनका अध्यात्मवाद मनोवैज्ञानिक अध्यात्मवाद

है, जो अन्तश्चेतना के विकास के आधार पार्थिव मानवता के पूर्ण विकास के लिये उत्सुक है। अतः उसमें भूत सृष्टि के प्रति विरक्ति नहीं, अनुरक्ति है—एक सात्विक सुधारवादी अनुरक्ति। कवि ने स्वर्ण शब्द का प्रयोग चेतना के प्रतीक के रूप में किया है। 'स्वर्ण धूलि' की अधिकांश कविताओं का आधार सामाजिक है और 'स्वर्ण किरण' में चेतना प्रधान कविताएँ हैं। 'स्वर्ण किरण' की 'सर्वोदय' शीर्षक रचना में कवि ने अपने आध्यात्मिक मानववाद के दर्शन को प्रस्तुत किया है :—

"भू रचना का भूतिवाद युग
हुआ विश्व इतिहास में उदित
सहिष्णुता सद्भाव शान्ति के
हों गत संस्कृत धर्म समन्वित!
पृथा पूर्व पश्चिम का दिग्भ्रम
मानवता को करे न खण्डित
बहिर्नयन विज्ञान हो महत्
अन्तर्दृष्टि ज्ञान से योगित
एक निखिल धरणी का जीवन
एक मनुजता का संघर्षण
विपुल ज्ञान संग्रह भव पथ का
विश्व क्षेम का करे उन्नयन।"

भविष्य कल्पना बुद्धिगत भी हो सकती है और भावगत भी। 'स्वर्ण किरण' में कवि ने चेतना प्रधान रहस्यवाद के दर्शन कराये हैं। रहस्यवादी होने के मूल में अनेक बातें होती हैं। कोई धार्मिक आस्था से रहस्यवादी बनता है, कोई जीवन के दुख से घबरा कर। परन्तु कलाकार के लिये सबसे स्वाभाविक ढंग संसार के रहस्य को समझने के लिये उसे जिज्ञासापूर्ण बनना है। 'स्वर्ण किरण' में कवि का कहना है कि व्यक्ति लाख प्रयत्न करने पर भी अपनी चेतना की पुकार को नहीं दबा सकता। जिस प्रकार समुद्र को तट कितना ही बाँधने का प्रयत्न करे, परन्तु जब पूर्णिमा का चन्द्र उगता है तो

ज्वार के रूप में समुद्र उमड़ ही पड़ता है। इसी प्रकार मिट्टी मनुष्य को कितना ही बाँधने का प्रयत्न करे, पर उसके प्राण कभी-कभी उस महा चेतना के लिये आकुल होंगे ही—

इस धरती के उर में है
उस शशि मुख का असीम सम्मोहन,
रोक नहीं पाते भू के तट
जीवन वारिधि का उद्वेलन ! —'स्वर्ण किरण'

पंत जी भारतीय दर्शन की दुहाई देते नहीं थकते हैं। जीवन के वास्तविक सौन्दर्य के लिये आवश्यक है कि वहाँ अन्धकार का वास न हो। आत्मा चिरन्तन है, निर्भय है, अतः उसको सफल एवं सुखी करने के लिये तथा उसकी पुकार के अनुसार कार्य करने के लिये आवश्यक है कि मानव तमस को नाश करदे और प्रकाश युक्त बने। जैसे :—

"मृत्युहीन रे यह पुकार मानव आत्मा की निश्चय,
सत्य ज्योति अमरत्व और वह बढ़े अनागस निर्भय !
वैदिक ऋषि के अमृत निणय वचनों की जग में हो जय,
ये उपनिषद, समीप बैठ रे, ग्रहण करें हम आशय !
अंधं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः
विद्यां चाविद्यां च यस्त द्वेदो भयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृत मश्नुते॥"

पंत जी का दृष्टिकोण जीवन में समन्वयवादी रहा है। अतः न उसका दर्शन भौतिकवाद की ही दुहाई देता है और न पूर्ण अध्यात्मवाद की उनका मत तो दोनों के समन्वय में ही है। यथा :—

'जन मन के विनास पर निर्भर सामाजिक जीवन निश्चित,
संस्कृति का भू स्वर्ग अमर आत्मिक विकास पर अवलम्बित !'

सम्पूर्ण प्रकृति के अणु अणु में कवि को अपनी ही छाया दिखाई देती दिखाई देती है। कवि की आत्मा आनंदानुभूति से निमग्न है तथा उसे सर्वत्र

अपनी आत्मा का विकास दिखाई पड़ता है। उसकी आत्मा का आनन्द जैसे आकाश तक फैल गया है जिससे चहूँ ओर चेतनता का साम्राज्य छा गया है। कवि कहता है :—

यह नीला आकाश न केवल,
केवल अनिल न चंचल,
इनमें चिर आनन्द भरा
मेरी आत्मा का उज्ज्वल!
हलकी गहरी छाया के जो
घिरते ये रंग - बादल,
मेरी आकांक्षा की विद्युत्
बहती इनमें प्रतिपल!

पंत जी का दार्शनिक दृष्टिकोण परिवर्तन का कायल है। शरीर में, आत्मा, जगत में, सर्वत्र परिवर्तन ही परिवर्तन है। इसी परिवर्तन (जो विकास पूर्ण है) के आधार पर वे सौन्दर्य की सृष्टि करना चाहते हैं। कवि चाहता है कि मानव पुरानी भावनाओं और अनुभूतियों को त्यागकर नवीन धारणाओं अपनाये तथा विश्वास को लेकर जीवन में तथा जगत में सौन्दर्य की सृष्टि करे। जैसे :—

सृजन करो नूतन मन!
खोल सके जो ग्रन्थि हृदय की,
उठा सके संशय गुण्ठन,
आँक सके जो सूक्ष्म नयन से
जीवन का सौन्दर्य गहन!

जैसा कि कहा जा चुका है कि इस युग के कवि पर अरविंद का विशेष प्रभाव है। अरविंद को कवि दिव्य जीवन के दूत के रूप में देखता है। उनका विश्वास है कि अरविंद का दर्शन मन और प्राणों को नव चेतना प्रदान करता है तथा विश्व की कुण्ठाओं को मिटाने का एक मात्र साधन है। अरविंद वसुधा पर स्वर्ग उतारने के हेतु अवतरित हुए हैं :—

'दूत दिव्य जीवन के, दिव्य तुम्हारा दर्शन,
अति मानस का स्पर्श प्राण मन करता चेतन !
मानव उर प्रच्छन्न तुम्हारा नव पद्मासन,
तन मन प्राण हृदय से तुमको, देव, समर्पण !'

कवि के प्राणों की पीड़ा व्यक्तिगत न होकर सबके लिए है। वह देख रहा है कि संसार अपार दारिद्रय से पीड़ित है, चहूँ ओर अविद्या का तमस फैला है। प्राणी रोगग्रस्त है, जीवन विभ्रम और आत्मा मृत हो गई है। सम्पूर्ण धरा आपसी राग द्वेष से जल रही है; राष्ट्रों के कटु स्वार्थों ने इसे खंडित कर दिया है। बड़े बड़े राष्ट्र आज विष उगल रहे हैं और विश्व शांति तथा मानवता आज भँवर जाल में है। आज मनुष्यत्व घोर भौतिकता के वैभव से पराजित होकर सिसक रहा है। इतना सब कुछ होने पर भी कवि निराश नहीं होता है। जिस प्रकार कवि अपने व्यक्तिगत जीवन की पीड़ा को सँभाले आगे बढ़ रहा है, उसी प्रकार वह समाज तथा विश्व की पीड़ा को देख हिम्मत नहीं छोड़ता है। वह तो इसमें परिवर्तन लाना ही चाहता है। उसकी एक अपनी कल्पना है :—

"बदलेंगे हम चिर विषण्ण वसुधा का आनन
विद्युत गति से लावेंगे जग में परिवर्तन !
क्यों न मंजरित युवकों का हो विश्व संगठन,
नव यौवन आदर्शवादिता अरे न नूतन !
क्या करते ये धन कुबेर, पंडित वैज्ञानिक,
दिशा भ्रान्ति क्यों हो जाते राष्ट्रों के नाविक !
ज्ञात नहीं क्या लोक नियत है आज भू पथिक;
वर्ग राष्ट्र से लोक धरा का श्रेय है अधिक !
दिवस ज्योति सा सार सत्य यह गोचर निश्चित,
मनुष्यत्व है रीति नीति धर्मों से विस्तृत !
संस्कृति रे परिहास, क्षुधा से यदि जन कवलित,
कला कल्पना, जो कुटुम्ब-तन नग्न, गृह रहित !"

और इस प्रकार वे नव मानवता का निर्वाण करना चाहते हैं। उनका संघर्षण किसी एक जाति अथवा एक राष्ट्र के लिए नहीं है अपितु सम्पूर्ण मनुजता के हित में है। उनका दार्शनिक चिन्तन विश्व क्षेम के पक्ष में है:—

"सर्वोपरि मानव संस्कृति बन
मानवता के प्रति हो प्रेरित,
द्रव्य मान पद यश कुटुम्ब कुल
वर्ग राष्ट्र में रहे न सीमित।
एक निखिल धरणी का जीवन,
एक मनुजता का संघर्षण
विपुल ज्ञान संग्रह भव पथ का
विश्व क्षेम का करे उन्नयन!"

'पंडित जवाहरलाल नेहरू जी' तथा 'गांधी जी' के प्रति श्रद्धा भाव से कही गई कविताओं में भी कवि भारत संस्कृति तथा विश्व मनुजता के संरक्षण की बात कहता है। दोनों को कवि क्रमशः राष्ट्र नायक तथा विश्व नायक के रूप में देखता है।

नारी के प्रति कही गई कविताओं में भी दार्शनिक चिन्तन भरा पड़ा है। नारी के प्रणय को लेकर कवि 'स्वर्ण किरण' में कहता है:—

"क्या है प्रणय? एक दिन बोली, उसका वास कहाँ है?
इस समाज में? देह मोह का, देह द्रोह का त्रास जहाँ है?
तुम हो स्वप्न लोक के वासी, तुमको केवल प्रेम चाहिये?
प्रेम तुम्हें देती, मैं अबला, मुझको घर की क्षेम चाहिये।
हृदय तुम्हें देती हूँ प्रियतम! देह नहीं दे सकती,
जिसे देह दूँगी अब निश्चित, स्नेह नहीं दे सकती।"

पंत जी कहते हैं कि नारी का तन चाहने वाला व्यक्ति उससे स्नेह नहीं पा सकता, किन्तु साथ ही वे यह भी कहते हैं कि स्नेह पाने वाला व्यक्ति उसका तन नहीं पा सकता। अर्थात् नारी एक को तन देगी और दूसरे को

स्नेह। गुत्थी इस प्रकार सुलझ जाती है कि स्नेह का महत्व इतना अधिक है कि देह का महत्व नहीं रह जाता। आगे चलकर एक और कविता 'नारी-पथ' में पंत जी विचार करते हैं कि नारी के बिना यह समाज तथा प्राणि-जगत् सुन्दर नहीं हो सकता। नारी और पुरुष दोनों का साथ-साथ बढ़ना जीवन को सफल बनाने के लिये उपयोगी एवम् आवश्यक हैं। नारी की दशा इस समाज में शोचनीय है। पंत जी तो सम्पूर्ण समाज में क्रान्ति लाना चाहते हैं—क्या नारी में और क्या पुरुष में।

'स्वर्ण किरण' की सबसे सुन्दर रचनाएँ 'स्वर्णोदय' और 'अशोक वन' हैं। 'स्वर्णोदय', उप शीर्षक जीवन-सौन्दर्य, कविता में पंत जी ने मानव जीवन की चार अवस्थाओं शैशव, कैशोर्य, यौवन और वृद्धत्व का काव्यमय चित्रण किया है और इस वर्णन के पश्चात् नव-संस्कृति के जागरण का। जैसा कि शीर्षक से स्पष्ट है यह जीवन सौन्दर्य का दर्शन है। शैशव कितना चपल और बेपरवाह है! कैशोर्य में कुतूहल और कुछ 'समझदारी' उसे और भी मधुर बना देती है; यौवन में भविष्य निर्माण की महत्वाकांक्षा और कण-कण को सौन्दर्य और माधुर्य से आप्लावित कर देने की चाह तथा आदर्शों के प्रति दृढ़ता सृजन-प्राण आकांक्षा में स्फूर्ति हो उठती है, और वृद्धत्व इस आकालर्न को संश्लेषण—विश्लेषण द्वारा फलीभूत करता है। 'स्वर्णोदय' में ऋतु वर्णन के भी कुछ अच्छे वर्णन हैं यद्यपि ऋतु वर्णन गौण रूप से मनुष्य की 'अवस्थाओं' को अधिक उभाड़ने के लिये ही किया गया है। 'स्वर्ण किरण' की दूसरी बड़ी कविता 'अशोक वन' है जो छोटे छोटे गीतों में विभक्त है। यह एक रूपक है जिसमें सीता पार्थिव गरिमा की और राम ईश्वर के प्रतिनिधि हैं। यह सीता के रावण की वाटिका में कैद होने का प्रकरण है। सीता, जो कि पृथ्वी की चेतना है, राम से परिणित है। राम ने नव जीवन प्रवर्तन के लिये उसका पाणि ग्रहण किया है। भौतिकता के वैभव में जड़ विश्व इस नव चेतना के जागरण को और भगवान के अवतार को अभिशाप ही समझता है और सीता का घर्षण कर लेता है। राम अपने पावन और पार्थिव हाथों से इस पंकिलता का निरास करके चेतना को मुक्ति देते हैं। संक्षेप में यही इस कविता का पृष्ठाधार है। इन

रूपक गीतों में कुछेक तो शब्द चयन की दृष्टि से भी (भावों के साथ-साथ) अत्यन्त उत्कृष्ट हैं। सीता जी का पावन सौन्दर्य का एक उदाहरण देखिये--

"देवि, सजादूँ फूलों से तन ?
लंका का यह शाश्वत् मधुवन, देवि, तुम्हारी छवि का दर्पण,
नत चितवन, मृदु चरण, सहजस्मिति, बन जाते शतमुकुल तृण सुमन।
गंधव्य जन पुलकित मलय-पवन, उठ उठ लहरें करतीं दर्शन,
तुम भूमिजे धरा की शोभा, क्या आश्चर्य प्रणत जो रावण !"

रावण पुष्पों से सीता को सजाने आया है, उसके सम्मुख आकर वह भी कितना पवित्र और अपापविद्ध हो उठता है ? 'नत चितवन' इत्यादि में भी कहीं राजसिकता नहीं, एक दम पवित्रता है—जितनी गंगा में होती है। रावण की प्रणति में भी कहीं वासना का नाम नहीं।

धीरे-धीरे कथा बढ़ती है और राम लंका विजय करते हैं और सीता उन्मुक्त होती है; लंका में एक हर्ष की लहर दौड़ पड़ती है। यह सम्पूर्ण रूपक भावों की दृष्टि से ही नहीं वरन् काव्य की दृष्टि से भी अत्युत्तम है। इस कथा के सहारे कवि ने अपने विचारों को व्यक्त किया है और स्पष्ट से स्पष्टतर कर दिया है कि भौतिकता की स्वर्ण शृंखलाओं में पड़ी चेतना को विश्राम कहाँ, वह तो उन्मक्ति के लिये तड़पेगी ही। कवि नैतिक और आध्यात्मिक चेतना को इस 'भू' पर पुनः लाने को उत्सुक है। वह इस 'भू' पर स्वर्ग उतारना चाहता है। राम, गांधी, अरविन्द, जवाहरलाल—सभी नव चेतना के अग्रदूत हैं जो सम्पूर्ण पृथ्वी का सन्ताप तथा इसकी पंकिलता को निरास करके इस पर पुनः जागरण और चेतना का प्रसार करेंगे और पुनः मानवता विकसित एवम् संगठित होगी।

'स्वर्ण धूलि' सम्भवतः 'स्वर्ण किरण' से पहले की रचना है, किन्तु 'स्वर्ण-किरण' के नूतन रहस्यवादी पंत की प्रतिनिधि कृति होने से हमने उसे ही प्राथमिकता देना उपयुक्त समझा। 'स्वर्ण धूलि' का आधार जैसा कि कहा जा चुका है सामाजिक है। कवि भौतिक उन्नति के साथ आध्यात्मिक उन्नति भी चाहता है।

'स्वर्ण धूलि' के प्रारम्भ में ही कवि कहता है :—

"मुझे असत् से ले जाओ हे सत्य ओर
मुझे तमस से उठा, दिखाओ ज्योति छोर,
मुझे मृत्यु से बचा, बनाओ अमृत भोर!
बार बार अन्तर में हे चिर परिचित,
दक्षिण मुख से, रुद्र, करो मेरी रक्षा नित!"

कवि ने भारतीय दर्शन के अनुसार व्यक्तिगत रूप में असत् से सत् की ओर, तमस से ज्योति की ओर और मृत्यु से अमृत की ओर अपने को ले चलने के लिये 'प्रभु' से प्रार्थना की है। उनकी व्यक्तिगत चेतना की कामना आगे चल कर विश्व कामना बन जाती है। मनुष्यत्व को ललकारते हुए पंत जी कहते हैं :—

"छोड़ नहीं सकते रे यदि जन
जाति वर्ग औ, धर्म के लिये रक्त बहाना,
बर्बरता को संस्कृति का बाना पहनाना,—
तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम हिन्दू मुस्लिम औ ईसाई कहलाना!
मानव होकर रहें धरा पर,
जाति वर्ण धर्मों से ऊपर,
व्यापक मनुष्यत्व में बँधकर!"

और आगे इसी कविता में नारी की परवशता पर दृष्टिपात करते हुए वे लिखते हैं :—

"छोड़ नहीं सकते हैं यदि जन
नारी मोह, पुरुष की दासी उसे बनाना,
देह द्वेष औ काम क्लैब के दृश्य दिखाना,—
तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम समाज में द्वन्द्व स्त्री पुरुष में बँट जाना!
स्नेह मुक्त सब रहें परस्पर,

नारी हो स्वतन्त्र जैसे नर,
देव द्वार हो मातृ कलेवर !"

पंत जी नहीं चाहते कि हमारा विश्व समाज जाति भेदों तथा धर्म भेदों में बँटा रहे, और न हीं वे चाहते हैं कि नारी की परवशता (पुरुष की दासी के रूप में) इसी प्रकार बनी रहे, क्योंकि विश्व संगठन, मानव की प्रगति तथा समस्त राष्ट्रों की प्रगति और उनके विकास के लिये यह अपेक्षित है कि सब मिलकर सहयोग से कार्य करें ; मनुष्य स्वतन्त्र हो, नारी स्वतन्त्र हो, जाति स्वतन्त्र हो तथा धर्म स्वतन्त्र हो, पर साथ ही साथ इनमें एक साथ सबकी भलाई के लिये कार्य करने की क्षमता भी हो। इसी से तो बादल को सम्बोधन करके 'आह्वान' शीर्षक कविता में कवि पंत कहते हैं :—

"बरसो हे घन !
आशा का प्लावन बन बरसो,
नव सौन्दर्य प्रेम बन सरसो,
प्राणों मे प्रतीति बन हरसो,
अमर चेतना बन नूतन,
बरसो हे घन !"

'चेतना' शब्द पंत जी को बहुत प्रिय है। बार-बार वे इसी बात पर जोर देते हैं और विश्व-संस्कृति में पुनः चेतना, प्राणों का संचार होता हुआ देखना चाहते हैं। पंत जी भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के लिये इतने उत्सुक नहीं जितने कि विश्व मानवता की जागृति के लिये। सम्भव है वे सोचते हैं कि भारत का भविष्य भी विश्व संस्कृति के निर्माण के साथ बँधा हुआ है। उन्हें विरह मिलन, आदि और अन्त तथा मुक्ति-बन्धन की चिन्ता नहीं। वे तो सम्पूर्ण जीवन को एक धारा के रूप में देखते हैं, जिसमें प्रवाह है, वेग है। चाहे वह मानव का जीवन हो अथवा विश्व जीवन। 'प्रेम मुक्ति' शीर्षक में कवि कहता है :—

"एक धार बहता जग जीवन,
एक धार बढ़ता मेरा मन !

आर पार कुछ नहीं कहीं रे
इस धारा का आदि न उद्गम !
सत्य नहीं यह स्वप्न नहीं रे
सुप्ति नहीं यह मुक्ति न बंधन,
आते जाते विरह मिलन नित
गाते रोते जन्म मृत्यु क्षण !"

कवि की इच्छा तो इतनी प्रबल एवं वेगवती हो उठी है कि वह कहने लगता है कि ईश्वर को भी मर जाये दो अर्थात् पुरातन को भी समाप्त हो जाने दो। रूढ़िवादी ईश्वर को समाप्त ही होने दो। क्योंकि वह पुनः जी उठेगा और उसके जीने में विकास होगा। कहने का तात्पर्य है कि चेतनता लाने के लिए तथा चिरनूतनता बनाये रखने के लिए आवश्यक है ईश्वर भी जीता मरता रहे क्योंकि उसके प्रत्येक जीवन में नवीन जागरण होगा। पुरानी परम्पराओं को नव-निर्माण के पक्ष में समाप्त होना ही चाहिए। इसी भाव को कवि 'मृत्युञ्जय' कविता में प्रकट करता है :—

"मरने दो ईश्वर को तब मरने दो हे,
- वह जी उठेगा, ईश्वर को मरने दो !
वह फिर फिर मरता, जी उठता,
ईश्वर को चिर मुक्त सृजन करने दो !"

अब अन्त में 'स्वर्णधूलि' के महत्वपूर्ण भाग 'मानसी रूपक'* का दिग्दर्शन कर लेना भी अनुपयुक्त नहीं होगा। सर्वप्रथम इसके सम्बन्ध में लेखक की दी गई पंक्तियों को देखेंगे :—

"यह पुरुष नारी का रूपक है। कुल नारियाँ शालीन रंगों के वस्त्रों में गोपिकाएँ चटकीले फूल से लँहगों और ओढ़नियों में, भिक्षु भिक्षुनियों के सरी और गेरुवे लबादों में तथा आधुनिकाएँ विविध प्रांतों के सुरंग सुरुचिपूर्ण परिधानों में नाचती हैं। अन्तिम दृश्य में भविष्य के निर्माता कृषक-श्रमिक, मध्य-उच्च वर्गों के युवक सफेद और खाकी खादी में एवम् संस्कृति की संदेश

* विस्तृत समीक्षा के लिये 'मानसी रूपक' पर पृथक अध्याय में पढ़िये।

वाहिकाएँ नवयुवतियाँ रंगीन रेशमी वस्त्रों में अभिनय करती हैं।" विविध संस्कृतियों का यह अपूर्व समागम दर्शनीय होगा। अब ये आधुनिकाएँ और कुलांगनाएँ (जिनमें विशेष अन्तर है) सभी एक साथ नृत्य करेंगीं। फिर दूसरे युवक युवतियाँ नाचेंगे, जिनमें युवकों के खादी होगी और युवतियों के रेशमी वस्त्र क्योंकि वे संस्कृति की प्रतीक हैं। मानसी एक रूपक है जिसके द्वारा कवि ने ये विचार स्थिर करने का प्रयत्न किया है कि नर-नारी के मध्य प्रेम का कैसा सम्बन्ध रहना चाहिए। यह सात दृश्यों का एक पद्य बद्ध एकांकी नाट्य रूपक है। पहले छः दृश्यों में प्रेम लीला तथा विभिन्न श्रेणियों के नर नारियों का चित्रण किया गया है तथा उनकी स्वभावगत विशेषताओं की आलोचना की गई है। सातवें दृश्य में जीवन का आदर्श बतलाया गया है। वहाँ समझाया गया है कि नर नारी के प्रणय की सार्थकता इस बात में है कि वे स्वर्ग की चिंता छोड़, धरती से अनुराग करना सीखें और श्रमिक बनकर पृथ्वी की युग युग की अस्वच्छता को दूर करें। अन्त में मंगल कामना के साथ इस गीत-नाट्य का अन्त होता है। अन्तिम पद, जिसमें जीवन का आदर्श दिया गया है तथा मंगल कामना की गई, देखिये :-

'प्रतीत प्रीति प्राण में,
चरण धरो, चरण धरो,
लिए हो हाथ हाथ में,
न तुम डरो, न तुम डरो!
न रक्त पात युद्ध हो,
न ऊर्ध्व शक्ति रुद्ध हो,
मनुष्य शुद्ध बुद्ध हो,
विदेह मन न क्रुद्ध हो,
अभय अमर हो मृत्यु
आज साथ साथ जो मरो?
क्षुधार्त रे असंख्य प्राण,
नग्न देह, बुद्धि म्लान,

रोग व्याधि से न त्राण, निश्चय लो आज जान,
तुम प्रथम मनुष्य हो, न युग्म मात्र स्त्री नरो।
विनम्र शिष्ट निराभिमान
पुरुष नारि हों समान,
प्रीति प्राण, मुक्त ज्ञान, युक्त कला नृत्य ज्ञान,
स्वर्ग तुल्य हो धरा, जघन्य रूढ़ियो झरो।"

'मानसी' को पढ़कर हमें 'ज्योत्स्ना' का स्मरण हो आता है। 'ज्योत्स्ना' का पट मानसी से विस्तृत है। मानसी में केवल एक प्रेम की समस्या है, परन्तु 'ज्योत्स्ना' में कवि ने जीवन के आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और भावात्मक अनेक पक्षों पर अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। मानसी में जैसे हम कह आये हैं, चार प्रकार की नारियों की समस्या है। आधुनिका जो चौथे प्रकार की नारी है, का चित्रण कुछ अंशों में ठीक प्रतीत नहीं होता। कवि के अनुसार आधुनिका को इतनी निर्लज्ज मान लेना कि उसके शरीर पर वस्त्र ही नहीं हैं, कहाँ तक उचित है कुछ समझ में नहीं आता। पर फिर भी बहुत अंशों में आधुनिका नैतिक स्तर से गिर अवश्य गई है, सम्भव है यही दिखाना कवि का ध्येय हो। इस प्रकार कवि ने 'स्वर्णधूलि' में सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डाला है तथा उनको सुलझाकर मानव समाज को विकसित करने की ओर भी संकेत दिया है।



'उत्तरा' में पंत की अनुभूति तथा उसकी अभिव्यक्ति

* * *

'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्णधूलि' के दो वर्षों के पश्चात् 'उत्तरा' का प्रकाशन हुआ। सामान्यरूप से यदि देखा जाय तो 'उत्तरा' अपनी दो पूर्व वर्ती रचनाओं—'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' की परम्परा में है, पर ध्यानपूर्वक देखने से स्पष्ट होता है कि 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' में समष्टि चिंतन की प्रधानता है, लेकिन 'उत्तरा' में पंत का कवि मानव को, मानव समाज को, संस्कृति को बदल डालने की आकांक्षा की अभिव्यक्ति प्रदान करता है। वह घोषणा करता है—

यह रे भू का निर्माण काल
हँसता नव जीवन अरुणोदय
ले रही जन्म नव मानवता
अब खर्व मानवता होती क्षय! —'उत्तरा'

कवि को यह विश्वास हो चला है कि उसकी आकांक्षा पूर्ण हो जायेगी, अतः वह इसी अवस्था पर 'भू-स्वर्ग' निर्मित कर रहा है, परन्तु इसमें किसी प्रकार 'भू' का आँचल सरक गया है और वहाँ कवि की अंतः चेतना जाग्रत हो उठी है। कवि के चिंतन की धारा एक शीर्ष-विन्दु पर आकर स्थिर हो जाती है। इस प्रकार पंत जी कवि की अपेक्षा एक दार्शनिक बन गये हैं और यही दार्शनिक चिंतन 'उत्तरा' में अभिव्यक्ति पा सका है। स्वयं कवि के कथ-

नानुसार 'उत्तरा' में मेरी इधर की कुछ प्रतीकात्मक, कुछ धरती तथा युग जीवन-संबंधी, कुछ प्रकृति तथा वियोग-शृङ्गार विषयक कविताएँ और कुछ प्रार्थना-गीत संगृहीत हैं।' पर इन कविताओं से अधिक महत्व रखती है कवि द्वारा लिखित 'उत्तरा' की प्रस्तावना। इसमें कवि ने अपने उत्तर जीवन की प्रेरणाओं और विचार धाराओं का विश्लेषण किया है। 'स्वर्णधूलि' और 'स्वर्णकिरण' को लेकर आलोचकों में एक वितंडावाद खड़ा हो गया था, उसी का निराकरण करते हुए पंत जी ने प्रस्तावना में कहा है—"इस प्रस्तावना का उद्देश्य उन तर्कों या उच्छ्वासों का निराकरण करना नहीं, केवल पाठकों के सामने, कम से कम शब्दों में, अपना दृष्टिकोण भर उपस्थित कर देना है। वैसे, मेरा विचार अपने काव्य-संकलन में 'युगान्त' के बाद की अपनी रचनाओं के सम्बन्ध में विस्तृत आलोचनात्मक निबन्ध लिखने का है, पर वह कल की बात है। मेरी इधर की रचनाओं का मुख्य ध्येय केवल उस युग-चेतना को अपने यत्किंचित् प्रयत्नों द्वारा, वाणी देने का रहा है जो हमारे संक्रांतिकाल की देन है और जिसने, एक युग जीवि की तरह, मुझे भी अपने क्षेत्र में प्रभावित किया है। इस प्रकार के प्रयत्न मेरी कृतियों में 'ज्योत्सना' काल से आरम्भ हो गये थे; 'ज्योत्सना' की स्वप्न भ्रान्त चाँदनी (चेतना) ही एक प्रकार से 'स्वर्णकिरण' में युग प्रभात के आलोक से स्वर्णिम हो गई है।

वह स्वर्ण भोर की ठहरी जगके ज्योतित आँगन पर
तापसी विश्व की बाला पाने नव जीवन का वर !—

चाँदनी को सम्बोधित 'ज्योत्सना-गुंजन' काल की इन पंक्तियों में पाठकों को मेरे उपर्युक्त कथन की प्रतिध्वनि मिलेगी। मुझे विश्वास है कि 'ज्योत्सना' के बाद की मेरी रचनाओं को तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ने पर पाठक स्वयं भी इसी परिणाम पर पहुँचेंगे। बाहरी दृष्टि से उन्हें 'युगवाणी' तथा 'स्वर्णकिरण' काल की रचनाओं में शायद परस्पर विरोधी विचार धाराओं का समावेश मिले, पर वास्तव में ऐसा नहीं है।" पंत जी के इन विचारों से यह स्पष्ट हो हो जाता है कि कवि के कवित्व में स्वाभाविक रूप से विकास हुआ है। अस्तु कवि अब केवल स्वप्न द्रष्टा मात्र नहीं रह गया है, प्रत्युत नवीन विचारों

का सूत्रधार बन गया है। कवि की चिन्तना शक्ति सदैव विकास शील रही है। यों तो आज हम पंत के कवि को किसी भी विशिष्ट भाव प्रणाली के अन्तर्गत रख सकते हैं पर वास्तव में कवि की गतिविधि अपनी है और ऐतिहासिक दृष्टि से उसका विकास क्रम अत्यन्त महत्व रखता है। पंत जी ने लिखा है ('उत्तरा' की प्रस्तावना में)—"'ज्योत्सना' में मैंने मानव जीवन की जिन बहिरंतर मान्यताओं का समन्वय करने का प्रयत्न तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) में उनके रूपांतरित होने की ओर इंगित किया है, 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में उन्हीं के बहिर्मुखी (समतल) संचरण को (जो मार्क्सवाद का क्षेत्र है) अधिक प्रधानता दी है; किन्तु समन्वय तथा संश्लेषण का दृष्टिकोण एवम् तज्जनित मान्यताएँ दोनों में समान रूप से हैं। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण दिये जा सकते हैं। 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में यदि ऊर्ध्व मानों का समधरातल पर समन्वय हुआ है तो 'स्वर्ण किरण' 'स्वर्णधूलि' में समतल मानों का ऊर्ध्व धरातल पर; जो तत्त्वतः एक ही लक्ष्य की ओर निर्देश करते हैं। किन्तु किसी लेखक की कृतियों में विचार साम्य के बदले उसके मानसिक विकास की दिशा को ही अधिक महत्त्व देना चाहिये; क्योंकि लेखक सजीव अस्तित्व या चेतना है और वह भिन्न भिन्न समय पर अपने युग के स्पर्शों तथा संवेदनाओं से किस प्रकार आन्दोलित होता है, उन्हें किस रूप में ग्रहण तथा प्रदान करता है, इसका निर्णय ही उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने में अधिक उपयोगी सिद्ध होना चाहिए।" अतः पंत जी के विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि न वह पूर्णतः गाँधीवादी ही है, न मार्क्सवादी और न अरविंदवादी, वरन् वह सभी वादों का समन्वित रूप हैं। पंत जी वहिर्जगत और अन्तर्जगत का समन्वित विकास देखना चाहते हैं जिसकी अभिव्यक्ति पंत जी ने 'उत्तरा' की प्रथम कविता 'उत्तरा शीर्षक' में इस प्रकार की है—

'बदल रहा अब स्थूल धरातल,
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,
विस्तृत होता वहिर्जगत् अब
विस्तृत अन्तर्जीवन अभिमत।'

कवि अनुभव कर रहा है कि विगत काल में आसुरी शक्तियों ने मानव की चेतना को रुद्ध कर दिया है। आज भी विश्व में ऐसी शक्तियाँ विकसित हो रही हैं जो मानवता का ह्रास-करने पर तुली हुई हैं। पूँजीवाद, साम्राज्य-वाद तथा उपनिवेशवाद इसी श्रेणी की शक्तियाँ हैं। ये सब प्रलयंकरकारी शक्तियाँ हैं जिनको यदि बढ़ने दिया जाये तो सम्पूर्ण मानवता का विनाश निश्चय ही है। कवि का जाग्रत मन घोषणा करता है :—

'शोषक हैं इस ओर, उधर हैं शोषित,
बाह्य चेतना के प्रतीक जो निश्चित !
....
क्षोभ भरे युग शिखर उभड़ते दुर्धर
टकराता भू ज्वार : क्षुब्ध भव सागर !'

'मानववाद' पर कवि को अत्यन्त आस्था है। 'उत्तरा' में दी गई 'मनोमय शीर्षक' में कवि ने अपने मन की प्रकृत दशा का रूप अंकित किया है औ साथ ही साथ मानवता में भव-विकास भी देखा है—

'मानव अन्तर हो भू विस्तृत
नव मानवता में भव विकसित,
जन मन हो नव चेतना ग्रथित,
जीवन शोभा हो कुसुमित हे
फिर दिशि क्षण में !
तुम देव, बनो चिर दया प्रेम जन-जन में,
जग मंगल हित हे !'

'उत्तरा' 'युगपथ' की भांति आध्यात्मिक चेतना प्रधान युग की कृति है। इसमें जीवन सृष्टि की भूत और चेतन प्रगति का समन्वय करने की साधना है। कवि भूत का विकास चेतन के विकास से, शरीर का संस्कार मन के विकास से करने का स्वप्न लेता है और इस प्रकार वह जीवन के प्रति एक मध्य मार्ग अपनाता है, इसमें द्वन्द्व और संघर्ष कम, सन्धि, सौम्यता अधिक है। आज वे समझौते की बात करते हैं—

'साहित्य के क्षेत्र में मान्यताओं की दृष्टि से हम मार्क्सवाद या आध्यात्मवाद की दुहाई देकर जिन हास्यप्रद तर्कों से उलझ रहे हैं, उससे अच्छा यह होगा कि हम एक दूसरे के दृष्टिकोणों का आदर करते हुए दोनों की सचाई स्वीकार करें। 'मैं वर्गहीन सामाजिक विधान के साथ ही मानव, अहन्ता के विधान की भी नवीन चेतना के रूप में जन संघर्ष के अतिरिक्त अन्तर्मानव का संघर्ष देखता हूँ।' इस प्रकार वह बाह्य संघर्ष के साथ एक आध्यात्मिक संघर्ष के भी दर्शन करता है और भावी चेतन विकास युग के जन्म के लक्षण वर्तमान संघर्षरत सृष्टि के गर्भ में करता है :—

'जाने से पहले ही तुम आगये
यहाँ इस स्वर्ण धरा पर
मरने से पहले तुमने नव जन्म ले लिया
धन्य तुम्हें हे भावी के नारी नर।'

कवि के अन्तः मन में द्वन्द्व है। उसे कभी आशा की झाँकी देखने को प्राप्त होती है तो कभी वह पुनः विषाद से घेर लिया जाता है, और फिर वह दुःख से सोचता है :—

'कब टूटेंगे मन के बन्धन
रज की तन्द्रा होगी चेतन,
कब, प्रेम, कामना की बांहें
खुल तुम्हें करेंगी आलिंगन !
कब दीपित होगा जीवन तम
कब विस्तृत होगा मनुज अहं,
अन्तर के स्वप्न रहस्य शिखर
भू पर विचरेंगे ऊर्ध्व चरण !
मैं गाता हूँ
मैं स्वप्नों की
स्मित पंखड़ियाँ बिखराता हूँ !'

'उत्तरा' का अध्यात्म तत्व न तो किसी शास्त्रीय दार्शनिक सिद्धान्त का

प्रत्यक्ष में पोषक है और न वह प्रच्छन्न में किसी साम्प्रदायिक धार्मिकता में विश्वास रखता है। उसका विषय मानवात्मा के विकास से सम्बन्ध होने पर भी आत्मा की औपनिषदिक व्याख्या करना नहीं है। स्वस्थ मानव विकास के सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर कोई भी जागरूक साहित्यिक आज ऐसे सूक्ष्म पारलौकिक विषय वर्णन से सन्तुष्ट नहीं हो सकता जो इस लोक की स्थूल एवम् प्रकृत समस्याओं की सर्वथा अवहेलना करके हमें उस लोक की झाँकी दिखाये जो हमारी भावना या अनुभूति से कम और कल्पना में अधिक रहता है। श्री 'स्नातक' जी के शब्दों में " 'उत्तरा' का क्रान्तदर्शी कवि इस तथ्य से पूर्णतया अभिज्ञ हैं, इसीलिए युग चेतना की सुदृढ़ भूमि पर पांव जमा कर ही अध्यात्म के पथ पर चलता है। दार्शनिक अद्वैतवाद या ब्रह्म चिन्तन की परिपाटी से तथा कथत अध्यात्मवाद का पोषण उसका ध्येय नहीं है। अपने गीतों के शीर्षकों में ही उसने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है। विषयानुरूप शीर्षकों के चयन से ही कवि अपनी मौलिकता की छाप डाल कर स्वाभिप्राय की ओर इंगित कर देता है।" पर जो विचार प्रस्तावना में दिये गये हैं उनकी प्रमाणिकता इस दृष्टि से अपरिहार्य हैं कि वे अपनी कृति के सम्बन्ध में 'कर्त्ता' या स्रष्टा के अपने मौलिक विचार हैं। पंत जी ने अपनी नवीन रचनाओं का ध्येय 'युग चेतना को अपने यत् किंचित् प्रयत्नों द्वारा प्राणी देना'—कहा है। वे युग की प्रगति की धाराओं का क्षेत्र वर्ग युद्ध की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत तथा ऊर्ध्व मानते हैं। उनका अपना विश्वास है "कि युग पुरुष को पूर्णतः सचेष्ट करने के लिये लोक संगठन के साथ गांधीवाद की पीठिका बनाकर यदि मनः संगठन (संस्कार) का भी अनुष्ठान उठाया जाय और मनुष्य की सामाजिक चेतना (संस्कृति) का विकसित विश्व परिस्थितियों के अनुरूप नवीन रूप से सक्रिय समन्वय (?) किया जाय तो वर्तमान के विक्षोभ के आर्त्तनाद तथा क्रान्ति की क्रुद्ध ललकार को लोक जीवन के संगीत तथा मनुष्यता की पुकार में बदला जा सकता है।" आगे वे फिर उसी विश्वास के साथ कहते हैं कि "इस युग के क्रान्ति विकास सुधार-जागरण के आन्दोलनों की परिणति एक नवीन सांस्कृतिक चेतना के रूप में होना अवश्यम्भावी है, जो मनुष्य के पदार्थ,

जीवन मन के सम्पूर्ण स्वरों का रूपान्तर कर देगी तथा विश्व जीवन के प्रति उसकी धारणा को बदल कर सामाजिक सम्बन्धनों को नवीन अर्थ गौरव प्रदान करेगी। इसी सांस्कृतिक चेतना को मैं अन्तर्चेतना या नवीन सगुण (?) कहता हूँ।" पंत जी जनवाद को बाह्य रूप में ही न देखकर उसे भीतरी मानव चेतना के रूप में भी देखते हैं और जनतन्त्रवाद की आन्तरिक परिणति को ही वे 'अन्तर्चेतनावाद' अथवा 'नव मानववाद' कहते हैं। दूसरे शब्दों में—'जिस विकासकामी चेतना को हम संघर्ष के समतल धरातल पर प्रजातंत्रवाद के नाम से पुकारते हैं, उसी को ऊर्ध्व सांस्कृतिक धरातल पर (पंत जी) अन्तर्चेतना एवं 'अन्तर्जीवन' कहते हैं। पंत जी का परितोष राजनैतिक, आर्थिक या सामाजिक सुधार जागरणों के आन्दोलनों तक ही सीमित नहीं, उनका तो विश्वास है कि इन समस्त बाह्य आन्दोलनों और वादात्मक क्रांतियों की चरम परिणित एक व्यापक सांस्कृतिक चेतना के रूप में होना अवश्यम्भावी है। इस सांस्कृतिक चेतना के मूल में सूक्ष्म मनस्तत्व के व्यापक भाव तथा अन्तर्जीवन के विकास-बीज निहित हैं। बाह्य और अन्तर जीवन के दो रूप हैं। जब तक जीवन बहिर्मुखी होकर भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति में संलग्न रहता है तब तक पदार्थ ही उसको प्राप्य एवं काम्य रहता है। अभ्यन्तर जीवन का विकास केवल भौतिक साधनों की प्राप्ति से प्राप्य नहीं है, उसके हेतु तो जीवन के स्थूल, भौतिक समतल मानों को छोड़ ऊर्ध्व संचरणशील बनना पड़ेगा। कठोपनिषद् में समतलमान और उर्ध्वमान के लिए क्रमशः प्रेय और श्रेय शब्दों का प्रयोग किया गया है और प्रेय से श्रेय की उत्कृष्टता बताई गई है—

"श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तो सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते॥"

यद्यपि उपनिषदों में इन दोनों मार्गों के वर्णन में हीनता उच्चता का स्पष्ट संकेत है, किन्तु पंत जी ने ऊर्ध्व और समतल मानों में समन्वय स्थापित करके नवीनता की सृष्टि की है। इस प्रकार के समन्वय दर्शक भावों को ध्वनित करने के लिये (जिनके कुछ उदाहरण पीछे इसी लेख में दिये जा

चुके हैं) कवि ने अनेक कविताएँ लिखी हैं। 'युग विषाद', 'युग छाया', 'युग संघर्ष', 'जागरण गान', 'गीत विहंग', 'उद्‌बोधन' आदि कविताओं में जन्म लेती हुई जिस नव मानवता की ओर संकेत किया है उसकी पृष्ठभूमि में आध्यात्मिकता का गम्भीर पुट है। उसे हृदयंगय करने के लिये सहृदय को वैसे ही मानस आवेष्ठन की आवश्यकता है जैसे आवेष्ठन में कवि ने उसे अंकित किया है। इसके साथ ही एक बात और ध्यान में रखनी होगी कि इनमें एक प्रकार का उच्चकोटि का मानसिक अध्याहार भी है उसे ग्रहण किये बिना कविता के अन्तस्तल में पैठना सम्भव न होगा। जड़वादी भौतिकता का आधिक्य अग्राह्य है उसे दूर करके ही चेतना का स्वस्थ विकास सम्भव है——

"भौतिक द्रव्यों की घनता से चेतना भार लगता दुर्वह,
भू जीवन का आलोक ज्वार युग मनके पुलिनों को दुःसह !
चेतना पिंड रे भू गोलक युग युग के मानस से आवृत,
फिर तप्त स्वर्ण सा निखर रहा वह मानवीय बन सुरदीपित !"

अपनी इस आध्यात्मिक धारणा के सम्बन्ध में कवि ने जिन विषयों का मुख्य रूप से वर्णन किया है वे हैं मानववाद, आदर्शवाद, आस्तिकवाद, अतीत प्रेम, रूढ़ि और अन्धविश्वासों के प्रति विद्रोह, तथा प्रकृति के कतिपय रमणीय रूप। 'मनोमय' शीर्षक कविता में मन की प्रकृत दशा के रूप अंकित करते हुए मानवता में कवि भव विकास देखता है :—

'मानव अन्तर हो भू विस्तृत नव मानवता में भव विकसित।
जन मन हो नव चेतना ग्रथित, जीवन शोभा हो कुसुमित हे !
फिर दिशि क्षण में !
तुम देव, बनो चिर दया प्रेम जन जन में, जग मंगल हित हे !'

सार्वभौम यदि एक बार, मानवता स्थापित हो जाय तो फिर संसार में जाति, धर्म, वर्ग, ऊँच, नीच आदि के समस्त भेद तिरोहित हो जाते हैं। किन्तु क्या यह 'मानववाद' का स्वप्न कभी सत्य बन सकेगा ? 'उत्तरा' का

आशावादी कवि इसका वर्णन ऐसे करता है जैसे वह उसे 'हस्तामलकवत्' स्पष्ट दीख रही है :—

'तुम क्या रटते थे, जाति, धर्म, हाँ वर्ग युद्ध, जन आन्दोलन,
क्या जपते थे, आदर्श नीति—वे तर्कवाद अब किसे स्मरण।'

'मानववाद' में विश्वास करने पर मानव एकता की ही भावना सुदृढ़ नहीं होती वरन् मानव के देवत्व रूप में भी विश्वास उत्पन्न होता है। यह देवत्व अलौकिक न होकर लौकिक है—गांधी जी के रूप में देवत्व का विकास मानव का ही रूप है—

'अब मनुष्यत्व से मनोमुक्त देवत्व रहा रे शनैः निखर,
भू मन की गोपन स्पृहा स्वर्ग फिर विचरण करने को भू पर।'

× × ×

'देवों को पहना रहा पुनः मैं स्वप्न माँस के मत्य वसन,
मानव आनन से उठा रहा अमरत्व ढँके जो अवगुण्ठन !'

पंत जी के आध्यात्मिक दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिये उनकी संस्कृति, शाश्वत् सत्य और शिवत्व विषयक धारणाओं का जानना आवश्यक है। संस्कृति का स्पष्टीकरण करते हुए पंत जी ने लिखा है—"संस्कृति को मैं मानवीय पदार्थ मानता हूँ जिसमें हमारे जीवन के सूक्ष्म स्थूल दोनों धरातलों के सत्यों का समावेश तथा हमारे ऊर्ध्व चेतना शिखर का प्रकाश और समदिक् जीवन की मानसिक उपत्यकाओं की छायाएँ गुम्फित हैं। 'अतएव संस्कृति को हमें अपने हृदय की शिराओं में बहने वाला मनुष्यत्व का रुधिर कहना चाहिये, जिसके लिये मैंने अपनी रचनाओं में सगुण, सूक्ष्म संगठन तथा मनः संगठन तथा लोकोत्तर, देवोत्तर मनुष्यत्व आदि का प्रयोग किया है।" शाश्वत् सत्य के लिये पंत जी किसी एकांगी दृष्टिकोण के समर्थक नहीं। जड़ चेतन, क्षर और अक्षर, अनंत और सान्त दोनों में ही सत्य की प्रतिष्ठा उन्होंने की है। वे लिखते हैं—

फिर भी यदि जड़ता तुमको प्रिय,
उनको चेतनता, दुख नितान्त।

है सत्य एक जो जड़ चेतन,
दार, अक्षर, परम, अनन्त सान्त।'

पंत जी की मान्यताएँ पश्चिम के जीवन सौष्ठव तथा जीवन दर्शन में भारतीयता की स्पष्ट माँग हैं। जीर्णशीर्ण, पुरातन समस्त, रूढ़िग्रस्त अन्धविश्वासों के समूलोच्छेद के लिये कवि का मन आतुर है—

"तुम खेलो जीवन बंधन, जन, मन, बंधन!
जीर्ण नीति अब रक्त चूसती जन का,
सदाचार शोषक मनके निर्धन का,
स्वार्थी पशु मुख पहने मानव पन का,
तुम छेड़ो अब अन्तर रण, मन हो प्रांगण!"

'उत्तरा' में अध्यात्मिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने में कवि ने अपनी चिर अभ्यस्त मधुर शैली को—जिसके प्रसाधन में शृङ्गारिक कल्पनाएँ, उपमा और उत्प्रेक्षाओं का बाहुल्य रहता है—छोड़ा नहीं है। जघन, नाभिगर्त, उरोज़, पृथु श्रेणी आदि उपमानों के साथ शृङ्गारिक कविताओं में स्थान स्थान पर उभर आयी है। पंत जी की इस प्रकार की शृङ्गारिक कविताओं को देख कर कुछ आलोचकों को वासना की गन्ध आने लगती है पर मैं तो इतना ही कहूँगा कि काव्य की शैली की प्रभविष्णुता को ध्यान में रख कर भी इन उपमानों में वासना की गंध पा लेना या तो पक्षपात का सूचक है या फिर घ्राण शक्ति का दोष। इसी प्रकार महादेवी जी पर भी 'वासना' का आरोप लगाया जाता है जो सर्वथा अप्रमाणित एवम् अनुचित है। अतः पंत जी पर इस भावना का आरोप लगाना, मैं आलोचकों का असांस्कृतिक एवम् दूषित व्यवहार (पंत जी के प्रति) ही कहूँगा। 'उत्तरा' की भाषा भी 'युगवाणी' की भाषा से अधिक सरल है तथा चिन्तन शैली की कविताओं का संग्रह होने पर भी दुरुहता और दुर्बोधना के गम्भीर आरोप से बहुत कुछ बचा रहा है। प्रकृति के चित्रोपम वर्णन करके भी कवि ने अध्यात्म शुष्क विषय में सरसता का संचार कर दिया है। उदाहरणार्थ—

'मिट सी गई क्षितिज की रेखा
भूल गया मन ने जो देखा,

जागी चेतना की अशि लेखा
नव स्वप्नों को सत्य बनाने
लगे प्राण मन, तपने !'

प्रार्थना गीतों में सांस्कृतिक चेतना तथा मानववाद की पुट देकर उन्हें शुष्कता तथा मोनोंटोनी से बचा लिया है, यह उनकी अपनी विशेषता है:—

"मैं शुष्क, सरस कर दो विकास,
मैं रिक्त, पूर्ण कर भर दो
नव आशाऽभिलाष,
स्वर संगीत दो !"

पंत जी ने नवनवोन्मेषशाली प्रतिभा और अजेय कल्पना शक्ति लेकर काव्यक्षेत्र में प्रवेश किया। प्रारम्भ में कल्पना के अतिरंजित चित्र उन्होंने अंकित किये, उसके बाद वे अनुभूति के क्षेत्र में उतरे और आज चिन्तन जगत में लीन रहकर अध्यात्मवाद की ओर अग्रसर हो रहे हैं। पंत जी की यह विशेषता है कि अमूर्त, छायावादों का अंकन वे इस शैली से करते हैं कि अस्पष्ट कहे जाने वाले भाव भी दमकते हुए अपनी ऊर्मि का ज्ञान कराते रहते हैं। 'उत्तरा' पंत जी की अभिनव काव्य कृति है। मनन और चिन्तन के एक्य सूत्र में आबद्ध भाव पूर्ण स्फुट कविताएँ इस संग्रह में संकलित हैं। अधिकाँश कविताओं में चिन्तन प्रधान अध्यात्मवाद को—जो प्रायः दर्शन क्षेत्र का विषय माना जाता है—गीतिकाव्य की सरस एवम् मनोहर शैली से प्रस्तुत किया गया है।

संक्षेप में, 'उत्तरा' आज ही नहीं प्रत्युत भविष्य में भी यदि कोई पढ़ेगा तो ऐसा प्रतीत होगा कि कवि अपने काव्य कौशल और जीवन दर्शन के आधार पर मनोरम काव्य सृष्टि ही नहीं कर रहा था, वरन् वह मानव जाति के पुनुरुत्थान के लिए युग निर्माण भी कर रहा था।

पंत का नवीन जीवन दर्शन



ग्रन्थि से 'पल्लव' और 'पल्लव' से 'गुञ्जन', 'ज्योत्स्ना', 'युगान्त' में पंत जी क्रमशः शरीर से मन और मन से आत्मा की ओर बढ़ रहे हैं। मार्क्स के वस्तुवादी जीवन दर्शन ने उन्हें आकृष्ट किया और वे अपने सहज मार्ग से थोड़ा सा हट गये परन्तु उस समय भी उनकी आध्यात्मिक चेतना लुप्त नहीं हुई थी। 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' दोनों में भी उन्होंने अति भौतिकवाद का निषेध करते हुए आत्म सत्य और वस्तु सत्य के समन्वय पर बल दिया है। परन्तु फिर भी इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि उस काल-खण्ड की कविताओं में भौतिक सत्य का ही प्राधान्य है। चेतना पर वस्तु सत्य का ही प्रभुत्व है। पर एक बात यहाँ स्पष्ट कर देने की है कि उन्होंने वस्तुवाद अथवा भौतिकवाद का भी समर्थन करते हुए एक विशिष्ट दृष्टिकोण को अपनाया। वे कोरे भौतिकता—वादी—मार्क्स की भाँति न बने। उनके भौतिक दर्शन में भी 'मानववाद' की चर्चा रही है। कवि देखता है कि आज के युग मानव के विचार, नीति नीतियाँ, परम्परागत संस्कार क्षण क्षण में बदल रहे हैं। एकांकी बौद्धिक उत्कर्ष के कारण मानव वर्गों, वादों में बँट रहा है तथा जीवन में मान्यताओं का संघर्ष चल रहा है :—

"आज चतुर्दिक घृणा द्वेष,
स्पर्धा से जग जीवन परितापित
आज एकता के मन्दिर में
अहम्मन्य जड़ समता स्थापित।"

ऐसा प्रतीत होने लगा है जैसे मानवता लुप्त हो गई है और मनुष्य पशुओं से भी हीन "कृतियों सा" रेंगता है, "मानव गौरव भू कुण्ठित" हो गया है। रोग, शोक, मिथ्या, विश्वास, अविद्या से जगती का हृदय विदीर्ण हो रहा है। पारिवारिक तथा वैयक्तिक जीवन में भी असन्तोष फैल गया है—

"आज जीवनोदधि के तट पर
खड़ा अवांछित, क्षुब्ध, उपेक्षित
देख रहा मैं क्षुद्र अहम् की
शिखर लहरियों का रण कुत्सित—"

पंत जी ने अनुभव किया कि बाहरी भौतिक प्रगति तो अवश्य हुई है पर दुर्भाग्य से अन्तःमन अभी सो ही रहा है। मनुष्य ने बाह्य उन्नति को ही सब कुछ मान कर सन्तोष कर लिया है। मानव की दृष्टि वास्तव में आज अवरुद्ध हो गई है। तब इस युग समस्या का समाधान क्या हो सकता है? पंत जी के अनुसार चरम सत्य एक, अखण्ड और अविभाजित है। वस्तुवादी और अध्यात्मवादी दोनों दृष्टिकोण उसकी अभिव्यक्ति करते हैं:—

"अधः ऊर्ध्व, बहिरंतर,
उसके सृष्टि संचरण।
स्रोत अनंत, अनित्य नित्य,
का वह चिर दर्पण।"

पंत जी को इस प्रकार भौतिक उन्नति सन्तोष न पहुँचा सकी और पंत जी वस्तु से आत्मा की ओर फिर से प्रवृत्त हो गये—

'सामाजिक जीवन से कहीं महत् अन्तर्मन,
वृहत विश्व इतिहास, चेतना गीता किंतु चिरंतन'

उनका विकास-पथ भी यही है और इनकी चेतना भी उन्हें स्पष्ट है—

'दीप भवन युग विद्युत युग में ज्यों दिक् शोभित,
मन का युग हो रहा चेतना युग में विकसित।'

पंत जी की यह आध्यात्मिक साधना मनोवैज्ञानिक है। इसका सम्बन्ध सूक्ष्म चेतना से है। पंत जी आत्मा की चेतना और शक्ति में पूर्ण विश्वास रखते हैं। मानव आत्मा मनुष्य की सम्पूर्ण निखरी हुई विभूतियों का चरम बिन्दु है, अतः उससे रहित शुद्ध-बुद्ध अथवा निर्लिप्त रूप, नकारात्मक एवम् निवृत्ति मूलक पंत को अग्राह्य है। उन्होंने तो जिस आध्यात्मिक चेतना की कल्पना की है उसमें भौतिकता का पूर्ण परिष्कार है, तिरस्कार नहीं है, उन्नयन है, दमन नहीं है।

'आज हमें मानव मन को करना आत्मा के अभिमुख'

परन्तु साथ ही,

'वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन,
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन,
औ अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गम्भीर चिरन्तन'

'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' में पंत जी ने एक नवीन दर्शन अपनाया है जिसे एक शब्द में 'चेतनावाद' अथवा 'संचरण' भी कहा जा सकता है। इस दिशा में वे दार्शनिक श्री अरविन्द से बहुत प्रभावित हुए हैं। अत्यन्त संक्षेप में बात यह है कि पश्चिम जहाँ भौतिक उन्नति की सीमा पर पहुँच गया, वहाँ उसने अध्यात्म भाव का तिरस्कार किया और दूसरी ओर पूर्व ने ऐसी आध्यात्मिक उन्नति की कि संसार से ही विरक्त हो गया। अब उचित मार्ग यह है कि भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय हो। यदि व्यक्ति ने लौकिक उन्नति की है तो उसकी चेतना भी वैसी ही विकसित होनी चाहिये और यदि उसकी चेतना विकसित है तो उसे लौकिक सुख से भी मुँह नहीं मोड़ना चाहिये। सामञ्जस्य का अभाव ही व्यक्ति, समाज, देश और विश्व की अशान्ति का मूल कारण है। आज विश्व की भयंकर स्थिति पर विजय प्राप्त करने के हेतु कवि कभी भगवान से प्रार्थना करता है, कभी कामना करता है कि यह स्थिति कैसे ही दूर हो और कभी आशा करता है कि यह स्थिति अवश्य दूर होगी। यहीं तक नहीं अपने आशावाद के बल

पर वह मान लेता है कि संसार की अशांति दूर हो गई है और इस प्रकार वह एक नवीन युग में प्रवेश करता है।

जहाँ कवि की दृष्टि व्यक्ति पर रहती है वहाँ व्यक्ति चेतना, जहाँ समाज पर रहती है वहाँ सामाजिक चेतना और जहाँ विश्व पर दृष्टि रहती है, वहाँ वह विश्व चेतना की बात करता है। भारत की आध्यात्मिक उन्नति प्रसिद्ध सी बात है, अतः यहाँ के निवासियों से जीवन सौन्दर्य को पहचानने की बात कहते हैं, पश्चिम में भौतिक उन्नति चरम सीमा पर पहुँच गई है, अतः वहाँ के व्यक्तियों को परखने का सन्देश कवि देता है। परन्तु सब मिलाकर आज का संसार भौतिकवाद की ओर ही तीव्र गति से आगे बढ़ा जा रहा है, इसी से सांस्कृतिक चेतना के जागरण की बात उन्होंने स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न रूपों में उठाई है। "इस चेतनावाद को व्यापक धरातल पर लागू करने के अतिरिक्त पंत जी ने अपनी रचनाओं में व्यक्ति के विकास पर भी ध्यान दिया है। ऐसा चेतनावाद व्यक्ति की साधना के अन्तर्गत आता है। चेतना के विकसित होते ही साधक का हृदय दिव्य सौन्दर्य, दिव्य माधुर्य और दिव्य आनन्द से परिपूरित हो फूटता है, उसमें दिव्य पुरुष निवास करने लगता है।"—'मानव'

यथा :—

(क) 'यहाँ तो झरते निर्झर,
स्वर्ण किरणों के निर्झर,
स्वर्ग सुषमा के निर्झर!'

(ख) 'सजल मानस में मेरे,
अप्सरी कैसे एरे!' —स्वर्णधूलि

परन्तु जैसा हम पीछे कई स्थानों पर देख चुके हैं उनकी सभी प्रकार की धारणाएँ–विरोधी पर फिर भी संगत–एक व्यवस्थित विचारधारा के अनुशासन में चलती हैं। दो विरोधी भावनाओं को एकांगी घोषित करते हुए, सत्य को वे उन दोनों को वे अपने में समेट कर भी उससे परे बतलाते हैं।

यही उनकी मौलिकता भी है। भौतिकवादियों और अध्यात्मवादियों दोनों से वे कहते हैं—

"तुम भाप उन्हें कहते हँस कर,
वे तुम को मिट्टी का ढेला!
वे उड़ सकते, तुम अड़ सकते
जीवन तुम दोनों का मेला!
फिर भी यदि जड़ता तुमको प्रिय,
उनको चेतनता; दुख नितान्त,
है सत्य एक,—जो जड़ चेतन,
क्षर, अक्षर, परम, अनन्त सांत!" —'उत्तरा'

लोकोत्तर विकास में अन्तः चेतना का पक्ष भी विकसित करना होगा। "ऊर्ध्व मनुज बनना महान् है", "बहिरंतर जीवन विकास की जीवित दर्पण" आदि पंक्तियाँ इसी का संकेत करती हैं। मनुष्य को आत्माभिमुख होना है, धरती की मान्यताओं को आदर्श तक बढ़ा ले चलना है—

"आज मज्ज के ऊपर उठ,
औ' भीतर से हो विस्तृत।
नव्य चेतना से जग जीवन,
को करना है दीपित!"

तभी हमारी समाज, जगत् सम्बन्धी मान्यताएँ ठीक बैठेंगी। इस अध्यात्म चेतना का मूल तत्व है समन्वय—व्यष्टि और समष्टि अर्थात् ऊर्ध्व विकास और समदिक विकास का समन्वय, बहिरन्तर अर्थात् भौतिक और आध्यात्मिक जीवन का समन्वय—जिसे पाश्चात्य दर्शन में विज्ञान और ज्ञान, और प्राच्य दर्शन में अविद्या (भौतिक ज्ञान) और विद्या (ब्रह्म ज्ञान) कहा गया है—

"ब्रह्म ज्ञान रे विद्या, भूतों का एकत्व समन्वय,
भौतिक ज्ञान अविद्या, बहुमुख एक सत्य का परिचय।

आज जगत में उभय रूप तम में गिरने वाले जन,
ज्योति-केतु ऋषि-दृष्टि करे उन दोनों का संचालन।
बहिरन्तर के सत्यों का जग जीवन में कर परिणय,
ऐहिक आत्मिक वैभव से जन मंगल हो निःसंशय।"

यही मानव का देवत्व है जिसमें कि जीवन के स्वर्णिम वैभव पर आत्मा का अवतरण प्रतिष्ठित है; इसी के आधार पर विश्व संस्कृति की स्थापना हो सकती है जो इस युग की समस्याओं का एकमात्र समाधान है। आज के द्रोहरत-मानव की यही मुक्ति है और यह समाधान युग का सामयिक सत्य नहीं है। युग युग का शाश्वत् सत्य है। मानव जीवन की चिरन्तन समस्या का चिरन्तन समाधान है। आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व हमारे उपनिषद् इसकी घोषणा कर चुके हैं :—

'अंधः तमः प्रविशन्ति ये अविद्यामुपासते।
ततो भूय इव तमो य अविद्यायां रतः ॥
विद्यां चाविद्यां च यस्त द्वेदो भयं सह।
अविद्याया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृत मश्नुते ॥'

"यह कोई नवीन दर्शन नहीं है, शास्त्रीय शब्दावली में यह भारतीय अद्वैतवाद की पीठिका पर यूरोप के मानववाद की प्रतिष्ठा है जो आज से कुछ दिन पूर्व कवीन्द्र रवीन्द्र कर चुके थे। वैसे तो अद्वैतवाद और मानववाद दो विशिष्ट दर्शन प्रतीत होते हैं। एक पूर्व का, दूसरा पश्चिम का है, एक प्राचीन दूसरा नवीन है। इस प्रकार की धारणा कुछ मन में होती है। परन्तु तात्विक विश्लेषण करने पर मानववाद अद्वैतवाद का ही एक प्रोद्भास मात्र है। अद्वैतवाद का मूल आधार है अनेकता में एकता का ज्ञान, अर्थात् यह ज्ञान कि विश्व की प्रतीयमान अनेकता मिथ्या है, उसमें अनुस्यत एकता (एक तत्व) ही सत्य है। एकान्त व्यक्तिगत साधना के क्षेत्र में तो साधक उस एकता से सीधा साक्षात्कार करने के प्रयत्न में अनेकता को मिथ्या मानकर उसकी ओर से सर्वथा पराङ्मुख हो गया। परन्तु जब वह सामाजिक दृष्टिकोण लेकर साधना से अग्रसर हुआ तो उसने अनेकता को मिथ्या नहीं

माना—वरन् इस अनेकता की धारणा को मिथ्या माना।"—डा० नगेन्द्र। मानव जगत में राजा रंक, धनी-निर्धन, ब्राह्मण और शूद्र आधुनिक शब्दावली में जाति, वर्ण, वर्ग आदि का भेद भ्रांति है। सभी मानव समान हैं और उस परम शक्ति का प्रतिबिम्ब होने के कारण मूलतः श्रेष्ठ हैं। कबीर और उनके सहयोगी सन्तों ने इसी आध्यात्मिक मानववाद का अपने जीवन और काव्य में प्रतिपादन किया था। आधुनिक युग कवीन्द्र रवीन्द्रजी ने पश्चिम की मानववादी विचार धारा से भी प्रभाव ग्रहण कर इसी को नवीन रूप में प्रस्तुत करते हुए अपने विश्व बन्धुत्व सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। रवीन्द्र जी का यही विश्व बन्धुत्व का सिद्धान्त पंत जी में विश्व-संस्कृति बन गया है :—

'हमें विश्व संस्कृति रे, भू पर करानी आज प्रतिष्ठित,
मनुष्यत्व के नव द्रव्यों से मानव उर कर निर्मित।'

रवीन्द्र जी पर जहाँ पूर्ववर्ती मानववादी दार्शनिकों का प्रभाव था, पंतजी पर वहाँ परवर्ती मनोवैज्ञानिकों एवम् मनोविश्लेषकों का प्रभाव है। इसलिये उन्होंने मानव-एकता की साधना के लिये आत्म संस्कार को साधना माना है—

'मानवीय एकता जातिगत तन में करनी स्थापित,
मनः स्वर्ग की किरणों से मानव मुखश्री कर मंडित।'

यह 'मनः स्वर्ग' आत्म संस्कार (Sublimation) का ही काव्यमय नाम है। पंत जी की इस जीवन दर्शन की ओर प्रारम्भ से ही प्रवृत्ति रही है। ज्योत्स्ना जिसमें कि उन्होंने पहली बार अपने विचारों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति की है, मानववाद की सबल उद्घोषणा है। युगान्त में कवि ने इसमें आध्यात्मिक रंग देना आरम्भ किया था, परन्तु 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में मार्क्स दर्शन के प्रभाववश उसकी चिन्तन प्रवृत्ति बहुत कुछ बहिर्मुखी हो जाने से इस चिंताधारा का स्वाभाविक विकास क्रम टूट गया। अन्त में सन् १६४४ की अस्वस्थता ने उसे पुनः अन्तर्मुख चिन्तन पर बाध्य किया और 'स्वर्ण धूलि' तथा 'स्वर्ण किरण' में उपर्युक्त चिन्ताधारा अपनी सहज परिणति को प्राप्त हो गई।

उनकी कविताओं में यह दर्शन कोई नवीन वस्तु नहीं है, प्रत्युत एक परम्परा का विकास है। 'ज्योत्स्ना' काल में ऐसे अनेक विचार व्यक्त किये गये हैं। स्वयं पंत जी का कथन है कि 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचनाएँ एक तरफ और 'स्वर्णधूलि' की रचनाएँ दूसरी तरफ परस्पर विरोधी, विभिन्न विचारों की वाणी नहीं देती। पहले मार्क्सवादी विचारधारा प्रधान है जो भौतिकवादी या पदार्थ संसम्बद्ध है, बाद में अन्तर्मुखी अध्यात्मवादी विचार-धारा—जो मानव मन की अन्तश्चेतना से संबंध रखती है। यह जान लेने पर कि विकास के ये दो पहलू हैं, पंत जी की मान्यताओं को हृदयङ्गम करने में कोई कठिनाई नहीं होती।

जिस समन्वय का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं, उसी से सम्बद्ध जीवन दर्शन की दूसरी मान्यता है अंतः संगठन की जिसे वे "सांस्कृतिक संचरण" के नाम से पुकारते है। वे कहते हैं—"हमें विश्व संस्कृति रे भू पर करनी आज प्रतिष्ठित।" मानव के आन्तरिक विकास के लिए सांस्कृतिक जागरण का होना अनिवार्य है। पंत जी के शब्दों में "ऐसा समन्वय जो कोरा बौद्धिक ही न हो किन्तु जिसमें जीवन, मन, चेतना के सभी स्तरों की प्रेरणाएँ सजीव सामजस्य ग्रहण कर सकें। जिसमें बहिरंतर के विरोध एक सक्रिय मानवीय संतुलन से बँध सकें।" (गद्य पद्य)

संस्कृति शब्द की भी व्याख्या उन्होंने 'उत्तरा' की भूमिका में की है। वह न तो राजनीति की भाँति समतल है और न हीं अध्यात्म की भाँति ऊर्ध्व। "वह इन दोनों का मध्यवर्ती पथ है जिसमें दोनों के पोषक तथा प्राणप्रद तत्वों के बहिरंतर का वैभव मानवीय व्यक्तित्व की गरिमा धारण कर लेता है। अतएव संस्कृति को हमें अपने हृदय की शिराओं में बहने वाला मनुष्यत्व का रुधिर कहना चाहिये।" इस प्रकार पंत जी का दर्शन है भौतिक तथा आत्मिक संचरणों का स्थायी समन्वय जिसके द्वारा सांस्कृतिक चेतना तथा उत्थान हो सकता है। और यही सांस्कृतिक उत्थान मानव कल्याण के लिए अनिवार्य भी है। 'उत्तरा' में कवि ने जीवन की क्रांति के आन्तरिक

पक्ष पर भी प्रकाश डाला है। पूर्ववर्ती कविता में व्यक्तिरूपी 'जीर्णपत्र' के 'जीवन डाली' से झर जाने की चर्चा थी और अब युग की चर्चा है :—

"दारुण मेघ घटा घहराई
युग संध्या गहराई।
आज धरा प्रांगण पर भीषण,
भूल रही परछाई।"

और फिर कवि नई सृष्टि के गीत गाने लगता है :—

"मैं मनः क्षितिज के पार मौन शाश्वत् की।
प्रज्वलित भूमि का ज्योति वह बन आता
मैं नव मानवता का संदेश सुनाता..........।"

इस प्रकार पंत जी ने यथार्थवाद के साथ आदर्शवाद का मेल कराया है, आन्तरिक चेतना के साथ बाह्य परिस्थितियों का सामंजस्य कराया है तथा भौतिकवाद के साथ अध्यात्म चिंतन का समन्वय स्थापित किया है। इसी को हम उनका 'नव मानववाद' तथा नवीन जीवन के प्रति दृष्टिकोण कहते हैं। इसमें पाश्चात्य सभ्यता का भारतीय अध्यात्मिक उन्नति के साथ समझौता है। यही समन्वय नवीन चेतना है तथा मानव के लिये कल्याणकारी भी है।



पंतजी पर अरविन्द के दर्शन का प्रभाव

* * *

पंत जी ने 'वीणा' से 'उत्तरा' और 'युगान्तर' तक आते-आते एक बहुत लम्बे फाँट को लाँघा है। पंत जी सदैव से ही चिन्तनशील और अध्ययन प्रिय प्राणी रहे हैं। उन्होंने भारतीय दर्शनों तथा उपनिषदों का अध्ययन किया है तथा विदेशी साहित्यकारों की कृतियाँ पढ़ी हैं। उनकी काव्यधारा में कई मोड़ आये हैं और प्रत्येक मोड़ पर एक नवीन भावधारा का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। उनका हृदय बहुत ही विशाल है तथा उन्हें किसी भी प्रकार की विचार धारा से—चाहे वह देशीय है और चाहे वह विदेशी है—कभी भी विरोध नहीं रहा है, प्रत्युत उन्होंने तो किसी न किसी रूप में उनके प्रभावों को ग्रहण ही किया है। पंतजी पर धार्मिक प्रवृत्तियों का प्रभाव परोक्ष रूप से पड़ चुका था जबकि वे बहुत छोटे से थे, क्योंकि उनके पिता धार्मिक वृत्ति के थे। बाल्यकाल से ही उनका साधु-सन्तों के प्रति अनुराग स्पष्ट है। छोटी अवस्था में ही उन्होंने रामायण, महाभारत, गीता आदि का अध्ययन कर लिया था। तर्क दर्शन में उनकी विशेष रुचि आगे चल कर जगी और फलस्वरूप उन्होंने भारतीय दर्शन और उपनिषद् का गम्भीर अध्ययन किया। वे अपने युग के प्रायः सभी दार्शनिकों से प्रभावित हुए हैं, जिसका वर्णन उन्होंने 'आधुनिक कवि' की भूमिका में किया है। स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्ययन ने उनके प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान में अभिवृद्धि की। 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में इस विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। भारतीय दर्शन के अध्ययन ने उनकी अन्तः चेतना को

झकझोर डाला। जैसा कि वे स्वयं स्वीकार करते हैं—'........दर्शन शास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे राग तत्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रभाव की दिशा बदल दी। मेरी निजी इच्छाओं के संसार में कुछ समय तक नैराश्य और उदासीनता छा गई। ...... किन्तु दर्शन का अध्ययन विश्लेषण की पैनी धार से, जहाँ जीवन के नाम, रूप, गुण के छिलके उतार कर मन को शून्य की परिधि में भटकाता है वहाँ वह छिलके के फल के रस की तरह व्याप्त एक ऐसी सूक्ष्म संश्लेषणात्मक सत्य के आलोक से भी हृदय को स्पर्श करता है कि उसकी सर्वातिशयता चित्र को अलौकिक आनन्द से मुग्ध और विस्मित कर देती है। भारतीय दर्शन ने मेरे मन को अस्थिर कर दिया।' वस्तुतः युग के दार्शनिकों ने ही पंत की दार्शनिक विचार धाराओं को पुष्ट बनाया। बाद में चलकर उन्होंने अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों की रचनाओं का अध्ययन किया। उन्होंने सदैव ही पूर्व और पश्चिम की विचार धाराओं का मेल कराने का प्रयास किया है। हम संक्षिप्त रूप में कह सकते हैं कि 'वीणा-पल्लव' काल की रचनाओं में कवीन्द्र रवीन्द्र तथा स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है तथा 'युगान्त' और उसके बाद की रचनाओं पर गांधीजी के दर्शन का प्रभाव झलकता है। 'ग्राम्या' की रचना के पश्चात् कवि सात लम्बे वर्षों तक अपनी बीमारी के कारण मौन रहा। इस बीच में कोई रचना हमारे सामने नहीं आती है, पर यह मानना होगा कि इस समय में भी उनके हृदय में मंथन चलता रहा। कुछ स्वस्थ होने पर वे पांडचेरी के अरविन्द में चले गये जिसके फलस्वरूप उनके दार्शनिक चिंतन में विशेष परिवर्तन हुआ। प्रायः पूर्व और पाश्चात्य का कोई भी दर्शन उनके हृदय के द्वन्द्व को शान्त नहीं कर सका तथा प्रत्येक दर्शन में उन्हें कोई न कोई अभाव खटकता ही रहा। किसी भी दर्शन में उन्हें परिपूर्ण एवं सन्तुलित अन्तर्दृष्टि प्राप्त न हो सकी, और सदैव उनकी आत्मा भटकती ही रही, पर अरविन्द दर्शन को पाकर कवि को बहुत सन्तोष मिला और उनके अभाव की पूर्ति भी हो गई। अतः सन् १९४७ के उपरान्त की रचनाओं में श्री अरविन्द जी का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। चेतना के जिस विकास का धुँधला स्वप्न और पृथ्वी

पर स्वर्ग लाने की जो कल्पना पंत जी कर रहे थे, वह अरविन्द के दर्शन के अध्ययन के पश्चात् पूरी होती दीख पड़ी। पंत जी ने अपनी रचनाओं में मुक्त हृदय से अरविन्द दर्शन का अनुवाद किया। 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' और 'युगान्तर' की कई रचनाओं में अरविन्द के प्रति अपनी भक्ति भावना को प्रदर्शित किया है। उन्हें पंत जी ने 'योगेश्वर', चेतना का दिव्य उत्पल, 'अति मानव', 'मानव ईश्वर', 'कवि ऋषि' और दिव्य जीवन के दूत आदि कहा है। 'उत्तरा' की भूमिका में उन्होंने अरविंद के प्रभाव को स्वीकार किया है। वे लिखते हैं :—"श्री अरविन्द के प्रति मेरी कुछ विनम्र रचनाएँ, भेंट रूप में, 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' तथा 'युगपथ' में पाठकों को मिलेंगी। श्री अरविन्द को मैं इस युग की अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ। उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतल स्पर्शी व्यक्तित्व, जिनके जीवन दर्शन में अध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि अग्राह्य सत्व नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है, मुझे दूसरा कहीं देखने को नहीं मिला। विश्व-कल्याण के लिये मैं श्री अरविन्द की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणु शक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। उनके दान के बिना शायद भूत विज्ञान का बड़े से बड़ा दान भी जीवन्मृत मानव जाति के भविष्य के लिये आत्म पराजय तथा अशान्ति ही का वाहक बन जाता।" 'युगान्तर', 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण धूलि' तथा 'उत्तरा' में कवि ने अरविन्द के प्रति अपनी श्रद्धा भावना को व्यक्त किया है। यथा :—

"श्री अरविन्द, सभक्ति प्रणाम !
विश्वात्मा के नव विकास तुम,
परम चेतना के प्रकाश तुम,
ज्ञान भक्ति श्री के विलास तुम,
पूर्ण प्रकाम,
सकर्म प्रणाम !"

—स्वर्ण धूलि

तथा 'उत्तरा' में भी 'मानव ईश्वर' शीर्षक में कवि ने इसी प्रकार अरविन्द को सम्बोधित करके कहा है :—

"नव जीवन शोभा के ईश्वर
अमर प्रीति के तुम वर,
स्वर्ण शुभ्र चेतना मुकुल से
खिलते उर में सुन्दर !
शान्त अभय हो जाता अन्तर
ध्यान तुम्हारा स्नेह मौनधर,
श्रद्धा पावन हो उठता मन
हर्ष प्रणत चरणों पर !"

इस प्रकार पंत जी की उत्तर कालीन रचनाओं में जो नवीन दार्शनिकता एवम् नवीन आदर्श के दर्शन होते हैं, उसका कारण योगीराज अरविन्द का प्रभाव ही है। जब से पंत जी उनके सम्पर्क में आये उनकी भावधारा में ही परिवर्तन हो गया और जो अभी तक कवि को जीवन और जगत की समस्याओं को सुलझाने में एक अभाव खटकता था, वह भी पूरित हो गया। उन्होंने सभी भौतिक समस्याओं को नवीन दृष्टि से देखना आरम्भ कर दिया और भौतिकवाद से अध्यात्मवाद का समन्वय स्थापित करके जगत की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयास किया।

उन्होंने एक आध्यात्मिक भविष्य की कल्पना की है जिसका आधार है मनोवैज्ञानिक। उनका यह नवीन आध्यात्मिक दर्शन धर्म बन्धनों तथा साम्प्रदायिक उलझनों से स्वतन्त्र है। उसमें मानव हृदय की विभूतियों का चरम विकास है। इस प्रकार उन्होंने जिस आध्यात्मिक चेतना की कल्पना की है, उसमें भौतिकता का परिष्कार है, उसका तिरस्कार नहीं; उन्नयन है, उसका दमन नहीं। यथा :—

"आज जगत में उभय रूप तम में गिरने वाले जन,
ज्योति केतु ऋषि दृष्टि करे उन दोनों का संचालन !

बहिरन्तर की सत्यों का जग जीवन में कर परिणय,
ऐहिक आत्मिक वैभव से जन मंगल हो निःसंशय !"

क्योंकि उनको तो विश्वास है तथा उस विश्वास की पूर्ति के लिये वे लालायित भी हैं, यथा :—

'वही सत्य कर सकता मानव जीवन का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गम्भीर चिरन्तन ।'

कवि तो सम्पूर्ण विश्व कल्याण की भावना को हृदय में संजाये हुए है। विश्व का कल्याण आध्यात्मिक चेतना पर ही आधारित है। वह सांस्कृतिक चेतना में विश्वास करते हैं। स्वयं पंत जी ने इसी तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है—'आधुनिक भौतिकवाद हमें, मध्य युगीन भारतीय दार्शनिकों के आत्मवाद की तरह, अपने युग के लिये एकांगी तथा अधूरा लगता है। मानव जीवन के रूप को अखण्डनीय ही मानना पड़ता है, उसके टुकड़े नहीं किए जा सकते। सांस्कृतिक संचरण न राजनीति की तरह सबल संचरण है और न धर्म तथा अध्यात्म की तरह ऊर्ध्व संचरण। वह उन दोनों का मध्यवर्ती पंथ है।' इस प्रकार कवि ने आत्म सत्य के सहारे वस्तु सत्य और भाव सत्य का समन्वय कराया है। जैसे—

'नहीं दीखता मुझे जनों का भूत भ्रांति में मंगल,
बाह्य क्रांति से प्रबल हृदय में क्रांति चल रही प्रतिपल !
मध्य वर्ग की वैभव तन्द्रा के स्वप्नों से जग कर
अभिनव लोक सत्य को हमको स्थापित करना भू पर !
'युग युग के जीवन से औ' युग जीवन से उत्सर्जित
सूक्ष्म चेतना में मनुष्य की, सत्य हो रहा विकसित !
आज मनुज को ऊपर उठ औ' भीतर से हो विस्तृत
नव्य चेतना से जग जीवन को करना है दीपित !'

और आगे 'स्वर्णधूलि' में 'सन्यासी के गीत' रचना में आत्मा के सत्य को स्वीकार किया है। यह मैं पूर्ण स्पष्ट कर चुका हूँ कि कवि बहिर्जगत का विस्तार और अन्तर्जीवन का विकास चाहता है, जिसकी अभिव्यक्ति पंत जी ने 'उत्तरा' में इस प्रकार से की है :—

'बदल रहा अब स्थूल धरातल,
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,
विस्तृत होता बहिर्जगत् अब
विस्तृत अंतर्जीवन अभिमत।'

उनकी कल्पना तो यहाँ तक बढ़ गई है कि वे धरती से स्वर्ग का मेल कराते दीख पड़ते हैं। पर वास्तव में इस भावना के पार्श्व में भी उनका वही अरविंद दर्शन से प्रभावित दार्शनिक चिंतन ही है जिसके द्वारा वह जड़ और चेतन, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय कराना चाहते हैं। यथा:—

"आकाश झुक रही धरती पर
बरसा प्रकाश के उर्वर कण,
धरती उसके उर में बुनती
छाया का सतरंग सम्मोहन!
हो रहा स्वर्ग से धरणी का
जड़ का चेतन से रहस मिलन
भू स्वर्ग एक हो रहे शनैः
सुर गण नर तन करते धारण!"

यदि उनकी कल्पना पूरी हो जाय तो वास्तव में, जैसा कि वे कहते हैं, मानव देव तुल्य ही हो जाय और फिर यह धरा निश्चय ही स्वर्ग बन जाए। मेरी अपनी दृष्टि में तो यह आदर्श कल्पना गांधी जी के 'राम राज्य' की कल्पना से भी आगे बढ़ गई है। देखने में यह बात ठीक भी है क्योंकि पंत जी गांधी दर्शन से प्रभावित अवश्य थे, पर उससे पूरी तरह से संतुष्ट नहीं थे और उन्होंने इसी से अरविंद दर्शन का आँचल पकड़ा जहाँ उन्हें पूर्ण

आध्यात्मिक तथा मानव दर्शन की झाँकी मिली। यही अरविंद दर्शन उनके जीवन की साधना और विश्वास बन गया है।

इसी विश्वास के सहारे तो उन्होंने 'उत्तरा' में कहा है :—

"विश्व मन: संगठन हो रहा विकसित,
जन जीवन संचरण ऊर्ध्व, भूविस्तृत,
नव्य चेतना केतु फहराता,
सत रंग द्रवित दिगंतर,
आदर्शों के पोत बढ़ रहे,
पार अतल भवसागर!
स्वर्ग भूमि हो भू पर भारत,
जन मन धरणी सुन्दर,
अन्तर ऐश्वर्यों से मंडित
मानव हो देवोत्तर!"

इस तरह हमने देखा है कि 'ग्राम्या' के बाद की रचनाएँ—'स्वर्णकिरण' 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा' तथा 'युगान्तर'—सभी अरविंद दर्शन से प्रभावित हैं। पंत जी का नव-मानववाद, भौतिकता का अध्यात्म से समन्वय, जड़ का चेतन से सम्मिश्रण, पृथ्वी पर स्वर्ग उतारने की कल्पना, आत्म सत्य इत्यादि सभी भावनाएँ अरविंद दर्शन के प्रभाव का ही फल हैं। यहाँ उनकी भावधारा धर्म बंधनों को तोड़कर आत्मा की चेतनता की साधना में संलग्न दीख पड़ती है। साथ में ईश्वर पर भी आस्था, उनकी निरन्तर बनी रही है। यदि यह उनकी सच्ची कल्पना है तो यह रामराज्य से भी कहीं अधिक बढ़ी चढ़ी है।



पंत का भाव जगत्



पंत जी अध्ययनशील कवि हैं। उनकी अपनी विचारधारा है। उनका भाव जगत् विभिन्न परिवर्तनों के रहते हुए भी, एक ही समरसता, एक ही सामञ्जस्य की भावना लिये हुए है। उनकी भावधारा पर समय समय पर गहरे प्रभाव पड़े हैं तथा इन्हीं प्रभावों वश उनकी काव्य धारा भी भिन्न-भिन्न विचारों को सम्भाले हुए बही है। इस सम्बन्ध में हमें यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि प्रत्येक कवि अथवा लेखक की कृतियों के बहिरंग तथा अन्तरंग पर उसके जीवन सम्बन्धी भौतिक, सामाजिक तथा साहित्यिक वातावरण का अवश्य ही प्रभाव पड़ता है। पंत जी अपनी साहित्यिक साधना में दो बातों से विशेष रूप से प्रभावित दीख पड़ते हैं।—एक तो अपने भौतिक वातावरण से और दूसरे अपने साहित्यिक अध्ययन से। यह हम पहले ही बता चुके हैं कि उनका लालन पालन प्रकृति की रम्य गोद में हुआ था, अतः प्राकृतिक सौन्दर्य का उनके काव्य-जीवन पर प्रभाव अवश्यम्भावी था। पंत जी की रचनाओं पर दूसरा प्रभाव उनके अध्ययन एवम् अनुशीलन का पड़ा है। इस सम्बन्ध में स्वयं पंत जी कहते हैं :—"स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्ययन से, प्रकृति प्रेम के साथ ही, मेरे प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास में भी अभिवृद्धि हुई।" इससे स्पष्ट हो जाता है कि वह दार्शनिक क्षेत्र में स्वामी विवेकानन्द तथा स्वामी रामतीर्थ के वैदान्तिक सिद्धान्तों से अधिक प्रभावित हुए और 'परिवर्तन' की रचना उन्होंने उन्हीं के प्रभावों के अन्तर्गत की। वस्तुतः भारतीय दर्शन तथा

उपनिषदों का उनके जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि 'पल्लव' में हमें कवि का मानसिक संघर्ष और हार्दिकता अधिक मिलती है। इसके बाद की उनकी रचनाएँ आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा से भरी हुई हैं। साहित्यिक क्षेत्र में कलावाद के प्रभाव से जिस सौन्दर्यवाद का चलन योरुप के काव्य-क्षेत्र में हुआ उसका भी प्रभाव पंत के भाव जगत पर पड़ा। उन्होंने स्पष्ट रूप से कई स्थानों पर सौन्दर्य-चयन को अपने जीवन की साधना माना है। अन्य बातों में वह अंग्रेजी कवियों— मुख्यतः शैली, कीट्स, वर्डसवर्थ और टेनिसन से विशेष रूप से प्रभावित हुए हैं। इस सम्बन्ध में स्वयं पंत जी का कथन है—"इन कवियों ने मुझे मशीन युग का सौन्दर्य बोध और मध्य वर्गीय संस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है। रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीन युग की, सौन्दर्य कल्पना से ही परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का 'स्लोगन' (Slogan) भी रहा है। इस प्रकार मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञता पूर्वक स्वीकार करता हूँ।" पंत जी अपने युग की प्रगति तथा उसकी राजनीतिक परिस्थितियों और आवश्यकताओं से भी प्रभावित हुए हैं। इस प्रकार पंत जी की भाव धारा पर अनेकों प्रकार के प्रभाव—सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक आदि, परिलक्षित होते हैं। कवि की आत्मा में एक चेतना है; एक कुतूहल है जिसे अभिव्यक्त करने के लिये उसे अनेकों भावधाराओं में से होकर गुजरना पड़ा है। बाह्य परिस्थितियों तथा विचारों ने पंत जी की काव्यधारा को स्थान स्थान पर मोड़ दिये हैं। कवि अपने को संसार से पूर्णतः पृथक नहीं कर सकता, उसकी भूमि पर उसे पग रखना ही पड़ता है। अतः काव्य और कलाएँ व्यक्ति का विक्षिप्त क्रन्दन नहीं, मानसिक भूमि पर सजग-योगदान है। काडवैल के विचारों में—

"In poetry itself this takes the form of man entering into emotional communion with his fellowmen by retiring into himself. Hence when the bourgeoise poet supposes that he expresses his individuality

and flies from reality by entering into a world of art in his inmost soul, he is infact merely passing from the social world of rational reality to the social world of emotional commonness ?"

—(Illusion & Reality)

"काव्य में व्यक्ति अपनी परिवृत्ति के साथ अनुभूति की साधारण भाव भूमि पर अन्तर की ओर लौटता है। इसीलिये जब पूँजीवादी कवि कल्पना करता है कि वह अपनी व्यक्तिगत अनुभूति की अभिव्यक्ति कर रहा है और इस दृश्य जगत से कहीं दूर सौन्दर्य और कला के अखिलानन्द आकाश में अपने पंख चुंडला रहा है, उस समय वह वास्तव में, केवल सामाजिक यथार्थ की वितर्कात्मिक (बौद्धिक) भूमि से सामाजिक अनुभूति की भाव-भूमि में प्रवेश करता है।" हमारी भाव-स्थिति, चाहे कितनी भी सूक्ष्म और कोमल क्यों न हो, यदि वह सामाजिक चेतना न होती तो, हमें स्वभावतः उसके संघर्ष में भी आना होता, क्योंकि हम निरन्तर प्रकृति से संघर्ष कर रहे हैं, और तब उसका काव्य का विषय होना असम्भव हो जाता। तो काव्य क्या है ?—हमें अपनी इस विवेचना के पश्चात् देखना चाहिये। महादेवी जी के विचार में "सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य उसका साधन है।" किन्तु स्पष्ट ही काव्य का यह लक्षण न होकर विशेषण है। अतः इस वाक्य को निरापत्तिक बनाने के लिये हम इसे इस प्रकार रख देते हैं—"सत्योन्मुख सौन्दर्य काव्य है।" इसे और भी ठीक शब्दों में रखते हुए हम कहेंगे "सत्योन्मुख सौन्दर्यानुभूति की शब्दात्मक अभिव्यक्ति काव्य है।" प्रत्येक साहित्यिक की एक अपनी विचारधारा और एक अपनी सूझ होती है जिसके अनुसार वह साहित्य में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेता है। पंत जी की भी अपनी एक भावधारा है, एक अपनी सूझ है। ईश्वर, जीव, प्रकृति और इस द्वैत के अन्तर्गत आने वाला जीवन, प्रकृति, दुःख सुख आदि गूढ़तम समस्याओं के प्रति जिस प्रकार अन्य कवियों ने अपनी अपनी धारणा और विश्वास के अनुकूल विचार प्रकट किये हैं उसी प्रकार पंत ने भी इन समस्याओं पर विचार किया है।

पंत जी मुख्यतः सौन्दर्य के कवि हैं--प्रकृति सौन्दर्य के और उसके बाद नारी सौन्दर्य एवं उस सौन्दर्य से, उत्थापित आकर्षण भावना के। प्रकृति पंत की सौन्दर्य दृष्टि का सहज आलम्बन है, उनकी वाणी का सहज विषय। यह बात महादेवी जी तथा प्रसाद जी के सम्बन्ध में इतनी सत्य नहीं है। महादेवी ने प्रकृति का उपयोग प्रायः आत्म निष्ठ भावनाओं को साकार करने में किया है, और वहाँ प्रयुक्त सामग्री अपेक्षाकृत परिमित है। प्रसाद जी भी प्रकृति की उपस्थिति में उस सहज उल्लास का अनुभव नहीं करते जो पंत की भाव चेतना की विशेषता है। वयः सन्धि में भावुक हृदय बाह्य-सौन्दर्य की झलक मात्र से आलोकित हो उठता है, 'पल्लव' और 'गुञ्जन' में प्रायः आपको इस प्रकार की झलकें ही मिलती हैं। सूक्ष्म विश्लेष्णात्मक वर्णन की प्रवृत्ति वहाँ नहीं है, वहाँ बाह्य का निरीक्षण अन्तर के उल्लास से मिश्रित और निरूपित है। महादेवी और प्रसाद की भाँति पंत जी अपने पाठकों को गुम्फन की अनावश्यक सूक्ष्मता से नहीं थकाते हैं। 'पल्लव' तक पंत कल्पनाजीवी कवि और चतुर शब्द शिल्पी के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं, पर 'गुञ्जन' में आकर पंत का भावुक कवि अधिक संयत हो गया है। यों तो पंत जी में चिंतन-प्रवृत्ति का आरम्भ 'परिवर्तन' शीर्षक कविता से ही पायी थी जिसके फलस्वरूप गुञ्जन से हम कवि की रचना का युगान्तर पाते हैं। 'पल्लव' की अन्तिम कविता में कवि ने अपनी बाल कल्पनाओं से बिदाई ले ली है, जैसा कि कवि ने लिखा है—

'स्वस्ति जीवन के छाया काल।
सुप्त स्वप्नों के सजग सकाल।
मूक मानस के मुखर मराल।
स्वस्ति, मेरे कवि बाल!
तुम्हारा मानस था सोच्छ्वास,
अलस पलकों में स्वप्न-विलास,
आँसुओं की आँखों में प्यास,
गिरा में था मधुमास। —'पल्लव'

कवि की सौन्दर्य भावना की प्रधान विशेषता है—कोमलता, प्रकृति एवं नारी की सुकुमार कोमल छवियों से उन्हें सहज ममत्व है।

'अरे ये पल्लव बाल,'
'अरी सलिल की लोल हिलोर',
"सिखा दो ना, हे मधुप कुमारि,
मुझे भी अपने मीठे गान।"

आदि पंक्तियाँ उनके हृदय की कोमल भावनाओं की साक्षी हैं। नारी-रूप के वर्णन में भी वह कोमलता सर्वत्र प्रतिफलित है :—

'नील रेशमी तम का कोमल खोल लोल कचभार' इत्यादि।

'ज्योत्स्ना' में सन्ध्या प्रकाश को जहाँ तहाँ बड़े ही कोमल स्पर्शों से चित्रित किया गया है। 'प्रिये प्राणों की प्राण, आज रहने दो यह गृह काज' आदि व्यञ्जनाएँ भी कवि की अपार कोमलता का परिचय देती हैं। पंत जी की दृष्टि प्रायः विश्व जगत् से कोमल छवियों—कोमल मधुर ध्वनियों, नव कोमल आलोक, कोमल स्पर्श, सुकुमार मिलन उल्लास आदि—का चयन करती है, किन्तु सृष्टि में केवल यही वस्तुएँ नहीं हैं। फलतः पन्त प्रकृत्या यथार्थ से झिझकते हैं और 'ज्योत्स्ना' के दृश्य विधानों तथा 'स्वीट पी' आदि का वर्णन करते हुए जन कोलाहल से दूर बँगलों में रहने वालों की 'एरिस्टोक्रेटिक' मनोवृत्ति का परिचय देते हैं। अवस्था-वृद्धि के साथ हमारी भावुकता में संयम आना चाहिए और हमारा यथार्थ का आग्रह बढ़ना चाहिए। कवि छायाजाल से बाहर निकल कर सुख-दुःख, जन्म मरण जैसे गहरे प्रश्नों पर विचार करने लगता है। प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण अधिक संयत हो जाता है। 'गुञ्जन' की कविताओं में कवि सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और जन्म मरण जैसे शाश्वत् विषयों पर विचार करता है। वह कल्पना के सत्य से आत्म चिंतन की ओर बढ़ा है। 'पल्लव' और 'गुञ्जन' के बीच ही कवि पर दैविक और दैहिक विपत्तियों का प्रकोप हुआ। इसी समय कवि दर्शन और उपनिषद् के अध्ययन की ओर झुका और जीवन के रहस्यों के अनुसंधान में प्रवृत्त हुआ। इसके साथ ही उनके कवि-जीवन की दिशा ही बदल गई। जन्म के मधुर

रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, बसंत के कुसुमित आवरण के अन्दर पतझर का अस्थि-पंजर !

"खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण !" आदि

कवि की जीव दृष्टि का मोह एक प्रकार से छूटने लगा और सहज जीवन व्यतीत करने की भावना में एक प्रकार का धक्का लगा। भारतीय दर्शन के अध्ययन ने कवि के मन को अस्थिर कर दिया।

"जग के उर्वर आँगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन,
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर है चिर-अव्यय चिर-नूतन !"

कवि ने अपने जीवन के प्रति एक नवीन आशा समन्वित दृष्टिकोण बनाया है तथा उसके आधार पर ईश्वर, जीव, प्रकृति, मुक्ति आदि विषयों पर विचार किया है। उन्हें भौतिक जगत के आदर्शों के प्रति विश्वास नहीं रह गया है। इसीलिए उन्होंने भारतीय आस्तिकता का आँचल दृढ़ता के साथ पकड़ा और अन्य कवियों के समान अपनी आस्तिकता को अभिव्यक्त करने में कवि को संकोच नहीं हुआ :—

'ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे।'

यहाँ पर यह कहना प्रासंगिक होगा कि पंत के जीवन संबंधी मर्मों एवं उनके विचारों को समझने के लिए 'ज्योत्स्ना' का अध्ययन अनिवार्य है। कवि द्वारा अभिव्यक्त 'गुञ्जन' के पद्यमय विचार, 'ज्योत्स्ना' के गद्य रूप में बिखरे पड़े हैं। "मनुष्य को यथार्थ प्रकाश की आवश्यकता है। इस अनादि और अनन्त जीवन पर अनन्त दृष्टिकोणों से प्रकाश डाला जा सकता है। ज्ञान विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है, विश्वास नहीं हो सकता। सरल, सुन्दर और उच्च आदर्शों पर ही विश्वास रख कर मनुष्य जाति सुख शान्ति का उपभोग कर सकती है, पशु से देवता बन सकती है।" इसी ईश्वरत्व पर विश्वास रख कर ही नव जीवन का निर्माण हो सकता है। कवि ने ईश्वर में तो विश्वास दिखाया है, पर उसके स्वरूप, स्थिति एवम् सत्ता के

सम्बन्ध में वह मौन है। ईश्वर की महत्ता के साथ पंत जी जीव की महत्ता भी स्वीकार करते हैं। उनके विचार में वह उसी सत्ता का—अज्ञात शक्ति का—प्रकाशमात्र है। इसी प्रकार प्रकृति भी सत्य है, क्योंकि वह भी ईश्वर का ही प्रतिबिम्ब है:—

शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास, हे जग जीवन के कर्णधार।"

पंत जी की दृष्टि में यह जगत उस अलौकिक छवि का प्रतिबिम्ब है, है, इसलिए यह भी सुन्दर और सत्य है। अपनी इसी धारणा के कारण वे विश्व प्रेमी हैं। उन्हें इस जगत की सभी वस्तुओं से प्रेम है:—

"प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर,
तृण, पशु, पक्षी, नर, सुर वर;
सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर!"

जगत से प्रेम होने के कारण पंत जी को जीवन से भी प्रेम है। उनके विचार से जीवन सत्य और सुन्दर है, परन्तु जीवन अपूर्ण है। उसमें कोलाहल है, द्वन्द्व है, संघर्ष है। पंत जी की दृष्टि में इसका कारण है कि मनुष्य मानव-जीवन का अर्थवाद की दृष्टि से तत्त्वावलोकन करता है। उन्हें भौतिकवाद पर विश्वास है पर वे उसमें लीन होना नहीं चाहते प्रत्युत वह आत्मवाद और भौतिकवाद के सुन्दर संयोजन से एक नवीन संस्कृति का उद्भव चाहते हैं जो अपूर्ण मानव जीवन को वास्तविक मानव जीवन बनाने में समर्थ हो सके। यह उसी दशा में सम्भव होगा जब मानव जीवन के अन्तर में प्रवेश करेगा। जीवन के अन्तर में प्रवेश करने का अर्थ है जीवन को सार रूप में ग्रहण करना, जीवन में आत्म विश्वास और स्वावलम्बन को जागरित करना। लेकिन मानव जीवन इतना सुन्दर नहीं है, जितना कवि सवझता है। मानव जीवन में चहुँओर द्वन्द्व मचा हुआ है। कवि के सम्मुख सुख दुख का प्रश्न है। मानव सुख दुख की परिधि से बाहर नहीं है:—

'सुख दुख न कोई सका भूल।'

पर जीवन की पूर्णता के लिए कवि नवीन मार्ग के अनुसंधान में निकल पड़ता है। जीवन की सार्थकता के लिए सुख और दुख का अनुपातत: मिश्रण अनिवार्य है और तभी जीवन आनंद मय एवम् शांति मय बन सकता है। उनका जो विश्वास है वह उन्हें वेदना की ओर झुकने का अधिक अवकाश नहीं देता। वह कहतेहैं :—

"हँस मुख से ही जीवन का पर हो सकता अभिवादन।"

वास्तव में मानव अपने कल्याण के लिए 'अति इच्छा' करता है, परन्तु उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति कहाँ हो पावेगी। यही असफलता जीवन का एक गुरुतम भार बन जाती है :—

'बढ़ने की इच्छा से
जाता जीवन से जीवन।'

पंत जी को तो दुख भी आवश्यक दिखाई देता है। बिना दुख के, उनका विश्वास है, सुख भी सब निस्सार होता है। यह उनकी सामञ्जस्य भावना ही है जो सदैव दुःख-सुख में सामञ्जस्य स्थापित करना चाहती है। 'ज्योत्स्ना' में पंत जी की कल्पना कहती है—"संसार की भौतिक कठिनाइयों से परास्त होकर, उसके दुखों से जर्जर होकर, मनुष्य की समस्त शक्ति इस समय केवल बाह्य-प्रकृति के अत्याचारों से मुक्ति पाने की ओर लगी है जिसके लिए उसने भूत विज्ञान की सृष्टि की है। मानव जीवन के बाह्य क्षेत्रों एवम् विभागों को संगठित एवम् सीमिति कर, अपने आन्तरिक जीवन के लिए उदासीन होकर, मनुष्य अपनी आत्मा के लिए नवीन कारा निर्मित कर रहा है।" कवि ने आन्तरिक जीवन की व्याख्या इस प्रकार की है :—

"आत्मा है सरिता के भी जिससे सरिता है सरिता,
जल जल है, लहर लहर रे, गति गति, सृति सृति चिर-भरिता।"

आत्मा जीवन का आधार स्तम्भ है और इसके विस्तार में ही परमानंद अन्तर्हित है। 'अहं ब्रह्म' की यही मूल साधना है। वास्तव में कवि की भावना

सर्ववाद (Pantheism) के अधिक निकट है। सर्ववाद के अन्तर्गत किसी ईश्वर विशेष की तो कल्पना नहीं होती, लेकिन समस्त जड़-चेतन में व्याप्त किसी सूक्ष्म विराट् चेतन सत्ता का अस्तित्व मान्य होता है। इसी चेतन्य सत्ता के आधार पर आत्मा के मूल्य का अंकन किया जाता है। इसी चिरन्तन सत्ता के सहारे कवि ने कल्पना की है कि मानव-जीवनाकाश में सुख दुःख अस्थिर प्रतीत होता है, परन्तु जीवन नित्य और चिरन्तन है। जीवन ही जो दुख सुख से ऊपर है, वह मन का एक मात्र अवलंबन है :—

"अस्थिर है जग का सुख दुख जीवन ही नित्य चिरंतन !
सुख दुख से ऊपर, मन का जीवन ही रे अवलम्बन !"

जीवन चिर स्थायी है और दोनों को समान रूप से अपने अन्दर स्थान दिए हुए है। कवि ने जीवन को इसी सूक्ष्म दृष्टि से ग्रहण किया है। वह दृढ़तापूर्वक कहता है :—

"जीवन की लहर लहर से हँस खेल, खेल रे नाविक !
जीवन के अन्तराल में नित बूड़-बूड़ रे भाविक !"

इस प्रकार आत्म चिन्तन की ऊर्मि में हम इतने तल्लीन हो जाते हैं कि उसकी प्रत्येक लहर प्रिय प्रतीत होती हैं। जीवन-युद्ध-स्थल में जो दौड़ है, उसमें जन्म-मरण का कोई विशेष स्थान नहीं। उस जन्म-मरण में ही जीवन की सार्थकता नहीं है। इसी पर एक अँग्रेज कवि ने लिखा है :—

Birth is not the beginning of life
Nor death is ending
Birth and death begin and end
Only a single chapter in life.

इस प्रकार प्रत्येक क्षण हम आनंदमय बनाये रखें, वस्तुतः सम्पूर्ण मानव जीवन की सार्थकता इसी में है :—

"महिमा के विशद जलधि में हैं छोटे छोटे से कण,
अणु से विकसित जग जीवन लघु अणु का गुरुतम साधन।"

हम लोगों ने अत्यधिक महत्त्वाकांक्षा के कारण अपने जीवन को विषाद-पूर्ण बना दिया है। छोटी-छोटी वस्तुओं के प्रति हमारी सहानुभूति का होना अनिवार्य है। यह कवि हृदय का स्पन्दन नहीं है, बल्कि विश्व जीवन की धड़कन है। इसके शब्द कवि द्वारा निर्मित हैं, परन्तु विचार तत्त्व-चिंतक हैं। 'पल्लव' का कवि जगत् को हास उल्लासमय न देखकर अपने अन्तः प्रदेश की सहानुभूति का प्रसार इस सन्तप्त जग में करता है। उसका सौन्दर्य सुरभित हृदय, दूसरे के प्रणय मधुरित कलित हृदय को देखकर रो उठता है और अपने को—

"तप रे मधुर मधुर मन ;
विश्व वेदना में तप प्रतिपल जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल, तप रे विधुर-विधुर मन।
अपने सजल स्वर्ण–से पावन रच जीवन का मूर्ति पूर्णतम।"

जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में पंत जी के वही विचार हैं जो प्रायः भारतीय दार्शनिकों के रहे हैं। उनके विचार में जीवन विकास का नाम है और मृत्यु उसके क्रम के ह्रास का! जन्म और मृत्यु इस जगत् के दो द्वार हैं जिनमें से होकर आना जाना लगा रहता है। जब तक हम विश्व के मनस्तत्व के इन नर रूप के कोषों को धारण किये रहेंगे तब तक मानव जाति विश्राम नहीं ले सकेगी। अतएव हमें पुनः अनन्त में लय होकर अव्यक्त हो जाना चाहिये। बीज, संसार को पत्र पुष्प देकर फिर बीज में ही परिणत हो जाता है, यही सृष्टि का रहस्य है।

कवि संसार के सन्ताप से अपने जीवन को अकलुष, उज्ज्वल एवम् कोमल बनाता है। वह जीवन को पावन बना कर मुक्ति की कामना नहीं करता है, क्योंकि वह देवता के निकट पहुँच कर वरदान प्राप्त करने के लिये आतुर नहीं। वह संसार के साथ ममत्व स्थापित कर मनुष्य के हृदय तक पहुँच कर मानवता का सन्देश देने की कामना करता है। कवि का विश्वास है जिस दिन मानव मानवता के संग भू पर अपने चरण-पद्म को रखेगा, उसी समय, उसी क्षण, यह संसार स्वर्गमय हो जायेगा। [illegible]

ईश्वर है। जिस दिन ऐसे मनुष्यों का आविर्भाव होगा, उसी रोज के लिये पंत ने 'ज्योत्स्ना' के एक गीत में लिखा है—

न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर ; देवता यही मानव शोभन,
अविराम प्रेम की बाँहों में है मुक्ति यही जीवन बंधन !

कवि के मतानुसार मानव को विहग की भाँति स्वच्छन्द रहना चाहिये क्योंकि इसी में तो उसके जीवन का सौन्दर्य है। कवि कोरे ज्ञान से बहुत घबराता है। इसे 'शून्य जृम्भा मात्र निद्रित बुद्धि' मानता है। इसी से तो कवि ने जीवन को निर्लिप्त दृष्टि से देखकर कहा है—

"मैं प्रेमी उच्चादर्शों का, संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का,
जीवन के हर्ष विमर्शों का, लगता अपूर्ण मानव जीवन,
मैं इच्छा से उन्मन उन्मन।
जग जीवन में उल्लास मुझे, नव आशा, नव अभिलाष मुझे,
चाहिए विश्व को नव जीवन, मैं आकुल रे उन्मन उन्मन।"

यहाँ पर पंत जी ने यह जिज्ञासा प्रकट की है कि विश्व को 'नव जीवन' चाहिये, परन्तु उसका स्वरूप कैसा हो। इसका स्पष्टीकरण उन्हीं के शब्दों में देखिये—"आदर्श चिंतन अनुभूतियों की अमर प्रतिमाएँ हैं। वे तार्किक सत्य नहीं, अनुभावित सत्य हैं! आदर्शों को सापेक्ष दृष्टि से देखने पर ही मनुष्य उनकी आत्मा तक पहुँच सकता है। निरपेक्ष सत्य शून्य नहीं, वह सर्व है। प्रत्येक वस्तु का निरपेक्ष मूल्य भी है। आदर्श व्यक्ति के लिये असीम है। देश, काल, समाज आदर्श की सीमाएँ हैं, सार नहीं ; उनके इतिहास हैं, तत्व नहीं।" इससे स्पष्ट होता है कि उनके आदर्श परम्परागत एवम् रूढ़िगत नहीं हैं। उनके आदर्श स्वभाव के अनुरूप चलते हैं। "प्रवृत्ति-निवृत्ति मार्ग (Positive negative attitudes) सदैव ही रहेंगे, दोनों ही अपने अपने स्थान पर सार्थक हैं, पहला भोक्ता के लिये, दूसरा द्रष्टा के लिये, जिसे ज्ञान प्राप्त करना है।" पंत जी ने नव जीवन का जो स्वप्न देखा है, वह यह है कि—'संसार से यह तामसी विनाश उठ जाय और सृष्टि प्रेम की पलकों में, अपने ही स्वप्न पर मुग्ध, सौन्दर्य का स्वप्न **बन** जाय।' पंत का कवि

भौतिकवादी एवम् अध्यात्मवादी कलामय सिद्धान्तों का अनूठा संकर चाहता है, पर उसकी मनःकामना परिपूर्ण न हो सकी, क्योंकि—"पाश्चात्य जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व-अध्यात्म-प्रकाश की आत्मा भर एवम् अध्यात्मवाद के अस्थि-पंजर में भूत या जड़ विज्ञान के रूप रंग भर हमने नवीन युग की सापेक्षित परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण किया। और इसीलिये इस युग का मनुष्य न पूर्व का रह गया है, न पश्चिम का रह गया है; पूर्व और पश्चिम दोनों ही मनुष्य के बन गये हैं।"

पंत जी आस्तिक और आदर्शवादी कलाकार हैं। उनका आत्म साधन में विश्वास है। वह मुक्ति की अभिलाषा नहीं रखते। वैराग्य में भी उनकी आस्था नहीं है। उन्हें अपने जीवन से, अपने संसार से प्रेम है। वह चाहते हैं मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाना, ऐसा मानव बनाना जिसके मस्तिष्क और हृदय में सामञ्जस्य हो, जिसके हृदय में संकीर्णता न हो, जो सारी मानव-जाति को, विश्व के प्रत्येक मानव को अपना समझे। यही उनके जीवन का उच्चादर्श है। पंत जी का स्वप्न है :—

"मेरा स्वर होगा जग का स्वर, मेरे विचार जग के विचार,
मेरे मानव का स्वर्ग लोक, उतरेगा भू पर नई बार।"

इस प्रकार विचार करने पर हम देखते हैं कि पंत जी की भावधारा में एक विकास-सूत्र है जिससे उनके दर्शन का यथार्थ परिचय मिल जाता है। उनके विचार सभी समस्याओं पर अत्यन्त सुलझे हुए और स्पष्ट हैं। वे अपने दर्शन में समन्वयवादी अधिक हैं। भूतवाद और अध्यात्मवाद, मनुष्यत्व और देवत्व, पदार्थ और चेतना, समाजवाद और गांधीवाद तथा व्यष्टि और समष्टि के अन्दर समन्वय में ही उनके दर्शन का, उनकी चिन्तन शैली का विकास हुआ है।

पंत जी की कविताओं में इस प्रकार कवि-कल्पना की भाँति विचारों का भी गुम्फन है। उनकी कविता दार्शनिक विचारों का एक शब्दकोष है, जिसमें इच्छा, व्यक्ति, समाज, ईश्वर और सुख-दुःख सम्बन्धी चिन्तन

सामग्री है। इसमें साधना का भरपूर उपकरण है, परन्तु अतिशय साधना लोक-कल्याण के लिये लाभप्रद नहीं। इसीलिये 'सम इच्छा' ही जीवन की भीख है—

'साधन भी इच्छा ही है
सम इच्छा ही रे साधन।'

विश्व की सृष्टि के समय ईश्वर ने मानव के शरीर का सृजन इसलिये किया है कि वह विश्व जीवन के प्रति प्रेम और सहानुभूति प्रकट करेगा। कवि ने भी मानव का आदर्शमय सुसज्जित मूर्त्ति-रूप प्रस्तुत किया है—

'सीखा तुमसे फूलों ने
मुख देख मंद मुसकाना,
तारों ने सजल नयन हो
करुणा-किरणें बरसाना।' —'मानस'

अब पंत का कवि कल्पना लोक से यथार्थ की भूमि पर आ उतरा है और मानव-जीवन के उलझे हुए सुख-दुःख, जन्म मरण, मानव-प्रकृति, नारी रूप, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक-गुत्थियों के विचारों का सजीव रूप प्रस्तुत किया, क्योंकि आज की परिस्थितियाँ ऐसी हो गई हैं कि मानव भाव प्रवण नहीं रह सकता। कवि के ही शब्दों में—

'अपने मधु में लिपटा कर
कर सकता मधुप न गुञ्जन,
करुणा से भारी अन्तर,
खो देता जीवन कम्पन।'

इस प्रकार पंत जी के भाव-जगत् में अनेकों परिवर्तन आये हैं, परन्तु इन सबके पीछे एक सन्तुलित विकास सूत्र है जिसने उनकी भावधारा को कहीं भी विकृत नहीं होने दिया है। विभिन्न भाव-सरणियों (Ideologies) के रहते हुए भी उनमें एक क्रम है।

पंत की कल्पना-प्रसूत रचनाओं में अनुभूति की कमी

* * *

पंत जी की सौन्दर्य प्रधान रचनाओं पर एक आरोप लगाया जाता है कि उनकी कल्पना प्रसूत रचनाओं में अनुभूति की कमी है। 'पल्लविनी' की भूमिका में श्री बच्चन जी ने आज से आठ वर्ष पूर्व यह बात कही थी कि 'पंत जी कल्पना के गायक हैं, अनुभूति के नहीं—इच्छा के गायक हैं, वासना तीव्रतम इच्छा के नहीं।' पर इस कथन में कितना सत्य है, अथवा ऐसा बच्चन जी ने क्यों कहा, इस पर हमें उनके विश्वासों को सामने रख कर विचार करना होगा। पंत जी, जैसा कि सर्व विदित है, प्रारम्भ से ही प्रकृति-सौन्दर्य के उपासक रहे हैं। प्रकृति की गोद में बाल्यकाल में रहने के कारण प्रकृति उनके अन्तर्मन में घुसकर बैठ गई। प्रकृति की सुषमा ने कवि के मन को अपनी ओर इतना खींचा कि उन्हें आगे चलकर नारी सौन्दर्य भी नहीं लुभा सका। प्रकृति-सौन्दर्य और नारी-सौन्दर्य ने उनके मन में द्वन्द्व पैदा कर दिया और फिर इसी द्वन्द्व में कवि की आत्मा पुकार उठी 'बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझादूँ लोचन।' निश्चय ही प्रकृति-सौन्दर्य ने नारी-सौन्दर्य पर विजय पा ली। पर साथ ही साथ प्रारम्भ से ही उनके जीवन पर साधु सन्तों का आध्यात्मिक प्रभाव भी पड़ा। विवेकानन्द, स्वामी रामतीर्थ के दर्शनों का प्रभाव कवि के बाल्यकाल में ही पड़ा तथा छोटी अवस्था में ही उन्होंने दर्शन, उपनिषदों का भी अध्ययन किया जिनका प्रभाव भी उनके

मन पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा। अतः शैशव काल में एक ओर वे प्रकृति के रम्य दृश्यों की ओर झुके तथा दूसरी ओर उन्हें भारतीय दर्शन ने अपनी ओर आकर्षित किया। यहाँ एक बात और भी स्पष्ट कर देने की है और वह यह कि प्रकृति प्रेम ने एक अज्ञात आकर्षण को उनके मन में जन्म दिया और उस अज्ञात आकर्षण ने अव्यक्त सौन्दर्य को। साथ ही प्रकृति ने 'कवि को विश्व और जीवन के प्रति एक गम्भीर 'आश्चर्य-भावना' से भर दिया तथा उसे चिंतक बना दिया। धीरे-धीरे दर्शन के प्रभाव ने इसी अव्यक्त के प्रति आश्चर्य भावना को पुष्ट किया तथा उसे अध्यात्म की ओर झुकने को प्रेरित किया। 'दर्शन' ने उसे बताया कि यह विश्व केवल सौन्दर्य उपासना के लिये नहीं, वरन् आत्मा के उत्कर्ष के लिये संघर्ष करने के लिये है। मनुष्य का धर्म है कि वह संसार को उच्च मार्ग की ओर ले जाये तथा साथ ही साथ अपनी आत्मा का भी उचित विकास करे। आत्मा के विकास के लिये आवश्यक है कि मानव विरागी होकर संसार में उसकी भलाई के लिये कार्य करे। यही कर्म योग का दर्शन उन्होंने जीवन में अपनाया और इसी का प्रभाव उनकी उत्तरकालीन रचनाओं में भी स्पष्ट दीख पड़ता है। बाल्य-काल से ही उनकी सन्त वृत्ति थी जो उत्तरोत्तर पुष्ट होती गई तथा उनके विस्मय के स्थान पर चिंतन प्रधान रूप से छाने लगा। हम पीछे देख आये हैं कि 'युगान्त' से 'ग्राम्या' तक कवि मार्क्स के भौतिक दर्शन से प्रभावित है पर फिर भी यह भुलाया नहीं जा सकता कि वह पूर्ण भौतिकवादी अथवा साम्यवादी न बन सका। साम्यवाद के दर्शन का प्रभाव ग्रहण करने पर भी वह विकासवादी ही बना रहा तथा उसने सदैव ही भौतिक का अध्यात्म से समन्वय करने का प्रयत्न किया। इसका भी मूल कारण भारतीय दर्शन का कवि पर प्रभाव ही है। जब ही तो प्रगतिवादी कवि अरविन्द के प्रभाव को ग्रहण कर रहस्यवादी अथवा अध्यात्मवादी हो गया। किसी भी अच्छी अथवा बुरी वस्तु का प्रभाव मानव पर तब तक नहीं पड़ता जब तक कि उसके लिये उसकी आत्मा में उपयुक्त आधार न बन गया हो। पंत जी की आत्मा में यह आधार पहले से ही तैयार था। काव्य रचना के प्रारम्भ काल में ही कवि ने गाया है :—

'विश्व प्रेम का रुचिकर राग
पर सेवा करने की आग,
इसको संध्या की लाली सी,
क्यों न मंद पड़ जाने दे
द्वेष द्रोह को सांध्य जलद सा,
इसकी छटा बढ़ाने दे।' (वीणा अभिलाषा)

इस प्रकार 'वीणा' काल की रचनाओं पर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव स्पष्ट दीख पड़ता है। कवि की रुचि पर सदैव स्रोत के संयम का अनुशासन लगा रहा है। वे जहाँ उज्ज्वल तन देखते हैं वहाँ उज्ज्वल मन भी देखते हैं। जब वे 'आओ सुन्दर' कहते हैं तो 'आओ शिव' भी कहते हैं। प्रेयसी के लिये उनका प्रेम पावन है, उसका संग उनके लिये 'पावन गंगा स्नान' है। इसी द्वन्द्वात्मक अवस्था के कारण पंत जी सौन्दर्य में पूरी तरह न खो सके तथा उनकी कल्पना-प्रसूत रचनाओं में अनुभूति की कुछ कमी सी दीख पड़ती है। स्वयं बच्चनजी का इसी सम्बन्ध में कथन देखिये—"रागी मन पर विरागी चेतना के नियन्त्रण का परिणाम यह भी हुआ है कि सुन्दरता पर कभी वे पूरी तरह निछावर नहीं हो सके, बलिहार नहीं गए, लहालोट नहीं हुए। जब इच्छाओं ने उन्हें माधुर्य की ओर खींचा है तब साधना ने उन्हें आदर्शों से बाँध दिया है। राग और विराग के इसी संघर्ष ने जीवन के अनुभवों से भी उन्हें दूर-दूर रक्खा है। वे अनुभवों की गहराई में नहीं पैठ सके, उससे भीग नहीं सके, उसकी तीव्रता अथवा दग्धता को मुखरित नहीं कर सके। जब उनके रागी मन ने अनुभवों की ओर उन्हें निमंत्रण दिया है तो उनकी विरागी चेतना ने जैसे उसे बहलाने के लिये उसके आगे कल्पना के कुछ खिलौने फेंक दिये हैं। पंत जी के कवि मन ने बस उसी से रीझकर अपने को सन्तुष्ट कर लिया है। और इस प्रकार उनकी विरागी चेतना को उन्हें वास्तविकता की मलिनता से अछूता रखने की सफलता मिली है। साथ ही रागी मन भी पूर्णतः उपेक्षित नहीं रह गया है, उसे अपने को तृप्त करने का भी कुछ साधन मिल ही गया है।" रागी और विरागी इन दो प्रवृत्तियों ने उनके मन को देखा जाए तो बहुत कुछ

सन्तुलन भी दिया है। कवि पंत के पीछे एक दिव्य सन्त, और सन्त पंत के पीछे एक सरस कवि बैठा हुआ है। इसी संयोग ने उनकी सरसता को उच्छृंखल और उनकी साधना को शुष्क होने से बचा लिया है। यथा :—

'मिले तुम राकापति में आज
पहन मेरे दृग जल का हार;
बना हूँ मैं चकोर इस बार,
बहाता हूँ अविरल जलधार,
नहीं फिर भी तो आती लाज ....
निठुर यह भी कैसा अभिमान ?'

इन पंक्तियों में कवि एक मधुर उत्सुकता और स्नेहानुभूति से अनुप्राणित है। यद्यपि ये प्रयोग काल की 'वीणा' की रचनाएँ हैं फिर भी इनमें प्राकृतिक सौन्दर्य का अच्छा निरूपण किया गया है। साथ ही साथ उनमें अज्ञात के प्रति संकेत भी प्रतिलक्षित होता है। 'बालबिहंगिनी' से सम्बोधन में कवि की लालसा तथा उत्सुकता देखते ही बनती है। कितनी सरसता एवम् सजीवता आगई है इन पंक्तियों में। पर फिर भी उनकी प्राकृतिक सौन्दर्य भावना संतुलित ही है, उसमें आवेग नहीं। 'वीणा' के गीत कवि के प्रकृति प्रेम और प्रारम्भिक आदर्श भावना के मूर्तिमान चित्र हैं। 'वीणा' के सभी गीत प्रकृति के प्रति अथवा अज्ञात के प्रति जिज्ञासा भाव को लेकर लिखे गये हैं। जहाँ तक अनुभूति का प्रश्न है वह तो अवस्था के तथा जिज्ञासा के मिटने पर आती है।

कवि के कल्पनाभूत वर्णनों में अनुभूति से कहीं अधिक आकर्षण है और फिर 'अनुभूति' शब्द भी भ्रामक ही है। जब जब जैसे भाव कवि के हृदय में उठेंगे वह उन्हें व्यक्त करता जायगा। हाँ प्रश्न यह उठ सकता है कि कवि अपने प्रतिपादित आदर्शों पर कहाँ तक जीवन में चलता है? तो यह बात कवि के सम्बन्ध में उठी ही नहीं है और न उठ ही सकती है। रहा अनुभूति का प्रश्न वह भी उनके काव्य में बहुत है। 'ग्रन्थि' की रचना को देखिए। 'ग्रन्थि' की अनुभूति का आधार काल्पनिक होकर भी उससे कहीं अधिक है।

यहाँ कल्पना भी यथार्थ प्रतीत होती है। 'ग्रन्थि' में उनकी अनुभूति कितनी मार्मिक और तीव्र हो उठी है, देखिए—

'शैवलिनी ! जाओ मिलो तुम सिन्धु से,
अनिल ! आलिंगन करो तुम गगन का,
चन्द्रिके ! चूमो तरंगों के अधर,
उड़ गणों गाओ मधुर वीणा बजा,
पर हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है।'

नारी के प्रेम से निराश होने पर कवि का हृदय कहीं भी नहीं लगता है, सभी तो अपने में ही भूले पड़े हैं, किसी की कौन चिन्ता करता है? कवि कहता है, जाओ, सागर तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है ओ निर्झरिणी ! जाओ ! ज्योत्स्ने ! लहरियाँ अपने अस्फुट अधरों पर तुम्हारे चुम्बन की प्रतीक्षा कर रही हैं, जाओ ! और कवि कहता है कि मुझे तुम सब एकान्त में ही अपने व्यथित क्षण गिनने के लिए छोड़ दो !' इस प्रकार कवि की पीड़ा गम्भीर से गम्भीरतम होती जाती है। पंत ने वेदना को एक दार्शनिक समन्वय की पृष्ठ भूमि पर रख कर अंकित किया है। अनुभूति तो जैसे कवि के हृदय में है जो आगे चल कर भी कवि के हृदय को सालती रही है, जैसा कि 'उच्छ्वास' और 'आँसू' रचनाओं से पता लगता है। देखिए :—

'बालकों का सा मारा हाथ,
कर दिए विकल हृदय के तार !
नहीं अब रुकती है झंकार,
यही था हा ! क्या एक सितार ?
हुई मरु की मरीचिका आज,
मुझे गंगा की पावनधार ! —'पल्लव'

कवि के उच्छ्वासों में कितनी कसमसाहट है, कितनी वेदना है। वेदना ही जैसे कवि के हृदय को प्रिय हो गई है तभी वह अपने संसार को इसमें विलीन कर देना चाहता है। साथ ही साथ मर्मस्पर्शी कल्पनाएँ

तथा 'मरु की मरीचिका' और 'गंगा की पावन धार' की उपमाएँ कितनी सजकर व्यक्त हुई हैं तथा इनके स्पर्श से वेदना कितनी मधुर हो उठी है। यह कवि की अपनी ही सूझ है। आगे चलकर 'पल्लव' के आँसू में कवि ने वेदना का समन्वय दार्शनिक पृष्ठ भूमि पर कर ही दिया है। वेदना सत्य नहीं होती हालांकि प्रेमी के हृदय को वह प्रिय अवश्य होती है क्योंकि उसके सहारे वह प्रेयसी का स्मरण कर लेता है। प्रेयसी की चाह रहने पर वेदना को स्वीकार करना ही पड़ता है। कवि ने पीड़ा को अपने मानस का एक अङ्ग बना लिया है। पर यह बात स्पष्ट है कि वह इस पीड़ा से अपने को पूर्णतः भूल नहीं गया है तथा उसने जीवन से हार नहीं मानी है प्रत्युत हृदय को थाम कर वह जीवन पथ पर बढ़ने का अभिलाषी है और कवि ने आगे बढ़ कर सत्य को (जीवन के सत्य को) अपना लिया है। दुख प्रणय को स्मरण करके होता है तो होने दो, पर उसके लिए जीवन के परम सत्य को कैसे भुलाया जा सकता है। कवि तो माँ से विनय करता है :—

"मा ! मेरे जीवन की हार
तेरा मंजुल हृदय हार हो,
अश्रु कणों का यह उपहार;
मेरे सफल श्रमों का सार
मेरे मस्तक का हो उज्ज्वल
श्रम जलमय मुक्तालंकर !
मेरे भूरि दुखों का भार
तेरी उर इच्छाका फल हो,
तेरी आशा का शृङ्गार
मेरे रति, कृति, व्रत, आचार
मा ! तेरी निर्भयता हों नित
तेरे पूजन के उपचार—
यही विनय है बारम्बार !"

इस पर 'यशदेव' जी ने कहा है (प्रश्न के रूप में) कि क्या 'एक

काल्पनिक सत्य में विस्मृति ही समन्वय है !' मैं कहूँगा कि काल्पनिक सत्य में विस्मृति न हो कर यथार्थ ही अधिक है। जीवन के चिरन्तन सत्य की ओर तो कवि सदा से ही उन्मुख रहा है, फिर यह बौद्धिक कल्पना कैसे कहा जा सकता है। नारी से अधिक वे प्रकृति को प्यार करते हैं और प्रकृति के आधार पर वे जिज्ञासा द्वारा चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति करते हैं। नारी के अलौकिक सौन्दर्य को उन्होंने देखा है तथा उसे मायामयि कहकर उसमें वे उलझे नहीं हैं। प्रत्युत उससे प्रेरणा ग्रहण की है। नारी तो सृष्टि की कंपन है, उसके द्वारा ही सृष्टि का निर्माण भी हुआ है, अतः उसे भुलाया भी नहीं जा सकता :—

'स्वप्नमयि ! हे मायामयि !
तुम्ही हो स्पृहा, अश्रु औ हास,
सृष्टि के उर की सांस;
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान,
तुम्हीं स्वर्गिक आभास;
तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अन्तर्धान;
देवि ! मा ! सहचरि ! प्राण !'

कवि ने अंत में नारी से कई प्रकार के सम्बन्ध स्थापित कर लिए हैं। देवि के रूप में वह उसके अलौकिक सौन्दर्य को निहारता है, मा के रूप में वह उससे शक्ति प्राप्त करता है, सहचरि के रूप में वह उसके साथ साथ कार्य करके जीवन पथ पर आगे बढ़ना चाहता है और प्राण के रूप में वह उससे प्रणय करता है। अतः उसने नारी को वासना के गर्त से निकालकर उसे भव्यता ही प्रदान की है तथा उसे अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया है। नारी से वह आगे बढ़ता है और उसे जिज्ञासा होने लगती है। कोई उसे 'मौन निमंत्रण' देता है और वह चकित-सा खड़ा रह जाता है। नारी से हटकर उसे अनन्त हृदय का अपार स्नेह मिलता है। किसी अज्ञात मिलन का संकेत पा वह सोचने लगता है कि वह कौन है चिर सुन्दर, खुलकर वह

सामने क्यों नहीं आ जाता ? नीरव ज्योत्स्ना जब अपनी स्वप्निल अंगुलियों से विश्व शिशु को तन्द्रा के पलकों में सुला देती है, तब वह कौन है जो स्वप्न रथ पर मेरे हृदय में संचरण करता है और तारक रश्मियों से मुझे निमन्त्रण देता है !—

'स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन !'

इस प्रकार कवि सर्वत्र एक मौन संकेत पाता है, जो उसे उत्सुक कर छिप जाता है। कवि जान नहीं पाता है, कि आखिर कौन इस अनंत का सूत्रधार है जो पर्दे के पीछे से डोरी हिलाया करता है ? कवि इस खेल को अधिक नहीं सह सकता है और फिर प्रार्थना करने लगता है एक जिज्ञासु भक्त की भाँति :—

'यह लघुपोत, पात, तृण, रजकण,
अस्थिर — भीरु — वितान,
किधर ?–किस ओर ?–अछोर,–अजान,
डोलता है यह दुर्बल यान ?
कहाँ दुरे हो मेरे ध्रुव !
हे पथदर्शक ! द्युतिमान !
दृगों से बरसा यह अपिधान
देव, कब दोगे दर्शनदान !'

इस प्रकार कवि की रहस्यवादी भावनाएँ अधिकाधिक मुखर होती जाती हैं। नारीसौन्दर्य तथा प्रकृतिसौन्दर्य दोनों कवि को सन्तोष प्रदान नहीं कर सके और कवि अध्यात्म समन्वित यथार्थ की ओर मुड़ता है। 'पल्लव' के अन्त में 'परिवर्तन' शीर्षक रचना में कवि की भावधारा का सही पता लग जाता हैं।

परिवर्तन के सत्य को कवि बड़ी ही गम्भीरता से अनुभव कर रहा है। जगति में चहूँ ओर परिवर्तन चल रहा है; स्वच्छन्द ''' अनर्गल '''' उसे कोई रोक ही नहीं पारहा है। बड़े से बड़े सम्राट तथा शक्तियाँ भी उसकी आग में नष्ट होती जा रही हैं। पर फिर भी न जाने क्यों मानव अपनी शक्ति पर घमंड करता है, उस पर इतराता है। कवि 'परिवर्तन' कविता में विराट की लीला को अपने हृत्कंपन में अनुभव करता है, किन्तु साथ ही साथ यह भी देखता है कि इस निराशा और अवसाद में अपनी रूपरेखा बनाती सृजन शक्तियों को भी यह परिवर्तन एक अधिक नवीन और स्वस्थ आधार देता है।

'खोल जगत के शत शत नक्षत्रों से लोचन,
भेदन करते अंधकार तुम जगकाक्षण क्षण !'

इस प्रकार यहाँ कला और भाव दोनों अत्युन्नत स्तर पर पहुँच गये हैं। आगे चलकर तो कवि की भावधारा 'गुञ्जन' से और भी सामाजिक विकास की ओर बढ़ती जाती है और उसमें अधिक गहनता आती जाती है। अतः हमने उद्धरणों तथा उनके विश्लेषण के आधार पर देखा है कि कवि में दो प्रवृत्तियां बराबर बनी रही हैं। एक ओर वह सौन्दर्य और कल्पना का प्रेमी है तथा दूसरी ओर उसमें दर्शन का प्रभाव है। सौन्दर्य ने उसे जिज्ञासा दी है तथा चिंतन ने उसे समन्वय प्राप्त करने की प्रेरणा दी है। इस प्रकार कवि ने दोनों को ही निभाने का प्रयास किया है। कल्पना की तूलिका पर उसने अपने गीत अवश्य संवारे हैं पर उन्हें थोथा या अनुभूति से एक दम शून्य कहना उचित नहीं। छायावादी कवि होने के नाते उनमें कल्पना प्रधान रही है पर चिंतन का भी स्पर्श उनकी रचनाओं में सर्वत्र देखने को मिलता है। चिंतन ने उन्हें यथार्थ की ओर (सामाजिक यथार्थ तथा आत्मिक सत्व की ओर) झुकाया है। चिंतन जहाँ होगा वहाँ मस्तिष्क का प्रयोग अवश्य किया गया होगा और चिंतन से निकले हुए सत्य से हृदय अवश्य प्रभावित होगा अतः निश्चय ही उनकी कल्पनाप्रसूत रचनाओं में अनुभूति है। हाँ यह कुछ अंशों में कहा जा सकता है कि कहीं कहीं पर कल्पना अधिक मुखर है और अनुभूति कम। पर इसका कारण उनके हृदय और मस्तिष्क का द्वन्द्व ही है जो आगे चलकर सत्य में परिणत हो गया है।

पंत की सौन्दर्यानुभूति



सौन्दर्य की परिभाषा बहुत ही जटिल एवम् विवाद ग्रस्त है। पर सौन्दर्य जीवन और सृष्टि सभी के लिये आवश्यक है। परब्रह्म परमात्मा भी सत्यं, शिवम् तथा सुन्दरं का समन्वय ही है। सुन्दर वही है जो सत्य है तथा चिरन्तन है। इसी सुन्दर और असुन्दर के आधार पर हम सत्य की व्याख्या भी करते हैं। सुन्दर वस्तु केवल वही नहीं जो देखने में अच्छी लगे, प्रत्युत वास्तव में सुन्दर वही है जो सत्य के निकट हो तथा जो हमारे मन को चेतना प्रदान करे। वास्तव में देखा जाये तो समस्त सृष्टि ही सुन्दर है पर उसमें सुन्दर असुन्दर का भेद हमारी विकारपूर्ण मानसिक मनोवृत्ति ही करती है। प्रत्येक असुन्दर वस्तु में कहीं न कहीं सौन्दर्य अवश्य निहित रहता है, पर उसे देखने के हेतु चाहिये हमारी स्वस्थ एवम् पुनीत दृष्टि। यों तो देखने में सौन्दर्य बाहर की वस्तु है, पर बात यथार्थ में ऐसी नहीं। यह मन के अन्दर की वस्तु है। प्रत्येक बालक जन्म से ही अपने चारों ओर की वस्तुओं को देखकर विस्मय से आँखें फाड़ देता है, पर धीरे-धीरे उसके बड़े होने पर सामाजिक वातावरण उसे सुन्दर और असुन्दर में भेद करने को बाध्य कर देता है। प्रत्येक देश और सामाजिक व्यवस्था के अपने अपने मांप दण्ड रहते हैं। मनुष्य भी सामाजिक प्राणी है, अतः उसे भी उसके मांप दण्डों को किसी न किसी रूप में स्वीकार करना ही पड़ता है। वास्तव में वस्तु सदैव एक सी रहती है पर उसे देखकर सौन्दर्यानुभूति का होना व्यक्ति विशेष कि अपनी भावुकता तथा मानसिक चेतनता पर निर्भर है। आचार्य

शुक्ल जी रस-मीमांसा में लिखते हैं :—"जैसे वीर कर्म से पृथक् वीरत्व कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक् सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं। कुछ रूप रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिये हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उनका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अन्तः सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। इसके विपरीत कुछ रूप रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनकी प्रतीति या जिनकी भावना हमारे मन में कुछ देर टिकने ही नहीं पाती और मानसिक आपत्ति सी जान पड़ती है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी उतनी ही वह वस्तु हमारे लिये सुन्दर कही जायेगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भीतर बाहर का भेद व्यर्थ है। जो भीतर है, वही बाहर है।" जब भी कोई व्यक्ति किसी वस्तु का अवलोकन करता है, तब उस वस्तु के रूप में जितनी ही पूर्ण परिणति होगी उतनी ही उसकी सौन्दर्यानुभूति। आगे चलकर शुक्ल जी कहते हैं—"जिस प्रकार की रूप रेखा या वर्ण विन्यास से किसी की तादाकार परिणति होती है उसी प्रकार की रूप रेखा या वर्ण विन्यास उसके लिये सुन्दर है। मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुँची हुई संसार की सब सभ्य जातियों में सौन्दर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित हैं। भेद अधिकतर अनुभूति की मात्रा में पाया जाता है। न सुन्दर को कोई एकबारगी कुरूप कहता है और न बिलकुल कुरूप को सुन्दर। सौन्दर्य का दर्शन मनुष्य मनुष्य में नहीं करता है। प्रत्युत पल्लव गुम्फित पुष्पहास में, पक्षियों के पक्षजाल में, सिंदूराभ सांध्य दिगञ्चल के हिरण्य-मेखला-मण्डित घन खण्ड में, तुषारावृत्त तुङ्ग गिरि-शिखर में, चन्द्र किरण से झलमलाते निर्झर में और न जाने कितनी वस्तुओं में वह सौन्दर्य की झलक पाता है।" काव्य की रचना के लिये सौन्दर्य एक आवश्यक उपकरण है। जिस काव्य में सौन्दर्य का जितना स्फुरण होगा, वह उतना ही स्थायी एवम् उच्चकोटि का काव्य होगा। सौन्दर्य की अनुभूति मानव मन को होती है, जिसकी अभिव्यक्ति करना ही काव्य कला की आत्मा

को सवारना है। जो कवि जितना भावुक होगा उतनी ही उसमें सौन्दर्य ग्राहिणी वृत्ति भी होगी। सौन्दर्य की, जैसा कि ऊपर कह चुका हूँ, कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं। सौन्दर्य का आदर्श देश-विदेश की सभ्यता और संस्कृति पर आश्रित है। साथ ही साथ हम सौन्दर्य के साथ व्यक्तिगत और रुचिगत वैचित्र्य पाते हैं। सौन्दर्य के प्रति असभ्य जातियों की भावना बहुत ही अविकसित है। सौन्दर्य की अनुभूति के लिये आवश्यक है एक विशेष प्रकार की मानसिक वृत्ति का विकसित होना। मेरा तो अपना मत यह है कि वृत्ति सभी प्राणियों में किसी न किसी अंश में अवश्य रहती है, पर सामाजिक वातावरण तथा सामाजिक मांप दण्ड उस वृत्ति को यदि सुधारते हैं तो दूसरी ओर बहुत अंशों में उसे सीमित भी कर देते हैं। क्या आवश्यकता है कि सभी समाज के लोग एक विशेष वस्तु को सुन्दर कहें? हो सकता है उसे देखकर मुझे कोई अनुभूति न हुई हो अथवा किसी ऐसी वस्तु को देखकर, जिसे समाज ने बुरा कहा है, मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हूँ। मैं तो कहूँगा वही वस्तु सुन्दर है जिसकी ओर हम अधिक आकृष्ट होते हैं, बिना सोचे विचारे। उदाहरण के लिये यदि मैं किसी के प्रेम पाश में बँध जाऊँ और फिर मुझसे कोई पूछे कि तुम किसी को प्यार क्यों करते हो? तो मैं कहूँगा कि नहीं जानता कि मैं उसे प्यार क्यों करता हूँ, पर हाँ उसे प्यार अवश्य करता हूँ तथा व्यक्ति विशेष (अर्थात् प्रेमिका) की सभी वस्तुएँ मुझे बहुत अच्छी लगती हैं। और यदि मैं उस प्रेम का कारण बतादूँ तो मेरी समझ में वह पवित्र प्रेम नहीं रह जायेगा, प्रत्युत वह एक प्रकार का व्यापार अथवा और कुछ होगा। मैं तो अतः प्रेम अथवा सौन्दर्य को मन का एक वेग कहता हूँ जहाँ विचार से पूर्व अनुभूति तथा आकर्षण का स्थान रहता है। दुख और सुख, अच्छी और बुरी सभी वस्तुएँ तथा सभी दशायें हमें सौन्दर्यानुभूति कराती हैं, पर चाहिए उसके लिये व्यक्तिगत चित्तवृत्ति। कारण भी स्पष्ट है—एक पुष्प को देखकर कवि झूम उठता है, पर वैज्ञानिक केवल मुँह मोड़कर चल देता है। सारांश में सौन्दर्य का सम्बन्ध मानव की अपनी रुचि पर आधारित है। कवीन्द्र रवीन्द्र जी ने इसी सम्बन्ध में लिखा है कि "यह बात देखी जाती है कि बर्बर जाति जिसे

सुन्दर समझ कर आदर देती हैं, उसे सभ्य जाति दूर कर देती हैं। इसका कारण यही है कि बर्बरों का मन जिस क्षेत्र में रहता है उस क्षेत्र में सभ्यों का मन नहीं रहता। भीतर और बाहर, देश और काल में सभ्य जाति का जगत् ही बड़ा है और उसके अङ्ग प्रत्यङ्गी भी अत्यन्त विचित्र हैं। इसी से बर्बरों के संसार और सभ्यों के संसार में वस्तुओं का एकसा मूल्य नहीं आँका जा सकता।" अतः यह ठीक है कि सौन्दर्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं है, साथ ही साथ रुचि की भिन्नता भी स्पष्ट ही है।

आरम्भ से ही प्रकृति के आँचल में रहने के कारण पंत जी सौन्दर्य के उपासक रहे हैं। पंत जी में सौन्दर्य की कई प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे प्राकृतिक सौन्दर्य निरीक्षण की प्रवृत्ति, नारी अथवा मानसिक सौन्दर्य की प्रवृत्ति तथा उत्तरकालीन कृतियों में आध्यात्मिक सौन्दर्य की प्रवृत्ति। इन्हीं प्रवृत्तियों के आधार पर हम इनकी रचनाओं की व्याख्या करेंगे।

सर्व प्रथम ये प्रकृति के रम्य दृश्यों की ओर आकर्षित हुए। 'पल्लव' में स्वयं पंत जी ने लिखा है—

'अकेली सुन्दरता कल्याणि!
सकल ऐश्वर्यों की संधान!'

और फिर आगे चलकर युगान्त में भी एक छवि चित्र अंकित किया है :—

आल्हाद, प्रेम औ' यौवन का
नव स्वर्ग सद्य सौन्दर्य दृष्टि,
मंजरित प्रकृति, मुकुलित दिगन्त,
कूजन, गुञ्जन की व्योम-वृष्टि।'

'पल्लव' तक प्रायः प्रकृति द्वारा प्रेरित कल्पना-प्रसूत चित्र ही अधिक देखने को मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे नारी का सौन्दर्य उन्हें अधिक लुभा ही नहीं सकता। 'ग्रन्थि' में यद्यपि कवि नारी सौन्दर्य की ओर आकृष्ट

हुआ है पर उसका यह भ्रम अधिक न रह सका और वह पुनः प्रकृति के अप्रतिम सौन्दर्य की ओर झुकता है। स्वयं कवि स्वीकार करता है—

'छोड़ द्रुमों से मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ? —'पल्लव'

कवि प्राकृतिक सौन्दर्य में इतना तल्लीन हो गया है कि वह प्राकृतिक सौन्दर्य के अतिरिक्त किसी अन्य बात की ओर आकर्षित ही नहीं हो सकता। कवि ने प्रकृति के स्वच्छन्द सौन्दर्य को ही अधिक निखारा है। प्राकृतिक सौन्दर्य ने सदैव ही उसके जीवन में चेतना प्रदान की है पर 'परिवर्तन' रचना में कवि का दृष्टिकोण बदल गया है तथा उसने उसकी कुरुपताओं की ओर भी दृष्टिपात किया है। प्राकृतिक सौन्दर्य ने उसे जीवन और जगत के सम्बन्ध में विचार करने को भी प्रोत्साहित किया है। यद्यपि 'गुञ्जन' तक आते आते कवि की भावधाराओं में पर्याप्त परिवर्तन परिलक्षित होने लगा है और उसने मानव-सौन्दर्य की ओर निहारना प्रारम्भ कर दिया है पर फिर भी यत्र तत्र उसका प्रकृति प्रेम झलक पड़ता है। प्रकृति के रंग मंच हैं—पल्लव, अप्सरा, मधुकरी, फूल, चाँदनी, वीचिविलास, तितली, जुगनू, ओसकरण, संध्या, पवन ज्योत्सना, सुरभि, छाया, इन्दु, विहग इत्यादि।

कवि को प्रकृति से सदैव ही मोह रहा है, अतः उसके चित्रण में भी उसे विशेष सफलता मिली है। पंत जी की दूसरी सौन्दर्य-निरीक्षण की प्रवृत्ति रही है—मानसिक सौन्दर्य की। पंत जी ने नारी सौन्दर्य को देखा और फिर उसकी ओर आकृष्ट हुए। नारी सौन्दर्य ने उनको इतना आकर्षित किया कि प्राकृतिक दृश्य उसके समक्ष फीके से जान पड़े, यद्यपि यह केवल मोह जाल था जो धीरे धीरे नष्ट हो गया। फिर भी नारी का आकर्षण कोई भुलाने की वस्तु नहीं है। यदि प्रकृति चेतना है तो नारी भी सजीव चेतना। कौन ऐसा होगा जो उसके सौन्दर्य के आकर्षण से बच सका हो ? स्वयं ब्रह्मा भी नहीं, फिर मानव की तो बिसात ही क्या ? 'ग्रन्थि' की नायिका से साक्षात्कार होने पर कवि ने मानसिक सौन्दर्य की सृष्टि करना आरम्भ कर दिया। देखिए—

"लाज की मादक सुरा सी लालिमा
फैली गालों में नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित-गाढ़ी से सीप।"

यद्यपि 'पल्लव' में आकर उनका नारी रूप का मोहजाल बहुत कुछ समाप्त हो गया है तथा नारी के प्रेम से उन्हें निराश होना पड़ा है, परन्तु फिर भी उसका आकर्षण गया नहीं है। 'पल्लव' की एक रचना है 'नारीरूप' इसमें कवि ने नारी के प्रति अपना आकर्षण व्यक्त कर दिया है, यद्यपि यह आकर्षण अब बहुत कुछ स्वस्थ और उच्च स्तर का हो गया है तथा उसमें मांसल सौन्दर्य की भावना प्रायः मिट-सी गई है। फिर धीरे धीरे किशोर एवम् अल्हड़ कवि भावुक एवम् चिन्तनशील हो गया है और 'गुञ्जन' में आकर कवि की सौन्दर्यानुभूति पूर्ण संयत और संतुलन हो उठी है। पहले जिस नारी के रूप को देखकर कवि उछल पड़ता था, अब वह उसी के आन्तरिक सौन्दर्य में झाँकने का इच्छुक दीख पड़ता है।

कवि को अपनी प्रेयसी प्राकृतिक सौन्दर्य के कण कण में व्याप्त दीख पड़ती है। यथा—

"खोल सौरभ का मृदु कच जाल
सूँघता होगा अनिल समोद,
सीखते होंगे उड़ खग - बाल
तुम्हीं से कलरव, केलि, विनोद;
चूम लघु-पद-चञ्चलता, प्राण!
फूटते होंगे नव जल स्रोत,
मुकुल बनती होगी मुसकान,
प्रिये, प्राणों की प्राण!"

इसी सम्बन्ध में प्रो० शिवनन्दनप्रसाद जी लिखते हैं—"कवि सत्य और सौन्दर्य का वास्तविक साक्षात्कार कर पाता है।.......सौन्दर्य अब उसके

लिये बाह्य पार्थिव आकृति या शारीरिक रूपरेखा पर अनिवार्य रूप से आधारित नहीं है उन्होंने मानसिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लिया है—उस सौन्दर्य को देखा है जो मरता नहीं, बदलता नहीं, छीना नहीं जाता, जो अजर, अमर, अविनाशी है। यह सौन्दर्य व्यक्ति के व्यक्तित्व की सीमाओं में आबद्ध नहीं, व्यक्ति निरपेक्ष का सार्वभौम तत्त्व है जो विविध नाम रूप (प्रेयसी, मधुवन, अप्सरा, चाँदनी) द्वारा समय समय पर अपनी अभिव्यक्ति करता है। कवि ने जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है, वह शारीरिक सौन्दर्य नहीं है। वह अतीन्द्रिय और भावात्मक है। कवि ने जहाँ जहाँ सौन्दर्य का चित्रण किया है वहाँ रूप का नहीं, प्रभाव का प्रेषण करना उसको अभीष्ट रहा है।" 'अप्सरा' कविता ने बहुत ही आकर्षक ढङ्ग से मानसिक सौन्दर्य की अभिव्यक्ति की है। उनकी यह रचना बहुत ही सुन्दर एवम् आकर्षक बन पड़ी है। 'अप्सरा' में नारी सौन्दर्य विराट तो है ही, पर वह आगे चलकर इतना ऊपर उठ गया है कि आध्यात्मिकता के शिखर तक जा पहुँचा है। उनका सौन्दर्य विश्व के कण कण में व्याप्त हो चुका है। यथा :—

"प्रति युग में आती हो रंगिणि !
रच रच रूप नवीन,
तुम सुर-नर-मुनि, ईप्सित अप्सरि,
त्रिभुवन में लीन।
अंग अंग अभिनव शोभा
नव बसन्त सुकुमार,
भृकुटि-भंग नव-नव इच्छा के
भृङ्गों का गुञ्जार,
शत - शत मधु आकांक्षाओं से
स्पन्दित पृथु उरभार,
नव आशा के मृदु मुकुलों से
चुम्बित लघु पद-चार।"

और अन्त में कवि को जैसे उस विराट सत्य और सौन्दर्य का यथार्थ प्रत्यक्षीकरण हो गया है जिसकी खोज में उसके प्राण लालायित थे। तभी तो कवि पुकार उठता है :—

"हो गए तुम में एकाकार
प्राण में तुम और तुम में प्राण।"

इस प्रकार शनैः शनैः कवि का रूप-सौन्दर्य भाव सौन्दर्य अथवा मानसिक सौन्दर्य में परिवर्तित हो जाता है और फिर भाव सौन्दर्य आध्यात्मिक-सौन्दर्य का स्थान ग्रहण कर लेता है। अतः पंत जी की सौन्दर्यानुभूति सत्यं, शिवं; सुन्दरम् का समन्वित रूप ही है। स्वयं पंतजी ने लिखा है—"कि 'गुञ्जन' और 'ज्योत्स्ना' में मेरी सौन्दर्य-कल्पना क्रमशः आत्म कल्याण और शिव मंगल की भावना की अभिव्यक्ति करने के लिये उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है।" पंत जी का 'वीणा' काल का वस्तुवादी सौन्दर्य लोक 'गुञ्जन' और 'ज्योत्स्ना' तक आते आते अध्यात्मवादी भावलोक बन गया है। वस्तुतः पंत जी की सौन्दर्यानुभूति बहुत ही विस्तृत और स्वस्थ है और यही सत्यं, शिवं प्रेरित उनका सौन्दर्य उनके काव्य की आत्मा भी है।



पंत का गीति-काव्य



गीतों के उद्गम की कहानी धूमिल और दर्दनाक प्रतीत होती है पर है रोचक और सत्य के समीप। इन गीतों में व्यक्त भाव मानवता के प्रतीक हैं। कलाप्रिय सौन्दर्य द्रष्टा और स्रष्टा मानव जीवन के अन्तराल में उठती हुई भाव लहरियों को वाणी देकर जिस पवित्र रस स्रोत का संचार करता है, उसका न अर्थ है और 'न इति'। प्राचीन से प्राचीनतम एवम् नवीन से नवीनतम गीतों में नूतनता का रस और सौन्दर्य है, क्योंकि मानवीय सुखदुख की भावनाएँ चिन्तनता में प्रतिफलित होकर मानव मन को मोहती है। मनुष्य अपने समीप की सभी वस्तुओं से आकर्षित होता है और प्रत्येक वस्तु उसे प्रिय होती है। कलरव करते हुये पशु पक्षी, आलिङ्गन में अबद्ध वृक्षलता, चौकड़ी भरते हिरण, चिंघाड़ते हुए हाथी और शेर, गरजता हुआ समुद्र, सभी उसे प्रिय होते हैं। प्रियजन का विछोह, दरिद्रता और अभाव का तांडव नर्तन, यौवन की उद्दाम उमंगों तीज, त्यौहार और पर्व सभी जीवन के अंग बन जाते हैं। परदेशी प्रियतम का आगमन, प्रियतम का प्रवास में जाना, समाज और धर्म की चोटें, चौपाल की बातें, आम की सुखद सुशीतल छाया में जीवन की मधुपूर्ण घटनाएँ एक अलौकिक रस का संचार कर मानव मन की अंतरंग बन जाती है। भावुक सहृदय मानव इन्हीं साधारण एवम् असाधारण विषयों से आकर्षित हो जाग उठता है, उसी से गीत के स्वरूप निखर उठते हैं और उसमें समाज के जीवन की झांकी अंकित हो जाती है। भाव में विभोर हो जाने पर गीतों को सजाने का ध्यान नहीं रह जाता। उस समय अनुभूति के

वेग में सभी वाह्य बन्धन टूट जाते हैं और मानव अपनी भावुकता में भावों के साथ तदाकार हो जाता है। ऐसे गीतों की शक्ति अपरिमेय होती है और रसो पलब्धि व्यापक।

साहित्यिक गीतों की परम्परा का अनुसंधान और मनन साहित्य का एक प्रमुख विषय है। गीतकाव्य के इस इतिहास का मनन श्रम-साध्य होते हुए भी रोचक है। हमारे प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य में गीत भरे पड़े हैं। तत्त्व और दर्शन सम्बन्धी गूढ़ विचारों से लेकर साधारण और हल्के फुलके विचार गीतों के ताने बाने में बुने गये हैं। हिन्दी कविता में गीतों की रचना कई रूपों में हुई है। समस्त साहित्यिक गीतों की गति विधि को ध्यान में रख कर हम यह कह सकते हैं कि मुख्यतः गीतों के तीन रूप हैं—शृङ्गार प्रधान, विचार प्रधान और उपदेश प्रधान। प्रथम में विद्यापति के सुन्दर शृङ्गारिक पद हैं, दूसरे में महादेवी, मीरा, निराला, प्रसाद और पंत के गीत रखे जाते हैं और तीसरे में कबीर, सूर, तुलसी के गीतों की गणना की जा सकती है। छायावाद—युग गीति काव्य के लिये अधिक उपयुक्त सिद्ध हुआ है इसका मुख्य कारण यह है कि छायावाद में जिस आत्मनिष्ठ चेतना को प्रधानता मिली, वही गीति काव्य का प्रधान तत्त्व रहा है। गीत में वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता रहती है और जब यह अनुभूति काव्योचित भाषा का माध्यम ग्रहण कर अभिव्यक्ति होने लगती है तो इसे 'गीति' की संज्ञा से विभूषित कर दिया जाता है। यद्यपि गीत के सम्पूर्ण भाव व्यक्तिगत अनुभूति पर निर्भर रहते हैं परन्तु फिर भी उनमें ऐसे भाव भी रहते हैं जो दूसरे की हृदय-वीणा के तारों को झंकृत कर देते हैं। यही रागात्मकता गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषता है। गीतिकाव्य की इसकी विशेषता है इसकी संगीतात्मकता, पर यह संगीत आन्तरिक अधिक होता है और वाह्य बहुत कम। गीतिकाव्य में इन दोनों तत्वों (रागात्मकता एवं संगीतात्मकता) का होना परम आवश्यक है। यही कारण है कि जब भावनाएँ संगीतमय हो जाती हैं तो गीतों की उत्पत्ति होती है। इसी से विद्वानों ने गीति-काव्य को संगीत की चरम-सीमा माना है। वास्तव में हिन्दी में 'गीति' शब्द अंग्रेजी के 'लिरक' (Lyric)

शब्द का पर्यायवाची है। विदेशी विद्वानों के मतानुसार गीत की संज्ञा उसी को दी जा सकती है जो वाद्य-यंत्रों के साथ गाया जा सके। उदाहरणार्थ—

(1) The poetry which can be sung or can be supposed to be sung to the accompaniment of the musical instrument

(2) Lyrical poetry, in the original meaning of the term, was poetry composed to be sung to the accompaniment of lyre or harp In this sense, the poet is principally occupied with himself.

यह ठीक है कि प्रारम्भ में गीत की रचना गाने के लिये हुई होगी परन्तु धीरे धीरे इस संगीतात्मकता का स्थान व्यक्तिगत भावना (Subjective feeling) ने ले लिया। यही कारण है कि कवि के अन्तर्जगत में भावों की धारा जब अपनी सीमा का अनिक्रमण करने लगती है तब सहसा गीत फूट पड़ता है। इसी से तो जान ड्रीं क्वाटर (John Drin kwater) ने कहा है :—

"Lyric is projected through a mood of higher intensity." हीगेल (Hegel) का कथन है :—"कवि संसार के अन्तः करण में पहुँच कर आत्मानुभूति करता है, तब उसे अपनी चित्तवृत्ति (Mood) के अनुसार काव्योचित भाषा में व्यक्त करता है। अतएव गीति काव्य के अन्य अंगों से आत्माभिव्यक्ति, भाव और कल्पना के कारण विभिन्न हो गया है। ....गीत रचने की एक विशेष चित्त वृत्ति (Lyric Mood) होती है इच्छा, विचार और भाव उनके आधार होते हैं। भाव की उत्पत्ति के लिए वाह्य पदार्थों का मन में विनर्गमन होता है। जब कवि शांत और समन्वित चित्तवृत्ति में होता है तब कल्पना में बाह्य जगत् प्रधान हो जाता है जिससे भाव की उत्पत्ति होती रहती है। इसी से गीत की सृष्टि होती है।" आर्नेस्ट राईट के मतानुसार—"सच्चा गीत वही है जो भाव या भावात्मक विचार का

भाषा में स्वाभाविक विस्फोट हो। जो शब्द और लय के सामंजस्य से सूक्ष्म भाव को पूर्णतया प्रदर्शित करता हो और पद लालित्य तथा शब्द माधुर्य से उस संगीतमयी ध्वनि में निकलता हो, जिसे स्वाभाविक भावात्मक अभिव्यक्ति कह सकते हैं। उसमें शब्द सरल, कोमल और नाद पूर्ण हों। गीत का उसमें प्रवाह हो, प्रधान अनुभूति का सुन्दर आरोह अवरोह हो, माधुर्य युक्त हो, प्रसाद पूर्ण हो और संगीत मय हो।' तथा हरबर्ट रीड़ का कहना है—"गीत का मूल अर्थ सब लुप्त हो गया है और अब यह केवल भावात्मक ही हो गया है। संसार उन कविताओं को गीत मानने लगा है जिनमें सूक्ष्म अनुभूति हो अथवा इन सूक्ष्म-अनुभूतियों की उन प्रतिक्रियाओं को जो एकान्त आनन्द से जाग्रत होती है। गीतिकाव्य का कवि निश्चय ही संसार की सजगता एवम् जाग्रति से अपने भाव पाता है। संसार की रमणियों में, पुष्पों में, वातावरण के रंगीन वैभव में और उसकी सुकुमारता में ही कवि के भाव जाग्रत होते हैं। इन भावात्मक चेतनाओं के अनायास प्रवाह में गीतिकाव्य की धारा बह निकलती है।' गीतिकाव्य में कवि अपने अन्तरतम् के भावों की अभिव्यक्ति करता है तथा अपने भावों का बाह्य जगत् के साथ इस प्रकार तादात्म्य प्राप्त कर लेता है कि पाठक के मन पर उसके भावों की छाप अनिवार्य रूप से पड़ जाती है तथा पाठक उसके भावों में इस प्रकार खो जाता है जैसे वे उसके अपने ही निजी भाव हों। आत्माभिव्यंजन-सम्बन्धी कविता गीतिकाव्य में भी छोटे-छोटे गेय पदों में मधुर भावनापन्न, आत्मनिवेदन से युक्त स्वाभाविक ही जान पड़ती है। कवि उसमें अपने अन्तर्मन को स्पष्टतया द्रष्टव्य कर देता है। सुश्री महादेवी जी ने इस प्रकार गीतिकाव्य की व्याख्या की है—'सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था का विशेष गिने चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है। गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमें सन्देह नहीं।" इस प्रकार हम गीतिकाव्य के दो पक्ष देखते हैं—"प्रथम में भाव, विचार, इच्छा, कल्पना, उद्गार और अन्तर्जगत् का चित्रण होता है। उसमें वस्तु तत्व की प्रधानता होती है। दूसरे पक्ष में भाव-भाषा का सामञ्जस्य, छन्द, सरलता, सुकुमारता,

संगीत, भाषा-शैली और संक्षिप्तता आदि आते हैं। प्रथम स्वरूप को गीति-काव्य का अन्तरंग और द्वितीय स्वरूप को बहिरंग कहना उचित होगा। जैसा कि पहले कह चुके हैं, गीतिकाव्य का सम्बन्ध हृदय से है। अतएव उसका अन्तरंग अथवा वस्तुतत्त्व हृदय के अनुरूप ही बहुत सुकोमल, तरल और भावपूर्ण होना चाहिये। मस्तिष्क की ऊहा-पोही और दार्शनिक विचारों की गहनता या सैद्धान्तिक निरूपण के लिये उसमें कम ही स्थान है। वरन् इनसे गीतिकाव्य का बहिरंग भी नष्ट हो जाता है। उदाहरण में कुछ तुलसी और कबीर के दार्शनिक पद रख सकते हैं। वस्तुतत्त्व की अपेक्षा गीतिकाव्य में बहिरंग अधिक आवश्यक होता है। क्योंकि भावना के सुकुमार होने के साथ-साथ भाषा सरल, सुमधुर और सुव्यञ्जक होनी चाहिये। गीतिकाव्य का प्रकरण सुन्दर हो, मनोहर हो, संक्षिप्त हो, साथ ही प्रभावोत्पादक हो। उसमें रूप और ध्वनि का सौन्दर्य हो!........वस्तु तत्व में भाव का प्राधान्य हो जिसमें कवि और पाठक दोनों के हृदय में लयकारी संगीत के द्वारा सामञ्जस्य स्थापित हो जावे। भाव के अनुरूप ही भाषा भी सरल, सुकुमार और स्पष्ट होनी चाहिये। उसमें कल्पना भी नवीन और उन्मुक्त हो। भावों की अभिव्यक्ति तीव्रतम होनी चाहिये जिससे इसका प्रभाव अधिक से अधिक पड़े। भाव विच्छिन्न और अस्पष्ट न हों। संगीत के पूर्ण विकास के लिये भाषा का सुकुमार और सरल होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रवाह के लिये भी शब्दों का चयन सुन्दर हो। भाषा में द्वित्व और संयुक्त अक्षरों का कम से कम प्रयोग हो। साथ ही कर्कश अक्षरों का भी यथाशक्ति बहिष्कार हों। इत्यादि इत्यादि।"—श्री ओमप्रकाश अग्रवाल इस विवेचन के आधार पर गीतिकाव्य की कुछ विशेष बातों का निरूपण किया जा सकता है और वे ये हैं—

(१) आत्मानुभूति तथा उसकी अभिव्यक्ति, (२) संगीतात्मकता, (३) उसके कलेवर की संक्षिप्तता, (४) प्रत्येक गीत का स्वतन्त्र अस्तित्व, (५) आदि से अन्त तक एक ही भाव का रहना, तथा (६) भावना का चरम वेग या उत्कर्ष। अब हम इन विशेषताओं के आधार पर पंत जी के गीतों की विवेचना करेंगे। वास्तव में देखा जाय तो पंत जी गीतिकार नहीं हैं वरन्

एक सफल कवि हैं। वे स्वच्छन्दतावाद के कवि हैं, क्योंकि प्रकृति के सौन्दर्य का अवलोकन करके उनके मानस का तार-तार झंकृत हो उठता है। यद्यपि उनकी कविताओं में भावना की गहनता तथा मधुरता दोनों का समावेश मिलता है तथापि उनमें गीति तत्व निहित नहीं है। पर कुछ कविताएँ गीतिकाव्य की दृष्टि से भी अति उत्तम बन पड़ी हैं। 'पल्लव' की एक रचना मधुकरी देखिए :—

'पिला दो ना, तब हे सुकुमारि !
इसी से थोड़े मधुमय-गान ;
कुसुम के खुले कटोरों से,
करा दो ना, कुछ कुछ मधुपान !

इस रचना में गीतिकाव्य की सम्पूर्ण विशेषताएँ समाहित हैं। गीतिकाव्य की प्रथम विशेषता है—आत्मनिष्ठ भावना का प्राधान्य। एक रचना देखिए—

'तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व वेदना में तप प्रतिपल,
जग जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ कोमल,
तप रे मधुर मधुर मन !

गीतिकाव्य की दूसरी विशेषता है उसकी संगीतात्मकता, क्योंकि इससे गीत में सजीवता आ जाती है। अँग्रेजी कवि आलफ्रेड आस्टिन का कथन है—(No verse which is unmusical or obseure can be regarded as poetry, whatever other qualities it may possess.) 'जिस पद्य में संगीत और अर्थ की सुन्दरता न हो, उसको कविता का पद नहीं दे सकते, फिर चाहे उसमें कितने ही गुण क्यों न हों।'

इस दृष्टि से उनके गीत देखिए :—

'जगत की शत - कातर चीत्कार
बेधती बधिर ! तुम्हारे कान !

अश्रु स्रोतों की अगणित धार
सींचती उर - पाषाण !'

इसमें शब्दों के चयन द्वारा नाद-सौन्दर्य की सृष्टि की गई है, जो स्वयं भावों को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं।

प्रत्येक गीत का अस्तित्व स्वतंत्र होता है। इसका का कारण है गीतों के विषय की भिन्न रूपता। पंत जी के गीत एक दूसरे से सम्बद्ध नहीं हैं प्रत्युत स्वतंत्र है। प्रत्येक गीत में आदि से अन्त तक एक ही भाव धारा के दर्शन होते हैं तथा उसमें किसी अन्य भावना का समावेश नहीं हो पाता है, क्योंकि उसका अन्तरंग तो सार्वकालिक और सर्वजन संवेद्य होता है। इसके साथ ही साथ इसमें 'भावना का उत्कर्ष रहता है, क्योंकि कवि के समस्त व्यक्तित्व का ज्वलित विन्दु भाव व्यञ्जना पर ही केन्द्रित होता है—वस्तु वर्णन या चरित्र चित्रण की अपेक्षा तो होती नहीं।' इन्हीं विशेषताओं से परिपूर्ण उनकी गीति-काव्य की कुछ रचनाओं देखिए :—

'आज रहने दो यह गृह काज,
प्राण ! रहने दो यह गृह काज !
आज उर के स्तर स्तर में, प्राण !
सजग सौ-सौ स्मृतियाँ सुकुमार,
दृगों में मधुर स्वप्न संसार,
मर्म में मदिर स्पृहा का भार !
आज चंचल - चंचल मन - प्राण,
आज रे शिथिल शिथिल तन भार;
आज दो प्राणों का दिन मान
आज संसार नहीं संसार !
आज रहने दो सब गृह काज !'
है लेन देन ही जग जीवन,
अपना पर सब का अपनापन,

खो निज आत्मा का अक्षय-धन
लहरों में भ्रमित, गई निगली !'
झर गई कली, झर गई कली !

इस प्रकार प्रत्येक गीत अपने में ही पूर्ण और स्वतंत्र है। आदि से अन्त तक उसकी भावधारा एक सूत्र में गुम्फित दीख पड़ती है। प्रत्येक भावना अपने पूरे उत्कर्ष के साथ व्यक्त हुई है। गीत की अन्तिम विशेषता है उसकी संक्षिप्तता। इस दृष्टि से भी उनके गीत आदर्श बन पड़े हैं। एक गीत देखिए :—

"नीरव तार हृदय में
गूँज रहे हैं मंजुल लय में
अनिल पुलक से अरुणोदय में !
चरण कमल में अर्पण कर मन
रज रंजित कर तन,
मधुरस मज्जित कर मम जीवन
चरणामृत आशय में !
नित्य कर्म पथ पर तत्पर धर
निर्मल कर अन्तर,
पर - सेवा का मृदु पराग भर
मेरे मधु संचय में !"

यद्यपि पंत जी ने बहुत थोड़े गीत लिखे हैं पर जो भी लिखे गये हैं वे उन्हें गीत काव्यकार की कोटि में स्थान दिलाने के लिये पर्याप्त हैं। जहाँ उनके गीत बड़े हो गए हैं वहाँ उनकी भावधारा बिखर सी गई है फिर भी बहुत अंशों में उसे निभाने का यत्न किया गया है। जो गीत छोटे और संक्षिप्त हैं वे तो पूर्ण सुन्दर, सफल एवं पर्याप्त मधुर बन पड़े हैं।



पंत के काव्य में नारी भावना



She gave me eyes, she gave me ears,
And humble cares, and delicate fears;
A heart, the fountain of sweet tears;
And love, and thought, and joy,
—Wordsworth.

नारी सौन्दर्य की प्रतिमा है। वह हृदय में आनन्द, उत्साह तथा प्रेरणा का संचार करती है। नर की पूर्ति नारी है। समस्त सृष्टि ही नर-पुरुष (ब्रह्म) और नारी-स्त्री (प्रकृति) की रचना है। नर और नारी-सृष्टि के दो आधार स्तम्भ हैं तथा दोनों में परस्पर आकर्षण है। आकर्षण के स्थायी हो जाने पर प्रेम की उत्पत्ति सम्भव हो जाती है। इस आकर्षण के गर्भ में 'काम' (Sex) की भावना किसी न किसी रूप में अन्तर्निहित रहती है। यह भावना, वास्तव में बहुत ही जटिल भावना है। यह भावना व्यक्तियों में विभिन्न रूपों में देखने को मिलती है। बहुत से प्राणी हैं जो शरीर के सुख के लिए इतने लालायित नहीं होते जितने इस बात के इच्छुक होते हैं कि किसी के मन को वे प्रभावित कर सकें और कहीं कोई ऐसा हो जो उनके मन को समझ सके। कहीं कहीं यह आकर्षण बौद्धिकता पर आधारित रहता है। किसी की प्रतिभा से हम आकृष्ट होकर जीवन पर्यन्त उसके आकर्षण में बँध से जाते हैं। न ऐसे व्यक्तियों के शरीर की ओर हमारा ध्यान जाता है और न अपने लिए उनकी भावुकता से तात्पर्य। प्रेम की कोई कोई घटना इससे भी सूक्ष्म होती है।

कभी कभी दो प्राणी एक दूसरे मिलकर फिर सदा के लिए बिछुड़ जाते हैं। वहाँ शरीर से भी सम्बन्ध नहीं रहता, बौद्धिकता से प्रभावित होने की बात भी नहीं उठती और नहीं उठती है उसके मन को प्रभावित करने की बात। ऐसी स्थिति में आत्मा का आत्मा के प्रति आकर्षण रहता है। पूर्ण उच्चकोटि का प्रेम वह है जहाँ दो प्राणियों में शरीर, मन, बुद्धि एवम् आत्मा चारों की अनुकूलता हो।

पंत का कवि नारी के प्रति कई रूपों में आकृष्ट है। 'वीणा' में कवि ने बालिका का व्यक्तित्व धारण किया था, 'पल्लव' में उसी का तारुण्य। कवि नारी के शैशव और यौवन से तदाकार है। मूल में नारी एक सहृदय सृजन शक्ति है। "पल्लव' में पंत ने नारी को 'देवी', मा, सहचरि, प्राण – चार अवस्थाओं में देखा है। इन विविध रूपों में मातृत्व का स्थान सर्वोपरि है, नारी के शेष सम्बन्धों में उसी मातृत्व का सुसंस्कृत सामाजिक संगठन है। श्री शांति प्रिय द्विवेदी जी के शब्दों में—"पारिवारिक दृष्टि से मातृत्व पूज्य है, किन्तु फ्रायडियन दृष्टि से वह भी घृणय जान पड़ता है। मनुष्य जड़ देह नहीं, सचेतन प्राणी है, उसकी अनुभूतियों में अन्तः संज्ञा है। इसीलिए वैज्ञानिक प्राणी सम्बन्धों को उसने हार्दिक सौष्ठव दे दिया है। काव्य की अप्सरा और विज्ञान की अपरा नारी समाज की बसुन्धरा है—माता, कन्या, बहन, पत्नी।" 'वीणा' की बालिका की दुग्ध-धवल आत्मा 'पल्लव' के यौवन में भी पावन है :—

'तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान !
उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास;
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के सांस !

—'पल्लव'

कवि ने नारी के विभिन्न सम्बन्धों को जिस क्रम से सजाया है वे अलौकिकता से लौकिकता की ओर, दूरी से निकटता की ओर असमानता से समानता की ओर अग्रसर हुए हैं। किसी अध्यात्मिक शक्ति को नारी रूप में उपासना करने से उसे देवी का स्वरूप प्राप्त होता है जैसे सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी, इत्यादि। नारी को देवी रूप उस समय प्राप्त होता है जब हम उसके किन्हीं असाधारण गुणों के कारण उसके प्रति अपनी श्रद्धा भावना प्रदर्शित करते हैं। पंत जी ने 'वीणा' में ब्रह्म की कल्पना माँ रूप में की है; अतः देवी और मा वहाँ एक हो गई हैं। कवि ने ग्रन्थि में कहा है कि उसके मातृ-अंचल की अभय छाया वाल्यकाल में ही लुप्त हो गई थी; अतः अपनी मा को सम्बोधन करने का अवसर कवि को बहुत कम प्राप्त हुआ होगा। फिर भी 'वीणा' में ऐसी कई रचनाएँ हैं जिनमें मा-बेटी के बीच संभाषण चलता है।

पंत जी ने नारी की स्थिति पर स्वतन्त्र रूप से विचार किया है तथा उसके सम्बन्ध में वे अपनी स्वतन्त्र धारणाएँ भी रखते हैं। पंत जी सौन्दर्य के प्रति अधिक आकृष्ट हैं और उनकी प्रणय-सम्बन्धी कविताओं की प्रेरक शक्ति कोई अज्ञात, अनाम और अरूप नारी है। अँग्रेजी के कवि सिडनी (Sidney) ने ऐस्टीला (Stella) के मुख मंडल में सौन्दर्य तथा प्रेम का रूप देखा जो साहित्य के लिए अमर है। वर्ड्सवर्थ की कविताएँ नारी भावना से ओत-प्रोत हैं, पर वे कल्पना-प्रसूत चित्र हैं। शेक्सपीयर ने भी अपनी प्रेमिका के पवित्र सौन्दर्य का रूप इस प्रकार खड़ा किया है—

And truly not the morning sun of heaven
Bather becomes the grey cheeks of the east
Nor that full star that ushers on the eve
Doth half that glory to the sober west
As these two mourning eyes become thy face.

वस्तुतः नारी मानव की चिर आकांक्षा तथा आकर्षण और प्रणय की प्रति मूर्ति है। नारी के रूप पर हमारा कवि पंत भी मुग्ध है पर वह उसके सौन्दर्य में खोया नहीं है, प्रत्युत दर्शक के रूप में खड़ा है। पंत जी ने नारी

को प्रकृति की आड़ में देखा है। पंत जी ने प्रतीकों के सहारे नारी-रूप का चित्रण किया है। 'ग्रन्थि' में नारी रूप देख कर कवि कुछ क्षणों के लिए अपने को भूल जाता है पर यह विमुग्धता अधिक देर तक नहीं रहती है, क्यों कि कवि का मन तो प्रकृति के कोमल रूपों में अटका हुआ है। इसी बात को उन्होंने मोह शीर्षक कविता में स्पष्ट भी कर दिया है :—

"छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझादूँ लोचन ?" आदि

कवि जितना प्रकृति की ओर आकृष्ट है उतना नारी-सौन्दर्य की ओर नहीं। इसी भाव को उपर्युक्त पंक्तियों में कवि ने द्वन्द्व के रूप में प्रस्तुत किया है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि उसने नारी का स्थान गौण ही कर दिया है। आगे चलकर कवि ने नारी के रूपों को काव्य में यथा संभव स्थान दिया है, क्योंकि सदैव से ही कवि सौन्दर्योपासक रहा है। पंत के नारी सौन्दर्य में मांसलता का अभाव और भावोल्लास का आधिक्य है। 'पल्लव' के नारी रूप का प्रारम्भ कवि ने इस प्रकार से किया है :—

घने लहरे रेशम के बाल
धरा है सिर में मैंने, देवि !
तुम्हारा यह स्वर्गिक—शृङ्गार,
स्वर्ण का सुरभित —— भार !

ये पंक्तियाँ आत्म—कथात्मक अधिक प्रतीत होती हैं; कविता की वास्तविक आत्मा से इनका विशेष सम्बन्ध नहीं है। पंत जी के लिए नारी-भावनाओं की प्रेरिका रही है। कवि को नारी के रोम रोम से प्यार है और उसे कवि का दुलार भी प्राप्त हुआ है। उसे सिर्फ 'घने लहराते रेशम के बाल' से ही अनुराग नहीं है प्रत्युत इसी रचना में कवि नारी की विशेषताओं का स्मरण करते हुए उसके प्रति अपना कई प्रकार का मानसिक सम्बन्ध भी व्यक्त करता है—

"स्नेहमयि ! सुन्दरतामयि !
तुम्हारे रोम रोम से, नारि !
मुझे है स्नेह अपार;
× × ×
स्वप्नमयि ! हे मायामयि !
तुम्हीं हो स्पृहा अश्रु औ' हास,
सृष्टि के उर की साँस;
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान,
तुम्हीं स्वर्गिक आभास;
तुम्हारी सेवा में अनजान
हृदय है मेरा अन्तर्धान;
देवि ! मा ! सहचरि ! प्राण !"

जिन भावनाओं की घोषणा कवि ने यहाँ पर की है, उनमें से अनेक भावों को उसने निभाने का प्रयत्न भी किया है। 'नारी का हृदय स्वर्गाकार है' इस पर एक अत्यंत सुन्दर रचना पंत जी ने 'ग्राम्या' में दी है। नारी के उन्होंने गीत गाए हैं, उसकी सुन्दरता का उन्होंने वर्णन किया है तथा उसके रोम रोम से प्यार प्रदर्शित किया है। यह सब ठीक है पर उसकी दुर्बलता को लेकर जहाँ उन्होंने नारी—आधुनिका को मार्जारी तक कह दिया है वहाँ वे अपने भावों का संतुलन खो बैठे हैं। 'युगवाणी' में नर और नारी दोनों को उन्होंने सम्बोधित किया है। इसकी 'नारी' रचना सामान्य नारी की आज तक की दशा का वास्तविक चित्रण है। श्री 'मानव' जी के शब्दों में—"जीवन के अन्य उपकरणों के समान नारी को भी पुरुष अपनी व्यक्तिगत पूँजी समझता है जिसका उपभोग जैसे चाहे वह कर सकता है। यह सत्य है कि उसने उसे सोने से लाद दिया है; परन्तु ये आभूषण ही उसके शरीर के बंधन बन गये हैं। उसको इस प्रकार तुष्ट कर उसने उसे अपनी इच्छा का खिलौना बनाया। उसके लिए जो नैतिक मान उसने घोषित कर दिये, उन्हें उसे स्वीकार करना पड़ा। इस प्रकार शरीर के साथ उसकी आत्मा का भी अधिपत्य हो गया। नारी का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व न रहा। यदि उसके मन में

विद्रोह की कोई इच्छा जगी भी, तो वह वहीं कुचल दी गई। पुरुष के पास इस काम के लिए पशु-बल की कमी न थी।" अतः कवि मानव से प्रार्थना करता है कि वह नारी पर अपने अत्याचारों को बंद करदे और उसे बराबरी का स्थान एवम् गौरव प्रदान करे। इसी से नवीन युग का प्रभात दिखाई देगा—

क्षुधा काम वश गत युग ने
पशु बल से कर जन शासित
जीवन के उपकरण सदृश
नारी भी कर ली अधिकृत !
मुक्त करो जीवन संगिनि को,
जननि, देवि को आदृत,
जग जीवन में मानव के संग
हो मानवी प्रतिष्ठित।"

आगे चलकर कवि देखता है कि नारी नर की केवल छायामात्र रह गई है। उसका अपना कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह गया है। इस अनुभव से से कवि को बहुत दुख होता है और वह कहता है—

'वह नर की छाया नारी !
चिर नमित नयन, पद विजड़ित,
वह चकित, भीत हिरनी सी
निज चरण चाप से शंकित !
मानव की चिर सहधर्मिणि,
युग युग से मुख अवगुण्ठित,
स्थापित घर के कोने में
वह दीप शिखा सी कंपित !'

कवि की राय में नर और नारी दोनों सृष्टि की दो आवश्यक रचनाएँ हैं, अर्थात् सृष्टि की सम्पूर्ण रचना के दो आवश्यक रूप हैं। उन दोनों में से किसी को भी अधिकार नहीं है कि वह दूसरे के व्यक्तित्व को गौण समझे

अथवा उसे कुचले। दोनों के सन्तुलन—मानसिक एवम् शारीरिक तथा परस्पर सहयोग से ही नव मानवता की रचना हो सकती है। 'नर की छाया' में कवि ने नारी की अधोगति के मूल में इस बात का संकेत किया है कि उसने अपना मूल्य सदैव पुरुष की दृष्टि से आंका है। इस रचना में ग्राम्या की दोनों रचनाओं की भावनाओं को समेटते हुए कवि ने तीन बातों की ओर संकेत किया है (१) इस समय उसकी स्थिति क्या है (२) उसे क्या होना चाहिए जो वह नहीं है (३) नारी अपने वास्तविक स्वरूप को यदि प्राप्त करेगी तो क्या होगा ? नारी के स्वतन्त्र होने पर मानवता पुनः जाग्रत हो उठेगी तथा वह सुसंस्कृत बन जायेगी :—

"सामूहिक-जन भाव स्वास्थ्य से जीवन हो मर्यादित,
नर नारी की हृदय मुक्ति से मानवता हो संस्कृत।"

अब नारी भोग-प्रधान सभ्यता की उपभोग्य नहीं है। वह उत्सर्गमय प्रेम की प्रतीक है, वासना अथवा शारीरिक विकृतियों की विवशता नहीं। श्री द्विवेदी जी के शब्दों में 'पंत ने प्रगतिवादियों की तरह समाज का ऐतिहासिक समीक्षण और निरीक्षण किया है ; किन्तु उनका जीवन-दर्शन दृष्टिगत ही नहीं ; अन्तर्गत (मननशील) भी है। यहीं पर वे प्रगतिवादियों से भिन्न हैं। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि देखती है—'योनि मात्र रह गई मानवी', किन्तु सांस्कृतिक आत्मा (अन्तरात्मा) कहती है—'योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित।' इसीलिए 'पल्लव' की 'देवि, मा, सहचरि, प्राण' 'युग वाणी' में भी 'जननि, सखी, प्यारी' है। पंत की प्रगतिशीलता में गार्हस्थिक गरिमा है, आर्योचित अभिजात्य है, सामाजिक साधना है। वे नारी के व्यक्तित्व (अन्तर्निर्माण) की स्थापना चाहते हैं। पंत की अन्तदृष्टि में मध्य-युग की संकीर्ण नैतिकता और आधुनिक-युग की अति भौत्तिकता दोनों एक ही जैसी निष्प्राण हैं। मध्य-युग की ओर देखकर वे कहते हैं— "उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री की शरीर-यष्टि रहा है। उस सदाचार के एक अञ्चल छोर को हमारी मध्य-युग की सती और हमारी वाल-विधवा अपनी छाती से चिपकाए हुई हैं और दूसरे छोर को उस युग की देन

वेश्या।"—सामन्त युग की यह विरासत पूँजीवाद को मिली ; क्योंकि दोनों का समाज अर्थ प्रधान है। किसी भी आर्थिक युग में मूलभूत परिवर्तन नहीं हो सकता। प्रगतिवाद भी अर्थोन्मुख है, इसीलिए वह अपने आर्थिक साम्य से मनुष्य को बाह्य-मुक्ति (मांस-मुक्ति) ही दे रहा है।" नवीन भौतिकवादियों को सम्बोधित करके कवि कहता है :—

"हाड़ माँस का आज बनाओगे तुम मनुज समाज ?
हाथ पाँव संगठित चलावेंगे जग जीवन काज ?
दया द्रवित हो गये देख दारिद्रय असंख्य तनों का ?
अब दुहरा दारिद्रय उन्हें दोगे निरुपाय मनों का ?
आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम।
मानव की मूर्त्ति गढ़ोगे तुम संवार कर चाम ?"—'युगवाणी'

'ग्राम्या' की 'मजदूरनी' शीर्षक कविता में कवि का नारी के प्रति बहुत ही सुन्दर एवम् स्वस्थ दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। नर के साथ साधारण से साधारण काम काज में हाथ बटाने वाली स्वच्छन्दता और निर्भीकता से बाहर विचरण करने वाली, शरीर और मन के स्वास्थ्य से युक्त युवती मजदूरनी ! यह चित्र बहुत ही स्पृहणीय है। पंत जी जो भी दृश्य चुनते हैं और उसके सम्बन्ध में उनका जो शब्द विधान होता है वे दोनों ही प्रतिभा और कला के परिचायक होते हैं। इस चित्र को देखिये :—

'नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृद-सी जन हृदयों में सहज पैठ,
जो बँटा रही तुम जग जीवन का काम काज,
तुम प्रिय हो मुझे ; न छूती तुमको काम लाज।
सर से आँचल खिसका है,—धूल भरा जूड़ा,—
अध खुला वक्ष,—ढोती तुम सिर पर धर कूड़ा ;
हँसती, बतलाती सहोदरा सी जन जन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप सा तन से।'

यद्यपि चित्र अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़ा है पर है यह केवल काव्यात्मक उच्छ्वास मात्र। क्योंकि मजदूरनी की स्वतन्त्र स्थिति के बाह्य सौन्दर्य के साथ उसकी मनः स्थिति का साम्य नहीं दीख पड़ता है। मजदूरनी स्वतन्त्र अवश्य है पर उसकी स्थिति दासी की है ; कुलबधू के सामने वह सेविका से अधिक कुछ नहीं है। यह वास्तव में स्वतन्त्रता नहीं वरन् उसकी असहाय अवस्था ही है। उसके तन पर कपड़े का अभाव उसकी स्वतन्त्रता का द्योतक नहीं वरन् उसकी निरीह अवस्था का प्रमाण है। अतः कवि ने श्रम की ऊपरी सुन्दरता ही देखी है, उसकी आन्तरिक पीड़ा नहीं पहचानी है। आगे चलकर उनकी पुस्तक 'स्वर्ण किरण' में नारी सम्बन्धित 'नारी पथ' शीर्षक से एक रचना है। इसमें नारी के सौन्दर्य के साथ उसकी स्थिति की महत्ता की ओर भी इंगित किया गया है। नारी की उपस्थिति के कारण ही यह चराचर जगत सुन्दर दिखाई पड़ता है :—

'कितनी बेणियाँ लोल
लोटतीं पीठों पर
खुली, बँधी, फूल गुथीं
सुरभित तम निर्झर !
नवल मुकुल सृष्टि अंग,
चकित मृग ग्रीवा भंग,
पुष्प शिखर से उरोज,
चारु हंस, छवि सरोज,
रूप की प्ररोह बाँह
प्राण कामना प्रवाह,....
सचमुच—
एक अंगना से सुभग
लगता अंगों का जग।'

'स्वर्ण धूलि' में अलौकिक मा से सम्बन्ध रखने वाली 'मातृ भक्ति' और 'मातृ चेतना' नाम की दो रचनाएँ हैं। नर-नारी के सम्बन्ध को लेकर

'मानसी' नाम से एक लम्बे रूपक की रचना कवि ने की है जिसके सम्बन्ध में हम पिछले अध्यायों में कह आये हैं। 'मनुष्यत्व' शीर्षक रचना में वर्गभेद और वर्णभेद से उत्पन्न होने वाली हानियों की ओर कवि ने ध्यान दिलाया है, तथा नारी के प्रति नर की दृष्टि में दोष ढूँढ़ा है और इस बात का भी उल्लेख किया है कि उसे कैसा होना चाहिये :—

"छोड़ नहीं सकते हैं यदि जन
नारी मोह पुरुष की दासी उसे बनाना,
देह द्वेष औ' काम क्लेष के दृश्य दिखाना—
तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम समाज में द्वन्द्व स्त्री पुरुष में बंट जाना !
स्नेह मुक्त सब रहें परस्पर,
नारी हो स्वतन्त्र जैसे नर,
देव द्वार हो मातृ कलेवर।'

वर्गभेद तथा वर्णभेद की भाँति अब नर-नारी का आपसी भेद भी मिटता जा रहा है। आधुनिक नारियाँ स्त्री-पुरुष समानाधिकार का आन्दोलन कर रही हैं। वर्तमान युग अभाव क्रांति का युग है। प्रकृति, संस्कृति और कला का भावात्मक दृष्टिकोण अभी स्पष्ट नहीं हुआ है। पंत जी का मत है—"मनुष्य की दैहिक प्रवृत्तियों और सामाजिक परिस्थितियों के बीच में जितना विशद सामञ्जस्य स्थापित किया जा सकेगा, उसी के अनुरूप, जन-समाज की सांस्कृतिक चेतना का भी विकास हो सकेगा।" अतः पंतजी की दृष्टि उज्ज्वल भविष्य खोजती प्रतीत होती है। 'युगवाणी' का कवि भविष्य के समाज में प्रत्यक्ष देखता है—

"जीवन के उपकरण अखिल कर अधिकृत
गत युग का पशु हुआ आज मनुजोचित।"

पंत की प्रणय भावना और उसमें माँसलता



पंत जी प्रकृति के आँचल में रहने के कारण स्वभाव से सौन्दर्य के उपासक रहे है। अतः यही सौन्दर्योपासना अनन्य माधुरी लेकर उनकी रचनाओं में प्रकट हुई है। सौन्दर्य के द्वारा हृदय में प्रेम की उत्पत्ति होती है। पर कवि की अपनी मानसिक प्रवृति के अनुसार यह सौन्दर्य-दर्शन अलौकिक तथा लौकिक दोनों रूपों में देखने को मिलता है। पन्त जी छाया युग के कवि हैं और आधुनिक छायावाद के काव्य में कवियों की जो असंयमित तूलिका प्रेम के चित्र अंकित कर रही है, वे वास्तविक प्राकृतिक प्रेम तथा आत्मिक प्रेम के न होकर उद्दाम के शासीरिक वासना के अशाँत नग्न चित्र हैं। छायावाद युग के कवि अशाँति के कारण काल्पनिक चित्र बनाकर शाँति पाना चाहते हैं। इसी शांति पाने की लालसा के कारण जो लौकिक प्रेम के माँसल चित्रण किये जाते हैं वह प्रेम नहीं वासना का प्रचंड ताण्डव है, मोह का पंकिल क्षेत्र है। 'प्रेम जीवन की मूल प्रेरक शक्ति है। प्राणी की कोई प्रेरणा उसके प्रभाव में जीवित नहीं रह सकती।' यही कारण है कि सौन्दर्य की भावना कलुषित हो जाने पर प्रेम की पवित्र भावना भी कलुष्रित हो जाती है है। पंत जी की सौन्दर्य भावना दो रूपों में प्रवाहित हुई है—एक प्रवृत्ति-सौन्दर्य की ओर और दूसरी नारी-सौम्दर्य की ओर। पर दोनों एक ही सूत्र में गुम्फित हैं। पंत जी के हृदय में एक द्वन्द्व है। एक ओर वे प्रकृति पर मुग्ध हैं और दूसरी ओर वे नारी सौन्दर्य के प्रति आकर्षित हैं, पर अन्त में वे प्रकृति की ओर मुड़ते हैं और नारी-सौन्दर्य का मोह-जल समाप्त हो जाता है। वे स्वयं कहते भी हैं :—

छोड़ द्रमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया;
बाले ! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन !

पंतजी सर्व प्रथम प्रकृति के सौन्दर्य के प्रति आकर्षित हुए हैं। पंत जी माँ के आँचल से बंचित हो गये तो उसके हृदय में प्रकृति जाकर बैठ गई, क्योंकि उसके प्रति कवि का प्रेम शैशव के प्रभात में ही उद्भूत हो चुका था। 'वीणा' इस बात की पूर्ण पुष्टि करती है। 'वीणा' में प्राकृतिक प्रेम प्रखद है और नारी-प्रेम प्रायः लुप्त ही। 'वीणा' काल में पंत का कवि किशोर था, अतः नारी-सौन्दर्य ने उसे अपनी ओर आकृर्षित कर ही लिया। यद्यपि नारी से कवि भय खाता है क्योंकि वह सोचता है कि कहीं नारी के भ्रूभंगों में उलझकर वह प्रकृति का प्रेम न खो बैठे फिर भी पंत जी नारी आकर्षण से न बच सके, क्योंकि प्रकृति निरीक्षण के समय नारी श्रृंगार करके उसके सम्मुख आगई और वह प्रकृति से नारी की ओर मुड़ा। प्रकृकि के सौन्दर्य से अधिक आकर्षण उसे नारी के सौन्दर्य में दिखाई दिया। 'वीणा' में कवि नारी के प्रति केवल आकृष्ट हुआ पर वह प्रेम का अनुभव न कर सका। यह प्रेम भावना कुछ ही वर्षों के उपरान्त 'ग्रन्थि' में प्रकाशित हुई। 'ग्रन्थि' में हम उनकी सौन्दर्य भावना में प्रेम का सम्मिश्रण पाते हैं। वासना मूलक प्रेम की आँखों से 'ग्रन्थि' का कवि आकाश चन्द्र के पश्चात् जब बालिका के मुख चन्द्र को निहारता है तो इसे पहले की अपेक्षा दूसरे में अधिक सौन्दर्य दिखाई देता है—

'इन्दु पर इस इन्दुमुख पर साथ ही
थे पड़े मेरे नयन जो उदय से लाज से
रक्तिम हुए थे पूर्व को-
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था।
लाज की रक्तिम सुरा की लालिमा
फैल गालों में नवीन गुलाबों से
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखिले सस्मित गढ़ों से सीप के।'

पंत जी द्वारा इसे काल्पनिक बनाये जाने पर भी हम विश्वास पूर्वक कह सकते हैं कि इसमें वर्णित व्याख्याएँ काल्पनिक नहीं हो सकतीं, वे यथार्थ एवम् पूर्ण अनुभव पर आधारित हैं। वस्तुतः 'ग्रन्थि' अत्यन्त निर्दयता पूर्ण तोड़े गये कोमलतम हृदय की करुणा चीत्कार है। कवि की प्रेमिका का हाथ जब किसी अन्य व्यक्ति के हाथ में सौंप दिया जाता हैं तो उसका हृदय हाहाकार कर उठता है:—

"शैवलिनि ! जाओ, मिलो तुम सिंधु से,
अनिल ! आलिङ्गन करो तुम गगन को
चन्द्रिको ! चूमो तरङ्गों के अधर,
उड्गणों ! गाओ, पवन वीणा बजा !
पर, हृदय ! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ, किसी, निर्जन, विपिन में बैठकर
अश्रुयों की बाढ़ में अपनी बिकी
मग्न भावी को डुबादे आँख-सी !

ग्रन्थि बंधन के उपरान्त जो वर्णन दिया गया है वह नियति को दोष और अपने क्षोभ का विवरण देने के लिए है। इसे हम विरह वर्णन भी कह कर पुकार सकते हैं। इस वर्णन में कवि ने नियति, सृष्टि, दर्शन, ज्ञान, प्रेम, सौन्दर्य, विरह, स्मृति, अश्रु, कल्पना, आशा, सुख आदि पर विचार किया गया हैं। परन्तु यह दुखी हृदय के विचार हैं। अन्त में कवि ने प्रेम की जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। उनमें स्वानुभूति की मार्मिक झंकार है:—

"यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपांगो से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।
प्रेम ही का नाम जप जिसने नहीं
रात्रि से पल हों गिने प्रति शब्द से
चौंक कर उत्सुक नयन जिसने उधर

हो न देखा, प्यार उसने क्या किया।
पर नहीं तुम चपल हो अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं,
बस बिना सोचे, हृदय को छीनकर,
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में !

× × ×

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह !—अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोंक से
निठुर-विधि ने अश्रुओं से है लिखा !!

'ग्रन्थि' की प्रणय-भावना 'पल्लव' तक पहुँची है। 'पल्लव' में 'उच्छ्वास' और 'आँसू' दो प्रणय सम्बन्धी लम्बी लम्बी कविताएँ हैं। 'उच्छ्वास' में पहाड़ी प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य की पृष्ठ भूमि में एक बालिका के साथ प्रेम व्यापार चलने की चर्चा पंत जी ने की है। कवि एक अस्फुट यौवना-किशोरी पर मुग्ध है। किशोरी सरल थी और सुन्दर थी। सुन्दरता और सरलपन का एक मिला-जुला चित्रण देखिए—

'सरलपन ही था उनका मन
निरालापन था आभूषण,
कान से मिले अजान नयन
सहज था सजा सजीला-तन।
सुरीले, ढीले अधरों बीच
अधूरा उसका लचका गान
विकच बचपन को, मन को खींच
उचित बन जाता था उपमान।'

कवि बालिका के सौन्दर्य से इतना प्रभावित हो चुका है कि प्रकृति का मुक्त सौन्दर्य भी उसके सामने फीका दिखाई पड़ता है।

वाह्य प्रकृति का सौन्दर्य कवि के हृदय को केवल चमत्कृत मात्र भर करता है पर बालिका का सरल सौन्दर्य प्रेम के अभाव की पूर्ति भी करता है :—

इस तरह मेरे चितेरे हृदय की
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी।
सरल शैशव की सुखद-सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम चित्र थी।'

—प्रेम का 'पल्लव' पल्लवित हो ही रहा था कि अचानक संदेह द्वारा राग विराग बन गया। अतः कवि उच्छ्वास को मेघ बनकर समस्त सृष्टि को आच्छादित कर लेने के लिए कहता है :—

'बरस धरा में, बरस सरित, गिरि सर सागर में।
हर मेरा सन्ताप, पाप जग का क्षण भर में॥'

'उच्छ्वास' में कवि अपने प्रणय की असफलता की कहानी कहता है और उदास होकर रह जाता है पर धीरे धीरे उसका उच्छ्वास आँसू बनकर बहने लगता है। अतः 'आँसू' में उसकी व्यथा फूट पड़ती है और वह गा उठता है—

"आह, यह मेरा गीला गान!
वर्ण वर्ण है उर की कम्पन
शब्द शब्द है सुधि का दर्शन
चरण चरण है आह,
कथा है कण–कण करुणा थाह।"

यहाँ प्रकृति प्रणय-काल की पूर्व स्मृतियों को उभार देती है। वर्षा प्रारम्भ होते ही पर्वत प्रदेश की समस्त रम्य दृश्य' बादलों का उठाकर आकाश को आच्छादित कर लेना, चोटियों पर वायु का प्रखर होकर बहना, इन्द्र धनुष का आकाश में बनना, विद्युत का कौंधना; पपीहे की पुकार, झींगुर की झंकार और दादुर का कर्कशस्वर नाद; तथा पर्वत पर हरियाली का दुकूल और प्रपातों का वेग से गिरना—सभी कवि की आँखों के सामने घूम जाते हैं, क्यों

कि ऐसे ही रम्य दृश्यों के बीच तो कवि का प्रणय पला था तथा बढ़ा था। प्रकृति से अब उसे ईर्ष्या होने लगती है। क्योंकि अब प्रकृति के दृश्यों को देखकर उसका मानस पीड़ा से भर जाता है—

'देखता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये ! भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को;
नवोढ़ा-बाल-लहर
अचानक उपकलों के
प्रसूनों के ढिंग रुक कर
सरकती है सत्वर;
सिहर उठता कृश गात,
ठहर जाते हैं पग अज्ञात।'

'आँसू' शीर्षक कविता में पंत जी ने प्रेम को गंगा जल की भाँति पवित्र एवं अनिंद्य माना है, पर दुख यह है कि संसार उस प्रेम को पाप की संज्ञा से विभूषित करता है। वह अपने को एकाग्र चित्त से ध्यान करने की चेष्टा करता है, पर उसके नेत्रों से अश्रु धारा निकल ही पड़ती है—

'मूँद दुहरे दृग-द्वार !
अचल पलकों में मूर्ति संवार
पान करता हूँ रूप अपार;
पिघल पड़ते हैं प्राण,
उबल चलती है दृग जलधार !'

'पल्लव' में एक और भी प्रेम-सम्बन्धी रचना है जो 'स्मृति' है। वास्तव में यह 'उच्छ्वास' और 'आँसू' से ही सम्बन्धित है। इसमें कोई नवीन बात नहीं है। कवि केवल स्मरण करके (अपने प्रणय को) दुखी होता है।

'गुञ्जन' में 'भावी पत्नी के प्रति' एक रचना है जिसकी गणना भी प्रेम

की रचनाओं में की जाती है। इसमें मांसल सौन्दर्य पर्याप्त रूप में देखने को मिलता है। अधर से अधर तथा उर से उर जब प्रणय की कहानी कहेगा उस क्षण का स्मरण कर कवि कहता है—

'सुमुखि, वह मधु क्षण ! वह मधुवार !
धरोगी कर में कर सुकुमार !
निखिल जब नर-नारी संसार
मिलेगा नव सुख से नव बार;
अधर-उर से उर-अधार समान
पुलक से पुलक प्राण से प्राण,
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान
प्रिये, प्राणों की प्राण !'

'भावी पत्नी के प्रति' रचना किसी व्यक्ति विशेष को सम्बोधित करके नहीं लिखी गयी है। यह एक कल्पना है जो प्रायः सभी अविवाहित युवकों को प्रिय लगेगी। यह भावी पत्नी किसी भी कल्पना शील व्यक्ति की पत्नी हो सकती है। इसमें उसके जन्मकाल से लेकर यौवनकाल तक का वर्णन कवि ने किया है। कुछ कल्पनाएँ तो अत्यन्त रसमयी एवम् उत्तेजक हैं। कवि ने सौन्दर्य-वर्णन के अनेक रसों का उद्रेक किया है। शैशव में अंकुरित होने वाले, यौवन की छाया में अधखिले अंगों पर कवि ने रुक रुक कर दृष्टि डाली है। इस संग्रह में दो और भी प्रेम सम्बन्धी रचनाएँ हैं। उनमें एक वियोग पक्ष को लेकर की गई है और दूसरी संयोग पक्ष को लेकर। वियोग पक्ष का उदाहरण देखिये :—

'लहरे अधीर सरसी में
तुम को तकतीं उठ उठकर,
सौरभ समीर रह जाता
प्रेयसि ! ठण्डी साँसें भर !'

इस काव्य संग्रह की दूसरी कविता संयोग पक्ष की है। कवि ने आज अपनी प्रेमिका को एकान्त में पा लिया है। प्रेमिका परकीया ही प्रतीत होती

है। प्रेमिका अपने घर ही किसी कार्य में व्यस्त है। कवि तो उसके सौन्दर्य पर मुग्ध है। अतः बड़ी उत्सुकता एवम् कुशलता से उसके सम्मुख प्रेम-प्रस्ताव रखता है। वह चाहता है कि नायिका गृह-कार्य त्याग कर उसके पास आकर उसकी वासना की तृप्ति करे। उसका रोम रोम पुलक से भर गया है। कलिका पर आलिंगन हेतु गुञ्जन करने वाले भ्रमर को देखकर वह प्रेमातुर हो उठता है। वह कह उठता है। कि हे प्रिये, आज घूंघट खोलकर, लज्जा त्यागकर— मुझ से आकर मिलो। उदाहरणार्थ—

"आज रहने दो यह गृह-काज
प्राण! रहने दो यह गृह-काज।
आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास।" आदि

—संयोग काल की यह व्यंजना अत्यंत ही मार्मिक एवम् मधुर हुई है। रस की दृष्टि से पंत के प्रणय गीत शृङ्गार रस के अन्तर्गत आते हैं। 'युगान्त' में प्रणय जीवन से सम्बन्ध रखने वाली एक रचना है; परन्तु वह अकेली रचना ही अत्यन्त रसपूर्ण है। पंत जी का मर्यादित हृदय वहाँ कुछ अधिक झुक गया है। इसमें अलिंगन, चुम्बन और आत्मसमर्पण या एकाकार तक आ गए हैं। नायिका कम अवस्था की होते हुए भी मुग्धा है। अभी उसके उरोज विकसे ही हैं। दोनों आम्रबन में मिलते हैं। बसन्त ऋतु की चाँदनी में कवि नव यौवना नायिका के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उसके कोमल वपु को गोद में भर लेता है और उसके मुख-सुधा का रस पान करने लगता है। इसी मांसल सौन्दर्य का एक सरस चित्रण देखिए—

'तुम मुग्धा थी, अतिभाव-प्रवण
उकसे थे अंबियों—से उरोज,
चंचल, प्रगल्भ, हँसमुख, उदार,
मैं सलज,—तुम्हें था रहा खोज!'

उसके पश्चात् कवि कहता है—

'तुमने अधरों पर धरे अधर;
मैंने कोमल वपु भरा गोद;
था आत्मसमर्पण सरल-मधुर
मिल गए सहज मारुता मोद !'

यद्यपि 'युगान्त' तक आते आते उनके जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया है और प्रणय-सम्बन्धी भावनाएँ भी उत्तरोत्तर स्वस्थ होती गई हैं, फिर भी यत्र तत्र कुछ मांसल सौन्दर्य की रचनाएँ मिल ही जाती हैं। अतः उपर्युक्त रचना 'युगान्त' की परिवर्तित भावधारा को देखते हुए अपवाद-स्वरूप ही है। 'युगान्त' के पश्चात् तो कवि की प्रवृति पूर्णतः बदल गई है। उसके चिंतन का विषय अब समाज और लोक हो गया है। 'युगवाणी' में व्यक्तिगत प्रणय गीतों का अभाव है, पर 'ग्राम्या' में 'याद' शीर्षक एक कविता है। कवि जीवन की प्रौढ़ावस्था में है। उसका जीवन बदल गया है। मेघों से भरी आषाढ़ की सन्ध्या है ? कवि रोग-शय्या पर एकाकी पड़ा है। चारों ओर विषाद का एक वातावरण छा गया है। ऐसे में विद्युत-सी किसी की उज्ज्वल स्मृति पल भर को सहसा चमक उठती है। 'ग्राम्या' के पश्चात् पंत जी ने ७ वर्ष तक कोई काव्य प्रकाशन नहीं किया। सन् १६४७ में उनकी स्वर्ण-किरण और स्वर्णधूलि प्रकाशित हुई। 'स्वर्णकिरण' में एक रचना है अवगुण्ठिता जिस में प्रणय की व्याख्या पूर्ण नवीन है, जैसे :—

'देह नहीं है परिधि प्रणय की
प्रणय दिव्य है मुक्ति हृदय की;
यह अनहोनी रीति,
देह वेदी हो प्राणों के परिणय की।
बँधकर हृदय मुक्त होते हैं
बंधकर देह यातना सहती
नारी के प्राणों में ममता
बहती बहती रहती।

नारी का तन मां का तन है,
जाति वृद्धि के लिए विनिर्मित
पुरुष प्रणय अधिकार प्रणय है
सुख-विलास के हित उत्कण्ठित ?'

'स्वर्णधूलि' में पहुँच कर तो प्रेम और सौन्दर्य सम्बन्धी पंत जी की मान्यताएँ और भी अधिक स्वस्थ एवम् पवित्र हो जाती हैं। मन और काया का सम्बन्ध छोड़कर नारी प्राण और चेतना से सम्बन्धित हो जाती है तथा शरीर के यौवन के स्थान पर मन का यौवन आ जाता है:—

'देह में मृदु देह सी
उर में मधुर उर-सी समा कर
लिपट प्राणों से गई तुम
चेतना—सी निपट सुन्दर।'

और 'उत्तरा' में पंत जी कहते हैं—

'अब प्रेमी मन वह नहीं रहा,
ध्रुव प्रेम रह गया है केवल,
प्रेयसि-स्मृति भी वह नहीं रही
भावना रह गई विरहोज्ज्वल।'

सारांश में पंत जी का प्रेम निष्काम प्रेम है। उसका उद्देश्य आनन्द के आदान प्रदान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। प्रेम का सम्बन्ध, अतः शरीर से नहीं, आत्मा से है। कवि के 'ज्योत्सना' नाटक में एक नारी पात्र कहती है कि "मैं चाहती हूँ कि प्रेम की भाषा अधिक संस्कृत, प्रेम प्रकट करने के हाव भाव और भी नवीन एवम् परिमार्जित हों।' वास्तव में पंत जी के साथ यह भावना ठीक ही बैठती है।



पंत का मानव-विकास प्रसूत प्रगतिवाद



आधुनिक काल संक्रान्तिकाल है। इसमें अनेक वादों की भरमार है, जैसे छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, पलायनवाद, उपयोगितावाद इत्यादि पिछले २० या २५ वर्षों में देश में तथा विश्व में बहुत उथल पुथल हुई है तथा विभिन्न प्रकार की समस्याएँ हमारे सामने आई हैं। मानव चिंतनशील प्राणी है। चिंतन करना उसका जैसा स्वभाव है वैसा धर्म भी है। प्रत्येक समस्या का सुलझाव उसने चिंतन द्वारा निकाला है। समस्याएँ सामाजिक, राजनीतिक तथा अध्यात्मिक भिन्न भिन्न प्रकार की होती हैं। इन्हीं समस्याओं के सुलझाव हेतुवादों का जन्म हुआ। आध्यात्मिक समस्या को लेकर रहस्यवाद निकला। तथा इससे कुछ भिन्न भिन्न पर आधारित छायावाद नवसंदेश लेकर आया। छाया-वाद तथा रहस्यवाद के विकास में आने का कारण साहित्य में द्विवेदी युग की इतिबृतात्मकता भी है। रहस्यवादी कवि ने अपने को पूर्ण परोक्ष में लीन करके शांति की सांस ली और छायावादी कवि ने कल्पना द्वारा स्वर्ण जाल बुनकर खड़ा कर लिया। छायावादी कवि ने बहुत सी बातें पूर्णतः अटपटी कह डालीं, क्योंकि कल्पनावादी जो ठहरा। विश्व और प्रकृति में चेतना शक्ति का आभास देखते देखते वह जनभीरु हो उठा और काल्पनिक मांसल सौन्दर्य में खो गया। पर इन कविताओं से साहित्य का जो कुछ भी चाहे भला हुआ हो पर समाज का तो निश्चय ही कल्याण न हो सका। फलस्वरूप लोगों ने उन्हें पलायनवादी कहकर पुकारा। हाँ छायावादी कवियों ने भाषा और भावों को खूब निखारा पर वह जीवन की वास्तविकता से पूर्णतः

दूर रहा। बड़े आश्चर्य की बात है कि समाज में जन्म लेने वाला कवि समाज से दूर होगया। अतः पुनः इसके प्रति प्रतिक्रिया हुई। आधुनिक समाज में निर्धनों का शोषण हो रहा है; साम्राज्यवाद एवम् पूँजीवाद की श्रंखलाओं में समाज जकड़ा चला जा रहा है तथा चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। इन्हीं समस्याओं को लेकर प्रगतिवाद का जन्म हुआ। वास्तव में देखा जाए तो यह कोई नवीन बात नहीं, वल्कि यह सामाजिक विचार धारा का प्रतिनिधित्व करने वाली रचनाओं की संज्ञा है। इसमें सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष करने वाली भावना अन्तर्व्याप्ति है। इस दृष्टि से कबीरदास तथा गाँधी जी भी प्रगतिवादी थे।

प्रगतिवादी पुरातन के प्रति वैराग्य या घृणा प्रकट करता है, वह अतीत पर आस्था न रखकर क्रान्तिद्वारा भविष्य को उज्ज्वल बनाने का आकांक्षी बना रहता है। पर प्रगतिवाद का अर्थ आजकल बहुत संकुचित सा हो गया है। इसका कारण खोजने के लिये हमें तनिक इसके उद्गम स्थान को देखना होगा। यद्यपि प्रगति का अर्थ है विकास, पर आज कल साहित्य में इसे मार्क्सवाद अथवा साम्यवाद के समक्ष रखा जाता है। मार्क्सवाद का अपना एक दर्शन है जिसे हम द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) के नाम से समझते हैं। मार्क्सवाद आदर्शवाद की कुरूतियों के प्रति विद्रोह करता है। आदर्शवाद ने पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन दिया। मानव व्यक्तित्व को आदर्शवाद में बढ़ने न दिया गया। मानव के आन्तरिक विद्रोह को धर्म की आड़ से दबा दिया गया। जर्मनी के दार्शनिक हेगेल ((Hegel) ने व्यक्ति से ऊपर 'जर्मन स्टेट' को माना और इतना ही नहीं वरन् जर्मनी को सब से अधिक प्रधानता देकर उसे दूसरे देशों पर आक्रमण करने को भी उकसाया। जर्मन स्टेट की प्रगति को ईश्वर की प्रगति कहकर पुकारा। इस प्रकार व्यक्ति का ही शोषण नहीं हुआ प्रत्युत साम्राज्यवाद को भी प्रोत्साहन मिला। इन्हीं सब सिद्धान्तों के फलस्वरूप मार्क्स ने धर्म और उस काल की सामाजिक व्यवस्था, जो मानव शोषण पर आधारित है, के प्रति विद्रोह किया। हेगेल के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्तों (The

sis, Anti-thesis And synthesis) पर ही आधारित मार्क्स ने द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को संसार के समक्ष रखा जिसका सब ने स्वागत किया। यही मार्क्सवादी दर्शन है जिसे साम्यवादी दर्शन भी कहा जाता है। इसी मार्क्सवादी सिद्धान्तों के आधार पर रूस में १६१८ में समाजवादी क्रान्ति हुई और फलस्वरूप रूप में एक नवीन व्यवस्था आई जो आज तक साम्यवादी व्यवस्था के नाम से प्रचलित है। इसे वैज्ञानिक भौतिकवाद भी कहकर पुकारा जा सकता है। पदार्थ और चेतना के प्रश्नों पर मार्क्सवाद का अध्यात्मवाद से इतना भिन्न दृष्टिकोण है कि हमारे प्राचीन संस्कारों को वह एक दम झकझोर देता है। मार्क्सवादियों के अनुसार मनुष्य जैसा अपनी इन्द्रियों से अनुभव करता है वैसी ही उसकी चेतना बनती है। वह वस्तु जगत को ही सब कुछ मानता है। अध्यात्मवादियों के निकट चेतना है मुख्य वस्तु भौतिक, जगत है गौण; वैज्ञानिक भौतिकवादियों के निकट भौतिक जगत मुख्य वस्तु है और चेतना है गौण। भौतिकवादी मन बुद्धि आदि को भी भौतिक पदार्थों का एक विकसित रूपमात्र मानते हैं। भौतिकवादियों की द्रष्टि में ईश्वर कोई वस्तु नहीं, अतः उन्हें नास्तिक कहना कोई बुराई नहीं है। पंत जी ने 'युगान्त' 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में प्रगतिवादी धारा के अनुसार कविताएँ अवश्य लिखी हैं पर उनकी प्रगतिवाद मानव विकासवाद ही है। शोषण तथा पूँजी वाद-साम्राज्यवाद के प्रति उनका भी विद्रोह है और खुलकर विद्रोह है पर उसके साथ ही साथ वे सांस्कृतिक चेतना के भी पक्षपाती हैं। उन्होंने ईश्वर की आस्था को भौतिकवादियों की भाँति खो नहीं दिया है। वे तो आत्मा के विकास में विश्वास करते रहे हैं। हाँ 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' में उन्होंने ग्राम जीवन के छोटे से छोटे चित्र अंकित किये हैं तथा असहाय और निरीह ग्राम वासियों की अवस्था पर अश्रु ढलकाये हैं, पर साथ ही साथ वे व्यक्तिगत आत्मविकास के भी पोषक रहे हैं। प्रगति का अर्थ है विकास—सर्वाङ्गीण विकास। पंत जी इसी व्यक्तिगत सर्वाङ्गीण विकास के पोषक हैं जब कि भौतिकवादी सामूहिक विकास के। वास्तव में देखा जाय तो उन्होंने अन्तर और बाह्य विकास का समन्वय स्थापित किया है। वे कोरे भौतिकवादियों की भाँति क्रांति आन्दोलन और विशेष प्रकार की सामाजिक

व्यवस्था में विश्वास नहीं करते क्योंकि भौतिक विकास एकांगी विकास है। अतः प्रगतिवाद के संकुचित क्षेत्र में उन्हें प्रगतिवादी कहना ठीक नहीं है। वे तो प्रगतिवादी हैं जिसका अर्थ है विकासवाद-प्रसूत प्रगतिवाद। 'पल्लविनी' की भूमिका में बच्चन जी चर्चा करते हुए इसी तथ्य पर लिखते हैं—"अब, जो हिन्दी कविता में कुछ रुचि रखता है और कविता पर अपनी राय रखता है। पंत जी की चर्चा चलने पर पहला वाक्य यही कहता है कि वे प्रगतिवादी हो गए हैं और प्रगतिवादी प्रगतिवाद से क्या समझते हैं यह तो वे जानें। साधारण लोगों में प्रगतिवाद का जो अर्थ लिया जाता है वह यह है कि वह साम्यवादी दल की राजनीति का अनुयायी है, मार्क्सवाद के दार्शनिक सिद्धान्तों का पोषक है और साहित्य को प्रचार की मैशीनरी समझता है। और मेरी तुच्छ सम्मति यह है कि न पंत जी को तभी ठीक समझा जा रहा था और न अभी ठीक समझा जा रहा है।" आगे चल कर बच्चन जी कहते हैं—"और चूँकि अब कुछ समय से कुछ लोगों ने ढोल बजा कर आधुनिक युग को प्रगतिवादी युग घोषित कर दिया है इसलिए आज वे जो लिख रहे हैं उसमें वे प्रगतिवाद की प्रवृत्तियों अथवा प्रेरणाओं से प्रभावित हैं। वे छायावादी युग की उपज से अधिक उसके निर्माता रहे हैं और वे जैसे प्रगतिशील हैं उनको उसी रूप में स्वीकार करने के लिये प्रगतिवाद को किसी संकुचित दल विशेष के हाथों की कठ-पुतली होने से इन्कार करना पड़ेगा।" अतः मैं यहाँ केवल इतना ही कहूँगा कि पंतजी मननशील, संवेदनशील तथा चिन्तनशील कवि हैं जो अपने और प्रकृति के, मानव जीवन और मानव समाज के, अपने देश, अपने युग और अपनी संस्कृति के तथा इन सब में परियाप्त और इन सबके ऊपर जो सत्ता है उसके प्रति चिर जागरूक हैं। युग विशेष में रहने के कारण उनकी रचनाओं पर मार्क्सवाद का प्रभाव अवश्य परिलक्षित होता है पर पंतजी ने इन प्रभाव को शोधकर अपने काव्य एवम् भावनाओं का अंग बनाया है। वह तो वस्तुतः विकासवादी प्रगतिशील साहित्यकार हैं। विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार तो मानव की स्थिति स्वतः विकासशील एवम् उन्नतमुख है। पर विकासवादी प्रगतिशील साहित्यकार का मत है कि इस

विकास को मानव अपने कर्मों एवम् परिश्रम द्वारा तीव्रतर कर सकता है। यह प्रयास प्रकृत नहीं मानवीय है। अतः प्रगतिशील साहित्यकार का कर्त्तव्य है कि वह मानवात्मा का अजेय, मानव हृदय को अक्षय, उत्साहपूर्ण और मानव मस्तिष्क के सतत् जागरूक, मंथनशील और संघर्षशील बनाने का प्रयास करे। साहित्य साधना का केन्द्र बिन्दु वास्तव में स्वयं मानव ही है, परोक्ष सत्ता नहीं। इसी से तो एक स्थान पर कवि ने कह भी दिया है कि 'ईश्वर को मरने दो, वह फिर जी उठेगा।' पर भौतिकवादियों की भाँति [redacted] यह अर्थ नहीं कि पंत जी ईश्वर को पूर्णतः भूल गये हैं। पंत जी ने तो मानव की अजसु शक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए ही ऐसा लिख दिया है पर वास्तव में वे ईश्वर में पूर्ण आस्था रखते हैं। अतः उनके प्रगति दर्शन को मानववाद और समाजवाद का समन्वय तथा जड़ और चेतन का सम्मिश्रण मानना चाहिए। सारांश में उसे सर्वाङ्गीण मानव विकास भी कह सकते हैं। 'गुञ्जन' से ही कवि की भावधारा में परिवर्तन दीख पड़ता है जब हम उसका स्वर इस प्रकार सुनते हैं—

'लगता अपूर्ण मानव जीवन,
मैं इच्छा से उन्मन उन्मन!
जग जीवन में उल्लास मुझे,
नव आशा, नव अभिलाष मुझे
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे;
चाहिए विश्व को नव जीवन,
मैं आकुल से उन्मन उन्मन!'

धीरे-धीरे उनका चिंतन आगे बढ़ता रहा और 'युगान्त' काल प्रारम्भ होते ही पिछला सब कुछ परित्याग कर एक नई दिशा की ओर वे मुड़े। कवि की प्रगतिवादी धारा यहीं से प्रारम्भ होती है। कवि समाज की विषम व्यवस्था देखकर क्षुब्ध हो उठा। वह नयी मानवता के निर्माण का स्वप्न देखने लगा तथा पुरातन को वह एक निर्जीव और जड़ पथावरोध के रूप में पाता है। कवि कोकिल को पावक कण बरसाने को कहता है:—

'गा, कोकिल, बरसा पावक कण !
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन,
ध्वंस भ्रंस जग के जड़ बन्धन !
पावक पग धर आवे नूतन,
हो पल्लवित नवल मानवपन !

वह चाहते हैं कि प्राचीन सब नष्ट भ्रष्ट हो जावे और नवीन युग का अवतरण हो, इसी से तो कवि ने कोकिल से पावक कण बरसाने को कहा है। पुराचीन की अवधि अब पूरी हो चुकी है। अतः उसका हट जाना ही श्रेयस्कर है। नवीनता को अवस्थान मिलना ही चाहिये। यथा :—

'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र
हे सुस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण !
हिम - ताप - पीत मधुपात भीत
तुम वीतराग, जड़, पुराचीन !'

'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में ठोस और सत्य जगत ही उनके चिन्तन का विषय रहा है। प्रत्यक्ष जगत, हंसता, क्रन्दन करता जगत, सुन्दर कुत्सित जगत ही अब उनकी कल्पना का एक मात्र आधार बन गया है। सूक्ष्म वस्तुओं के स्थान पर अब कवि ठोस वस्तुओं को देखना चाहता है। भावना के स्थान पर मूर्त्त चित्र उपस्थित करना ही उसका अब ध्येय बन गया है। उसने विचारा कि कोरे भाव और कोरी कल्पना अपेक्षित नहीं। 'मानव' जी के शब्दों में—"वह अपने भाव की सजीव प्रतिमा देखना चाहता है, झंकार को निश्चित गीत के रूप में बदलना चाहता है और चाहता है कि उसकी कल्पना सजीव हो उठे। आत्मा की चर्चा के स्थान पर पवित्र आत्मावान्, स्नेह की चर्चा के स्थान पर अमित स्नेहशील व्यक्ति उसे चाहिए। हम मानवीय विभूतियों की चर्चा न करें, प्रत्येक व्यक्ति का मन स्वर्गीय हो।" इस प्रकार से कवि का ध्यान सब ओर से खिंच कर मानव पर केन्द्रित हो गया है। अब कवि का आदर्श बन गया है भूमि को प्यार करना। कवि का दृष्टिकोण अब एकांगी नहीं रहा है प्रत्युत अब वह सुन्दर असुन्दर सभी को

देखने का इच्छुक है। 'वीणा' और 'पल्लव' काल में वह सौन्दर्य का ही एकमात्र उपासक था पर भावना के परिवर्तन के साथ अब उसका मांप दण्ड भी बदल गया है। सुन्दर के साथ कुरूप का भी स्थान उन्होंने स्वीकार कर लिया है :—

हे कुरूप, हे कुत्सित प्राकृत,
हे सुन्दर, हे संस्कृत, सस्मित,
आओ जग जीवन परिणय में,
परिचित से मिल बाँह भरो !'

अब कवि बाह्य सौन्दर्य के साथ आन्तरिक सौन्दर्य का स्रष्टा एवम् पुजारी हो गया है। उसने देखा है कि बाह्य सौन्दर्य से जीवन की भूख नहीं मिट सकती, उसके लिए आन्तरिक चेतना की आवश्यकता है। कवि के जीवन की भावना बदली तथा उसके साथ उसने सत्य की व्याख्या भी बदल दी है। अब वह मानव का पुजारी बन बैठा है। जनहित के आधार वह सत्य की कल्पना करता दीख पड़ता है :—

'धर्म नीति औ' सदाचार का
मूल्यांकन है जन हित
सत्य नहीं वह, जनता से जो
नहीं प्राण सम्बन्धित !'

इस प्रकार कवि ने साम्यवाद की भाँति सभी वस्तुओं को जन हित की तुला में तोला है। 'युगवाणी' में मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव कवि की रचनाओं में स्पष्ट लक्षित होता है। स्वयं 'मार्क्स' के प्रति' कविता में कवि ने अपने उद्गार महान् दार्शनिक के प्रति प्रकट किये हैं। 'मार्क्स' पर उन्हें पूरा विश्वास हो गया है। जन चेतना तथा जन हित भावना से प्रेरित होकर ही उन्होंने मार्क्सवादी दर्शन को ग्रहण किया है। कवि ने भी साम्यवादियों की भाँति, संसार को सत्य मानना, सामूहिक दृष्टि से सब कुछ आँकना, पूँजीवाद की भर्त्सना करना, साम्राज्यवाद को विश्व अशांति का कारण ठहराना, पूञ्जीवादी व्यवस्था को मरणासन्न ठहराना, द्वन्द्वात्मक तर्क प्रणाली के आधार

षर वस्तुओं का विश्लेषण करना तथा साम्यवाद के साथ स्वर्ण युग के आगमन की कल्पना करना, आरम्भ कर दिया है।

'कहता भौतिकवाद, वस्तु जग का कर तत्वान्वेषण—
भौतिक भव ही एक मात्र मानव का अन्तर दर्पण !
स्थूल सत्य आधार, सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युग पत अन्तर परिवर्तन !'

कवि ने साम्यवादियों की भाँति किसानों, मजदूरों का भी चित्रण किया है। हथौड़े पर भी, जो साम्यवादियों का क्रांति चिन्ह है, एक सुन्दर रचना कवि ने की है। श्रमजीवी के सम्बन्ध में कवि लिखता है :—

'लोक क्रांति का अग्रदूत, वर वीर, जनाहत,
नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक, शासित।'

पहले पंत जी शारीरिक सौन्दर्य से अधिक आकर्षित होते थे पर अब तो उनका सौन्दर्य के प्रति दृष्टिकोण भी परिवर्तित हो गया है। वह मांसलता में भावनाओं का साम्राज्य देखने लगा है। कहना उचित होगा कि कवि बाह्य सौन्दर्य के साथ उसमें विराजती आत्मा का भी अवलोकन कर रहा है। पंत जी मांसलता के संबन्ध में लिखते हैं :—

'मांसों का है मांस, मानुषी मांस
करो इसका सम्मान,
निर्मित करो मांस का जीवन
जीवन मांस करो निर्माण !'

एक बात मैं यहाँ पुनः दोहरा देना ठीक समझता हूँ कि कवि ने मार्क्स-वादी विचार धारा को केवल लोक-कल्याण की भावना से ही प्रेरित होकर अपनाया है, पर उसे जीवन की आस्था उसने कभी भी नहीं बनाया है, क्यों कि कोरा भौतिक दर्शन अपूर्ण दर्शन है। अतः गाँधी, रवीन्द्र तथा अरविन्द के दर्शनों को अपना कर उसने भौतिकवादी दर्शन की काया पलट दी है। अर्थात् भौतिक का समन्वय वह अध्यात्म संकर के ही संतुष्ट हुआ है। यही

उसके जीवन की आस्था भी है। अहिंसा के भी वे प्रतिपादक हैं और इधर जीवन सौन्दर्य के भी वे उपासक हैं। अतः मार्क्स के व्यक्तित्व के प्रति आकर्षण होते हुए भी गांधी, अरविन्द और रवीन्द्र के प्रति भी उनके हृदय में आकर्षण बना हुआ है। उनके अनुसार स्थूल-सूक्ष्म, व्यष्टि-समष्टि के समन्वय से ही नवीन मानवता की सृष्टि होगी। साम्यवाद के प्रभाव से प्रगतिवादी कवि निम्न श्रेणियों के व्यक्तियों के चित्रण में आनन्द लेने लगे। भिखारियों, मजदूरों, किसानों का जीवन शोषित वर्ग के अन्दर समाहित होकर इस प्रकार चित्रत होने लगा जिससे पूँजी पतियों या शोषक वर्ग के अत्याचार प्रत्यक्षण हो सकें और जनसाधारण में यह भावना फैले कि उनके दुखों का अन्त ईश्वर से प्रार्थना करने या बड़े लोगों की दानशीलता अथवा दया से न होगा; पूँजीवाद के विनाश से होगा। कवि पंत पर भी इसका प्रभाव पड़ा और उन्होंने भी ग्राम जीवन के स्वास्थ और चित्र अंकित किये। ग्राम जीवन के स्वास्थ एवम् अस्वास्थ दोनों ही पक्षों का चित्रण कवि ने बड़ी सजगता से किया है। कालाकाँकर में रह कर कवि ने ग्राम वासियों के स्वास्थ सौन्दर्य का चित्रण किया है। इसमें धोबियों और चमारों का नृत्य, कहारों का रुद्र नृत्य, ग्रामयुवती, नहान आदि रचनाएँ की गई हैं। स्वास्थ्य, रोमांस तथा सौन्दर्य का चित्रण देखिए :—

"उन्मद यौवन से उभर
घटा सी नव अषाढ़ की सुन्दर,
अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम युवती
वह गजगति
सर्प डगर पर।"

कवि ने ग्राम की दरिद्रता तथा निरीहता के भी यथार्थ और करुण-चित्र अपने काव्य में प्रस्तुत किए हैं :—

'जहाँ दैन्य जर्जर असंख्य, जन
पशु जघन्य क्षण करते यापन
कीड़ों से रेंगते मनुज शिशु
जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन।'

इस प्रकार से ये चित्र कितने यथार्थ, पर भयावह लगते हैं। इस तरह के चित्रण पंत जी ने साम्यवादियों के प्रभाव से ही अंकित किये हैं जो बहुत ही सजीव हो उठे हैं। इस प्रकार कवि ने भौतिकता के पक्ष को खूब संवारा है पर वे इस पर अधिक देर तक नहीं टिक सके हैं, क्योंकि उन्हें तो मानव का सर्वाङ्गीण विकास करना है। केवल वाह्य उन्नति ही जीवन का लक्ष्य कभी नहीं हो सकता। मनुष्य की आत्मा को भी उन्नत करना होगा, तभी जाकर यह भौतिक उन्नति भी स्थायी रह सकेगी। जब तक आत्मा में चेतनता नहीं आयेगी तब तक भौतिक विकास निर्मूल ही सिद्ध होगा। आपसी भेद भावों, सामाजिक कुरूतियों, साम्प्रदायिकता तथा शोषण को समूल नष्ट करने के हेतु मानव की आत्मा में चेतना भरनी ही पड़ेगी। अतः कवि ने अध्यात्म का सहारा ले लिया है। इस प्रकार पंत जी प्रगतिवादी अवश्य हैं पर उनकी प्रगतिशीलता निरी भौतिकता नहीं है प्रत्युत वह तो चेतना प्रधान प्रगतिशीलता ही है। इस प्रकार का पंत जी का प्रगतिशील दृष्टिकोण साहित्य के लिए पूर्ण नवीन दृष्टिकोण है। पंत जी यदि एक ओर प्रगतिवादी हैं, तो दूसरी सच्चे अर्थों में चेतना-प्रसूत मानववादी भी हैं। सारांश में उनका प्रगतिवादी दर्शन मानव-विकास प्रसूत प्रगतिवाद ही है। इसी विस्तृत अर्थ में वे प्रगतिवादी कवि भी कहे जा सकते हैं।

पंत, प्रसाद, निराला तथा महादेवी में छाया-वादी एवम् रहस्यवादी धाराएँ

* * *

रहस्यवाद की कई परिभाषाएँ हो सकती हैं और हैं भी। पर यह केवल शब्द भेद ही है– अर्थभेद नहीं। डा० रामकुमार वर्मा के अनुसार 'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शान्त और निच्छल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है, और यह सम्बन्ध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कोई अन्तर नहीं रह जाता।' डा० भागीरथ मिश्र की रहस्यवाद के सम्बन्ध में लिखते हैं कि यह भावना, जो काव्य के अन्तर्गत, मानव और उसकी परिस्थितियों अथवा जगत को निराकार और सर्वव्यापी ईश्वर के घनिष्ट सम्बन्ध में चित्रित करने की प्रेरणा देती है, रहस्यवाद कहलाती है। शुक्ल जी का कथन है जो चिन्तन के क्षेत्र में अद्वैतवाद है वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद है। रहस्यवाद जीवन की एक प्रवृत्ति, दृष्टिकोण अथवा धारणा है, तो शुक्ल जी का विचार है कि आत्मा और परमात्मा, जीव और ब्रह्म की प्रणयानुभूति ही रहस्यवाद है। श्री भागीरथ दीक्षित जी का मत है—"रहस्यवाद में भारतीय वेदान्त का ब्रह्म चिन्तन है, भक्तों की भगवान विषयक सगुण-भावना- दिव्य प्रणयानुभूति और लौकिक रूपों के माध्यम से पार्थिव अभिव्यक्ति की एक साथ रहस्यपूर्ण स्थिति अनिवार्य है।" इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि रहस्यवाद एक प्रकार की साधना है जिस पर चल कर आत्मा परमात्मा से एकाकार होना चाहती है अथवा यह एक साधन है जिसके द्वारा दर्शन, साधक साध्य की

ओर झुकता है। अथवा यह एक वृत्ति है जिसके द्वारा दर्शन, चिंतन, प्रणय अथवा भक्ति के आधार पर लौकिक हृदय अलौकिक सत्ता के साथ तादात्म्य करना चाहता है। प्रवृत्तियों के अनुसार आज के रहस्यवादियों को हम कई भागों में विभक्ति कर सकते हैं, जैसे—

(१) दार्शनिक रहस्यवादी–निराला

(२) प्रकृति मूलक रहस्यवादी–पंत

(३) प्रणयमूलक रहस्यवादी–प्रसाद, महादेवी वर्मा

(४) भक्तिपरक रहस्यवादी–मैथिलीशरण गुप्त—इत्यादि

हिन्दी साहित्य का सबसे प्रथम कवि है। कबीर। कबीर पर वेदान्ती दर्शन का पूर्ण प्रभाव था, अतः वह जीव और ब्रह्म की तात्विक एकता को स्वीकार करते हुए भी उनमें माया के कारण कुछ अन्तर अवश्य मानते हैं। माया का फटने पर जीव और ब्रह्म में फिर कोई अन्तर नहीं रह जाता है, जैसे—

जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहिं समाना, यह तथ कथो गियानी।'

यहीं पर (माया के हटने पर) आराधक और आराध्य, उपास्य और उपासक एवम् आत्मा और परमात्मा तदाकार हो जाते हैं। एक अंग्रेजी कवि ने भी कहा है :—

"O be mine still, still make me theine
Or rather make me thine or mine"

और इस एकीकरण से आत्मा में एक प्रकार का नशा सा छा जाता है और फिर प्राणी दूसरी ओर देखना भी पाप समझने लगता है Nicholson कहते हैं—" God must be the sole object of adoration, that any regord for other objects is an offence against him" आधुनिक हिन्दी साहित्य में प्रमुख रहस्यवादी कवि हैं— प्रसाद, महादेवी, निराला और पंत और आज का विषय है प्रेम, मिलन, प्रतीक्षा,

विरह, प्रवृत्ति, प्रेम आदि। अतः आधुनिक रहस्यवाद की रचनाओं में विरह, मिलन–प्रतीक्षा के गीत ही अधिक मिलेंगे। 'प्रसाद' जी कहते हैं :—

"भरा नयनों में मनमें रूप, किसी छलिया का अमय अनूप।"

और महादेवी जी के मन में तो एक अनोखी बेचैनी व्याप्त हो गयी है। वे कहती हैं :—

फिर विकल हैं प्राण मेरे।
तोड़ दो यह क्षितिज में भी देखलूँ उस ओर क्या है ?
जा रहे जिस पंथ से युग, कम्प उसका छोर क्या है ?
क्यों मुझे प्राचीर बनकर आज मेरे श्वास घेरे ?
फिर विकल हैं प्राण मेरे।'

सारांश में रहस्यवाद आत्मा और परमात्मा की दिव्य प्रणयानुभूति है और इस अनुभूति के गीत बड़े ही सरस, मर्मस्पर्शी और उत्तम होते हैं। रहस्यवाद की भावना का उदय जिज्ञासा भाव के उत्पन्न होने पर होता है। अन्तर की विशेष वृत्ति के साथ साथ वाह्य प्रभाव भी इस जिज्ञासा भावना को उभारने में सहायक होते हैं। रवीन्द्र की गीतांजलि का प्रभाव कवि पर विशेष रूप से पड़ा और वह रहस्यवादी बन बैठा। उनके स्वभाव के भीतर पहले से से ही वह सब कुछ विद्यमान था जिससे वे रहस्यवादी बनते। सुन्दर के प्रति आकर्षण उन्हें प्रकृति, नारी और व्यापक जीवन की ओर खींच लाया। इसी आकर्षण ने उन्हें रहस्यवादी भी बनाया। अपने उपास्य के प्रति पंत जी की भावना निर्दिष्ट नहीं है। उस अलौकिक सत्ता को उन्होंने कहीं मां माना है और कहीं प्रियतम। 'वीणा' में कवि ने मां के रूप में उस विराट, चिरन्तन सत्ता को देखा है :—

जब मैं थी अज्ञात प्रभात
मां ! तब मैं तेरी इच्छा थी
तेरे मानस की जल जात !
अब तेरी छाया सुखमय

अन्धकार में नीरवता बन
माँ ! उपजाती है विस्मय,
उठरे, उद्यत हो अज्ञात ।
यह सुहाग की है प्रिय रात ।'

अतः पंत जी की मां का परिचय है अनन्त रूप, अनन्त शक्ति तथा अगाध वात्सल्य । पंत जी को ईश्वर पर पूर्ण विश्वास है । यद्यपि उनकी भक्ति अन्य भक्तों की भाँति किसी ईश्वर के विशेष रूप-राम, कृष्ण आदि के प्रति नहीं है, पर फिर भी एक ऐसी सत्ता अवश्य है जो इस सम्पूर्ण विश्व का संचालन करती है और उसी सत्ता में कवि का विश्वास भी है । भौतिक दर्शन को ग्रहण करने पर भी कवि ने ईश्वर की आस्था को नहीं त्यागा । पंत जी ने गुञ्जन में घोषित किया था—

'जग जीवन में उल्लास मुझे,
नव आशा, नव अभिलाष मुझे,
ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे;
चाहिए विश्व को नव जीवन !'

इतना ही नहीं वरन् उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना भी की है कि संसार को सुख दो, समृद्धि दो, नवीन जीवन दो; मनुष्य के स्वप्न और सत्य, ज्ञान और कर्म को संतुलित करदो; उसमें एकता की भावना भरदो, उसे नवीन कल्पना, नवीन चेतना, और नवीन सौन्दर्य बोध देकर चिर प्रगति के पथ पर डाल दो ।' उदाहरण देखिए—

'बरसो सुख बन, सुखमा बन
बरसो जग जीवन के धन ।' —'गुञ्जन'
'आज विश्व को व्यक्ति,
व्यक्ति को विश्व बना जग जीवन लाओ ।
सत्य बनाओ, हे,
मेरे जीवन स्वप्नों को
सत्य बनाओ । —'युगवाणी'

'उत्तरा' की कुछ कविताओं में कोमलाता, सरसता और भाव मग्नता की मात्रा अधिक मिलती है। कवि की भावनाओं में इतना वेग आगया है कि यह अपने को ईश्वर के चरणों में ही समर्पण कर देता है :—

'नमन तुम्हें करता मन
हे जग के जीवन के जीवन
स्मरण तुम्हें करता मन !
अश्रु-पूत अब मेरा आनन
तुहिनधौत वारिज के लोचन
यह मानस की बेला पावन
करता तुम्हें समर्पण।'

पंत जी के रहस्यवाद में प्रकृति-परक अज्ञात के प्रति प्रेम के दर्शन होते हैं। कवि ने बड़ी ही कोमलता के साथ उस प्रेम की अभिव्यक्ति की है और यहीं वे वास्तव में रहस्यवादी के रूप में हमारे समक्ष आते हैं। रूप का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं :—

'जिसकी सुन्दर छवि ऊषा है
नव बसन्त जिसका शृङ्गार
तारे हार, किरीट सूर्य-शशि
मेघ, केश, स्नेहाश्रु, तुषार,
मलियानिल मुखवास, जलधिम्रन,
लीला लहरों का संसार,
उस स्वरूप को तू भी अपनी
मृदु बाहों में लिपटा ले—

उस ओर का आभास पंत जी की 'मौन निमंत्रण' रचना में भी मिलता है। आकाश, समुद्र, प्रभात, रजनी, चाँदनी, मधुमास, ज्योत्स्ना, जागृति, स्वप्नकाल'—प्रायः सभी कवि के हृदय को मौन निमन्त्रण मिलता है। तारे, लहरे, ओस कण, खद्योत, विद्युत सौरभ आदि इस निमन्त्रण के दूत हैं। निमन्त्रण के ये संकेत अत्यन्त ही मधुर होते हैं, जैसे :—

स्वर्ण, सुख, श्री सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर
विहग कुल की कल कंठ हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर,
न जाने अलस पलक दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन।

इसी प्रकार की तल्लीनता और गहन अनुभूति महादेवी जी में भी मिलती है। वास्तव में महादेवी जी की प्रणयानुभूति तो आधुनिक साहित्य में सबसे अधिक बढ़ी चढ़ी है। वह तो अपने परोक्ष प्रियतम की दीवानी हैं। उनका प्रेम इतना बढ़ गया है कि वे सर्वत्र अपने को प्रियतम से घिरा पाती हैं। तभी तो वे कहती हैं :—

"तब बुला जाता मुझे उस पार जो
दूर के संगीत सा वह कौन है ?
तब चमक जो लोचनों को मूंदता,
तड़ित की मुस्कान में वह कौन है ?
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है ?"

महादेवी विरहणी प्रणयिनी हैं पर उन्हें चिर विरह में ही आनन्द आता है क्योंकि विरह द्वारा ही उनकी साधना अखण्ड बनी रहेगी। उन्हें तो अपने प्रिय के आगे अमरता भी हेय दिखाई देती है। परमात्मा से मिलने के लिए विकल आत्मा का क्रन्दन उनके काव्य में सर्वत्र विद्यमान है। फिर भी दोनों की अभिन्नता को भारतीय अद्वैतवाद के अनुसार बड़े ही सुन्दर एवम् मार्मिक ढंग से प्रमाणित किया है :—

'तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या !
चित्रित तू मैं हूँ रेखा क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर सङ्गम,

तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय।
प्रेयसि प्रियतम का अभिनय क्या ?' —'नीरजा'

निराला जी अनन्त पथ के पथिक हैं। उनके रहस्यवाद में दार्शनिक चिंतन की गहराई है। उनकी दृष्टि के समक्ष भावनाओं के ऐसे सामूहिक रूप आकर उपस्थित हो जाते हैं कि वे निस्सीम के घूंघट-पट में झांककर देखने का प्रयास करते हैं। उनकी परिमल, गीतिका, अनामिका आदि पुस्तकों में उन्मुक्त भावनाओं का प्रवाह है। 'परिमल' की अनेक रचनाएँ तत्वज्ञान और रहस्यमयी भावनाओं से ओतप्रोत हैं। एक उदाहरण देखिए, बहुत कुछ महादेवी जी की रचना से मिलती-जुलती :—

'तुम आशा के मधुमास और मैं पिक-कलकूजन तान;
तुम मदन पंच शर हस्त और मैं हूँ अनजान।
तुम अम्बर मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार, घन पटल श्याम,
मैं तड़ित् तूलिका रचना।'

निराला जी ने प्रस्तुत रचना में चिंतन के आधार पर परोक्ष परब्रह्म से आत्मा का विभिन्न रूपों में सम्बन्ध स्थापित किया है। जब वे कहते हैं कि 'मैं मनोमोहिनी माया' हूँ और 'तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म' तो वें प्रकृति (माया) और पुरुष के अभिन्न सम्बन्ध की ओर संकेत करते हुए दीख पड़ते हैं। भारत के प्रायः सभी रहस्यवादियों ने परब्रह्म परमात्मा से अपनी आत्मा का सम्बन्ध जोड़ा है तथा उसकी ओर जिज्ञासा भाव से देखा है। प्रसाद जी ने 'कामायनी' में एक स्थान पर विराट की छाया देखी है :—

'हे विराट्! हे विश्वदेव! तुम
कुछ हो ऐसा होता भान,
मन्द गम्भीर धीर स्वर संयुत
यही कर रहा सागर गान।' -आशा सर्ग

प्रसाद जी ने विराट सत्ता की शक्ति को सर्वत्र स्वीकार किया है। उसकी व्याख्या करने का कौन साहस कर सकता है तथा इसका स्पष्टीकरण भी कैसे किया जा सकता है, यह जानकर ही प्रसाद जी उस सत्ता में विश्वास कर लेते हैं। इतना ही नहीं, वरन् प्रसाद जी तो उस परोक्ष सत्ता को अपने में समा जाने को भी कहते हैं, जैसे, 'इन नयनों की पुतली में तू बनकर श्याम जमा जा रे।' प्रसाद जी का रहस्यवाद वास्तव में महादेवीजी की भाँति प्रणय मूलक ही है; उसमें जिज्ञासाभाव है, परोक्ष से एकाकार करने की उद्दाम लालसा है पर निराला जी की भाँति दार्शनिक चिंतन प्रधान नहीं। यद्यपि निराला जी भी परोक्ष सत्ता से अपना सम्बन्ध जोड़ने को उत्सुक हैं परन्तु उन्होंने दार्शनिक चिंतन के आधार पर अपना उसके साथ सम्बन्ध स्थापित किया है; उसमें प्रणय भावना तथा भक्ति के लिये स्थान नहीं। इसी प्रकार पंतजी की आत्मा भी महा चेतन के लिये आकुल है—

'इस धरती के उर में है उस
शशि मुख का असीम सम्मोहन,
रोक नहीं पाते भू के तट
जीवन वारिधि का उद्वेलन।' —'स्वर्णकिरण'

पर पंतजी की स्वाभाविक रहस्य भावना प्रसाद, महादेवी और निराला की रहस्य भावना से भिन्न प्रकार की है। रहस्यात्मकता से अधिक कवि में दार्शनिकता के दर्शन होते हैं। पूर्ण रहस्यवादी की भाँति वे अपनी आत्मा को परोक्ष के साथ एकाकार नहीं कर सके हैं। कवि की रहस्य दृष्टि प्रकृति की आत्मा—जगत् के रूपों और व्यापारों में व्यक्त होने वाली आत्मा—की ओर जाती है, जो 'निखिल छवि की छवि है' और जिसका 'अखिल जग जीवन हास-विलास' है। प्रकृति के रम्य चित्रणों द्वारा उसने अज्ञात के दर्शन किए हैं, उसके साथ कवि का साक्षात्कार नहीं हुआ है। कवि में जिज्ञासा है पर साधक की सी साधना (परोक्ष के प्रति) तथा भक्त की सी अनुरक्ति नहीं। सच तो यह है कि पंत जी हिन्दी के छायावादी कवि हैं, न कि रहस्यवादी। अतः जहाँ कहीं उनकी रचनाओं में रहस्य भावना

उद्भूत हुई है, वहाँ जिज्ञासा भाव तो है, पर प्रणय-निवेदन नहीं। उनकी रहस्यवादी रचनाएँ प्रकृति मूलक हैं। अतः उनमें छायावादी तत्व अधिक हैं, रहस्यवादी कम। अब हम इन चारों कवियों की छायावादी प्रवृत्तियों का अवलोकन करेंगे। सर्वप्रथम छायावाद की व्याख्या करली जाय। आखिर छायावाद की विशेषता क्या है तथा रहस्यवाद के साथ इसका क्या भेद है। छायावाद प्रकृति में मानव जीवन का प्रतिबिम्ब देखता है; रहस्यवाद समस्त सृष्टि में ईश्वर का। ईश्वर अव्यक्त है अतः उसकी छाया देखी ही नहीं जा सकती, इसीलिए छाया मनुष्य की ही देखी जा सकती है। आधुनिक काल में छायावाद का नाम प्रायः रहस्यवाद के साथ लिया जा सकता है। दोनों में अनेक साम्य और वैषम्य है। छायावाद यदि एक लौकिक काव्य है तो रहस्यवाद एक आध्यात्मिक काव्य। विषय की दृष्टि से दोनों में अन्तर यह है कि छायावाद में आत्मा और आत्मा या ससीम और ससीम का सम्बन्ध रहता है। लेकिन रहस्यवाद में ससीम और असीम या आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध है। अर्थात् छायावाद के अन्तर्गत प्रकृति और मानव हृदय के बीच तादात्म्य की स्थापना होती है, परन्तु रहस्यवाद के अन्तर्गत विश्व-व्यापी अखण्ड चेतन सत्ता के प्रति प्रणय निवेदन होता है। छायावाद में चेतन सत्ता के प्रति जिज्ञासा, कौतूहल अथवा आकर्षण रहता है, लेकिन रहस्यवाद में विराट को अपना प्रियतम मान कर उसकी उपासना की जाती है। अतः प्रकृति में चेतना के आरोप को ही छायावाद कहते हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय भावों का आरोप भी छायावाद है। अतः छायावाद में तीन बातों का ध्यान रखना चाहिये—(१) छायावाद का सम्बन्ध प्रकृति से है, (२) प्रकृति में चेतना है, (३) तथा प्रकृति में उन समस्त भावनाओं का मिलना जो नर-नारी के जीवन में उत्पन्न होती हैं।

छायावाद में शृङ्गार के प्रति उपभोग का भाव न मिलकर, विस्मय का भाव मिलता है। इसलिए उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट और मांसल न होकर कल्पनामय है। सौन्दर्य कल्पना प्रकृति में, छायावाद की मुख्य भावना है। प्रकृति के साहचर्य ने उन्हें स्वप्नदर्शी, सौन्दर्य प्रेमी और कल्पना जीवि

बनाया। अब प्रकृति कवि के लिये उद्दीपन न रहकर उसके भावों का आलम्बन भी बनने लगी, और प्रकृति का संश्लिष्ट चित्रण किया जाने लगा। पंतजी जो कि विशेषतः छायावादी ही कवि हैं प्रकृति के सम्बन्ध से मानव हृदय के आन्तरिक सौन्दर्य को परखना चाहते हैं—

'देखूँ सब के उर की डाली,
किसने रे क्या क्या चुने फूल।'

प्रकृति और मानव दोनों से पंत जी प्यार करते हैं, इसी से उन्होंने दोनों की भावनाओं को एकाकार कर दिया है। मानव हृदय के सम्पूर्ण भाव उन्हें प्रकृति के कम्पन में दिखाई देते हैं। कभी वे प्रकृति में नारी सौन्दर्य की कल्पना करते हैं, कभी उन्हें अपने मानस की प्रतिच्छाया प्रकृति के अन्तर में दिखाई देती है और कभी वे उसकी ओर जिज्ञासा भाव से देखते हैं। कहना ठीक होगा कि पंत जी प्रकृति के बाह्य सौन्दर्य पर तो मुग्ध ही हैं, पर उसका आन्तरिक सौन्दर्य भी उन्हें कम आकर्षक नहीं लगता। चिन्तन प्रधान होने के कारण बाद में कवि प्रकृति के आन्तरिक सौन्दर्य का ही अधिक उपासक बन गया है। वह प्रकृति से चेतना ग्रहण करता है, उससे संवेदना पाता है, उससे प्रार्थना करता है तथा उसे एक शक्ति मानकर उसे मानव जगत में पुनः नव बसन्त लाने को कहता है। प्रकृति और मानव दोनों को पंत जी ने घुला मिला दिया है। देखिये किस प्रकार पंत जी स्वर्ण किरण को देख मानव कल्याण की कल्पना करते हैं:—

'स्वर्ण किरण, स्वर्ण किरण,
हंस मुख, आदित्य वरण,
धरती धरती पर चरण
हरती चिर छाया वरण,
चेतना पथ से विचरण,
करतीं मङ्गल वितरण !'

पंत जी ने प्रकृति की एक एक वस्तु में चेतना का अनुभव किया है, यदि ऐसा न हो तो वह फिर मानव के साथ किस प्रकार घुल मिलकर अपने भावों

का आदान प्रदान कर सकती है। प्रकृति के शरीर और आत्मा दोनों के पंत जी पारखी हैं। सरिता, सुमन, नक्षत्र, बादल आदि के सम्पर्क में वे आते हैं तो उनके रूप निहारने की अपेक्षा उन्हें उनके हृदय की बात सुनना अधिक आता है। 'वीणा' का एक छन्द देखिए—

'मैं भी उनके गीत सीखने
आज गई थी उसके पास,
उसके कैसे मृदुल भाव हैं
उज्ज्वल तन, मन भी उज्ज्वल।'

तथा उज्ज्वल नीलाकाश को देखकर उसमें प्रहरी से चमकते तारे के सम्बन्ध में वे लिखते हैं—

'जगके अनादि पथ-दर्शक वे
मानव पर उनकी लगी दृष्टि!' —'युगान्त'

छायावादी युग में अनेक कवियों ने प्रकृति में अभीप्सित सौन्दर्य की खोज की है। 'निराला जी' यमुना से प्रश्न करते हैं :—

'यमुने तेरी इन लहरों में
किन अधरों की आकुल तान,
पथिक प्रिया सी जगा रही है
उस अतीत के नीरव गान।'

प्रकृति आदि काल से ही मानव के साथ स्पन्दनों का आदान प्रदान करती रही है। छायावाद प्रकृति को मानव के दुख सुख में रोते हंसते देखता है :—

क्यों छलक रहा दुख मेरा
ऊषा के मृदु पलकों में?
क्यों उलझ रहा दुख मेरा
संध्या की घन अलकों में? —'प्रसाद'

जैसा कि सुश्री महादेवी जी वर्मा ने कहा है 'छायावाद का मूल दर्शन सर्वात्मवाद है—प्रकृति के अन्तर में प्राण चेतना की भावना करना सर्वात्मवाद की ही स्वीकृति है। छायावाद में समस्त जड़ चेतन को चेतना स्वरूप दिया गया है और यदि इसे दार्शनिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो वह निश्चय ही सर्वात्मवाद होगा। महादेवी जी का 'सान्ध्य गीत' में एक गीत देखिए जिसमें उन्होंने प्रकृति को व्यक्तित्व से पंडित देखा है:—

'जाग जाग सुके शिनीरी !
अनिलने आ मृदुल छोले,
शिथिल वेणी बंध खोले,
पर न तेरे पलक डोले,
बिखरती अलकें झरे जाते
सुमन वर वेषिनी री !'

प्रायः इन सभी छायावादी कवियों ने प्रकृति में एक चेतना का आभास पाया है। इन्होंने प्रकृति के बाह्य और आन्तरिक दोनों पक्षों के सौन्दर्य का निरीक्षण किया है। 'सदैव प्रकृति ने 'मानव' हृदय के साथ संवेदना प्रकट की है', यह सभी छायावादियों का विश्वास है। प्रकृति में चेतना का आरोप हो जाने के पश्चत् ये सभी बातें स्वतः सिद्ध हो जाती हैं। प्रकृति में चेतना है तभी तो वह मानव की ठीक सहचरी हो सकी है और तभी उसमें भी मानव जगत की भाँति आपसी सम्बन्ध चलते रहते हैं। पंत जी का एक सुन्दर चित्र देखिए—

'श्रमित तपित अवलोक पथिक को
रहती यों क्यों दीन मलीन ?
ऐ विटपी की व्याकुल प्रेयसि !
विश्व वेदना में तल्लीन।'

'ज्योत्सना' में जहाँ प्रकृति का एक विराट रूपक उपस्थित किया गया है, वहाँ अनेकों सम्बन्ध आपस में स्थापित किए गये हैं। निराला जी के

प्रकृति चित्रणों में भी गूढ़ भावनाएँ तथा जोवन व्यापी प्रकृति-तत्त्व विद्यमान रहते हैं, जैसे—

'देकर अन्तिमकर, रवि गए अपर पार,
श्रमित चरण आये, गृहिजन निज निजद्वार ।
अम्बर पथ से मंथर, संध्या श्यामा,
उतर रही पृथ्वी पर, कोमल पद भार ।"

जहाँ तक छायवाद का सम्बन्ध है वहाँ अब तक कवियों ने प्रकृति को अपने दृष्टिकोण से देखा था, पंत ने तथा अन्य छायावादी कवियों ने उसे निरपेक्ष दृष्टि से देखा है; अब तक उसे जड़ समझा जाता था । छायावादियों ने उसे चेतन माना । पंत जी छायावादियों से भी एक कदम आगे बढ़े और प्रकृति को एक स्वतन्त्र व्यक्तित्व ही दे डाला । प्रकृति की मुक्ति में अतः पंत जी का बहुत बड़ा हाथ है । जहाँ तक रहस्यवाद का सम्बन्ध है, पंत जी में उसके ह्रास की ही कहानी अधिक मिलती है, पर जहाँ छायावाद की चर्चा होती है वहाँ वे पूरे उतरते हैं । महादेवी जी की रचनाओं में छायावाद की अपेक्षा रहस्य भावना अधिक है । प्रकृति का अणु अणु, उनकी अपनी वेदना से व्याप्त है । निराला जी ने प्रकृति के सुन्दर संक्षिप्त चित्र दिए हैं तथा अध्यात्मवाद में दार्शनिक-चिंतन की गहनता मिलती है । प्रसाद जी ने रहस्य-वाद तथा छायावाद दोनों को पूरी तरह से निभाया है । यदि एक ओर उन्होंने प्रकृति को चेतना प्रदान करके उसके सुन्दर चित्र दिये हैं तो दूसरी ओर उन्होंने उसके द्वारा परोक्ष का आभास पाया है । इस प्रकार इन चारों महाकवियों की श्रेणी में 'प्रसाद' जी सर्व प्रथम रखे जा सकते हैं तथा शेष तीनों में से सर्व प्रथम महादेवी जी को, पुनः निराला और पंत को । पर इस प्रकार की श्रेणियाँ करना कुछ ठीक नहीं, सभी अपने अपने क्षेत्र में अद्वितीय ठहरते हैं ।

पंत शैली और प्रसाद में प्रकृति चित्रण



जीवन के आरम्भ काल से ही मानव प्रकृति के सम्पर्क में आता है। जब वह उत्पन्न होता है तो अपने चारों ओर वह प्रकृति की आभा को देखकर विहँस देता है। धीरे-धीरे जब शिशु का ज्ञान विस्तृत होता है तो वह उसकी आश्चर्यमयी सुषमा को देखकर मंत्रमुग्ध-सा हो जाता है। वस्तुतः ज्ञान और चेतना के उदय-काल से ही मानव उसके प्रति चिंतनशील है। मानव के लिए प्रकृति का सहवास अत्यन्त कोमल एवम् आनन्दमय है और प्रकृति में ही मनुष्य के सुकुमार मनोभावों तथा वृत्तियों के परितोष के लिए समुचित सामग्री है। अतः मानव को सर्वप्रथम काव्य की प्रेरणा प्रकृति निरीक्षण से ही मिली होगी। मानव और प्रकृति में आरम्भ काल से ही रागात्मक सम्बन्ध रहा है। सचमुच प्रकृति में एक जीवित जाग्रत शक्ति विद्यमान है। अँग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ का कथन है—"The slightest impulse in the vernal wood would tell you more of man and the world than any sage or volumes of book can tell you." प्रकृति सदैव ही मानव को प्रेरणा देती है, उसके दुख में संवेदना प्रकट करती है तथा उसके हृदय के गीले जख्मों पर मरहम का काम करती है। अतः मानव उसके प्रभाव से किसी प्रकार से नहीं बच सकता। यही कारण है कि प्रत्येक कवि किसी न किसी रूप में प्रकृति का चित्र अवश्य ही अंकित करता है। संस्कृत साहित्य में प्रकृति का जितना उच्चकोटि का चित्रण किया गया है उतना हिन्दी साहित्य में नहीं। इस दिशा में अंग्रेजी साहित्य

पर्याप्त बढ़ा चढ़ा है। हिन्दी कवियों का दृष्टिकोण प्राचीनकाल से लेकर आधुनिक काल के पूर्व तक अस्वाभाविक सा रहा है, पर हाँ कहीं कहीं पर इसके अपवाद अवश्य मिलते हैं। आधुनिक काल का आरम्भ होने पर भी भारतेन्दु जी का प्रकृति के प्रति वही दृष्टिकोण रहा जो रीतिकाल के कवियों का था। इस युग में भाव, वस्तु तथा भाषा सम्बन्धी समस्याओं का निदान हुआ और जातीयता ने राष्ट्रीयता का बाना पहना, पर नवयुग की आलोक रश्मियाँ प्रकृति के अन्तर्मन में नहीं प्रवेश पा सकीं। भारतेन्दु युग के कवि प्रकृति के वाह्य रूप पर इतने मुग्ध रहे कि उसके हृदयगत सौन्दर्य का रसास्वादन नहीं कर सके। छायावादी युग ने प्रकृति को नवीन ढंग से देखा है और यही कारण भी है कि छायावादी युग के कवियों ने प्रकृति के जितने सुन्दर चित्रण दिये हैं उतने अन्य कालों के कवियों ने नहीं। 'प्रसाद' जी प्रभात के सदृश इन सबों में अग्रणी हैं और आँसू, झरना, लहर, कामायिनी में उनका प्राकृतिक चित्रण और दृष्टिकोण पूर्ण स्पष्ट हो जाता है। नवीन हिन्दी कविता पर अँग्रेजी का स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है। अँग्रेजी के प्रभाव से हिन्दी कविता अन्तर्वृत्ति-निरूपिणी (Subjective) हो गई है। शैली कीट्स और वर्डस्वर्थ की कुछ रचनाएँ इसी प्रवृत्ति पर की गई हैं। उपर्युक्त कवियों में से वर्डस्वर्थ और कालरिज का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है, पर पंत जी पर शैली का ही प्रभाव अधिक जान पड़ता है। वर्डस्वर्थ और कालारिज दोनों की प्रवृत्ति प्रकृति में परोक्ष सत्ता का संकेत पाने की ओर थी। हिन्दी में भी यह प्रवृत्ति स्पष्ट है। महादेवी जी की प्रवृत्ति प्रकृति के हृदय में निवास करने वाली शक्ति का दर्शन करने की ओर कितनी स्पष्ट है। देखिए :—

"तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज से,
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में।
सुरभि बन जो थपकियाँ देता मुझे,
नींद के उच्छ्वास सा वह कौन है।

इसी प्रकार प्रसाद जी भी प्रकृति को चेतन और विश्वात्मा की अनुभूति

मानते हैं और मानवता के व्यापकत्व की ओर ध्यान रखकर प्रकृति से जीवन ग्रहण करते हैं। वे लिखते हैं:—

"नील नीरद देखकर आकाश में
क्यों खड़ा चातक रहा किस आस में ?
क्यों चकोरों को हुआ उल्लास है ?
क्या कलानिधि का अपूर्व विकास है ?"

और फिर कवि पंत को तो कवि बनाने का श्रेय ही प्रकृति पर है। वे प्रकृति की क्रोड़ में जन्मे, उसी में खेले और अब उसी की गोद में चिर शांति पाने की अभिलाषा भी रखते हैं! स्वयं कवि ने स्वीकार किया है:—कविता करने की प्रेरणा मुझे सब से पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्म भूमि कूर्मांचल प्रदेश को है।" पंत जी को प्रकृति के तन-मन का सहज ज्ञान है, क्योंकि उन्होंने उसके सूक्ष्म स्पंदनों की धड़कन सुनी है और कवि की प्रतिभा ने प्रकृति के रम्य प्रांगण में रास रचाया है। और यही कारण है कि पंत जी ने प्रकृति को चेतन माना है। उसमें मानव हृदय की संवेदनशीलता है, क्योंकि वह मानव-हृदय के प्रेम को समझने में समर्थ है। प्रायः सभी छायावादी इस भावना से प्रभावित हैं। पंत जी ने प्रकृति को आलम्बन रूप में स्वीकार करके प्राचीन रूढ़ि को तोड़ डाला है। इसमें भी महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया है वह यह है कि प्रकृति में चेतना का आरोप किया गया है तथा उसे वाणी भी दी गई है। तीसरी उनकी विशेषता यह है कि प्रकृति पर उन्होंने सब से अधिक लिखा है। 'वीणा' से लेकर 'उत्तरा' तक सभी काव्य उनके प्रकृति-प्रेम के परिचायक हैं। छाया, प्रकाश, संध्या, प्रभात, नक्षत्र, चाँदनी, सूर्य-चन्द्र, पशु-पक्षी, निर्झर-सरिता, लहर-सरोवर, ओस हरीतिमा, लता-सुमन, बादल-पवन, सावन-शरद, पतझर-बसंत, पर्वत-समुद्र, पृथ्वी, आकाश—सब पर उन्होंने सफलतापूर्वक लेखनी चलाई है। उनका प्रथम ग्रन्थ 'वीणा' ही लीजिए। इसमें कवि ने स्वयं को एक छोटी बालिका के रूप में चित्रित किया है और प्रकृति के तत्वों को सजीव मानकर वह उनसे अनेक प्रकार के प्रश्न करता है। यहाँ विशेष रूप से कवि में दो प्रवृत्तियाँ

देखने को मिलती हैं—एक–एकाकार की प्रवृत्ति और दूसरी–अनुकरण की प्रवृत्ति। अनुकरण की प्रवृत्ति के वश होकर वह प्रकृति से अनुकरणीय गुणों को अपने जीवन में ग्रहण करता है जैसे सरिता से उज्ज्वलता का गुण, छाया से शीतलता का गुण इत्यादि। 'वीणा' का कवि पहले प्रकृति के प्रति जिज्ञासा भाव लेकर चला है और फिर वह उसके गुणों पर रीझकर उसमें एकाकार हो जाता है। 'पल्लव' तो प्रकृति की सुन्दर चित्रशाला ही है। 'पल्लव' की कुछ रचनाएँ तो पुराने विषयों पर ही है—जैसे–छाया, निर्झर, विहग पर कवि ने यहाँ अनेक नवीन विषय चुने हैं जैसे—बादल, वीचि, नक्षत्र, पवन, बसंत, मधुकरी आदि। 'वीणा' और 'पल्लव' की प्रकृति परक रचनाओं में एक अन्तर है और वह यह कि 'पल्लव' की रचनाएँ अधिकाँश वर्णनात्मक हो गई है और भावना जैसे दब सी गई हैं पर 'वीणा' में भाव पक्ष पूर्ण रूप से उभर कर आया है। 'पल्लव' में किसी वस्तु के प्रति जितनी कल्पनाएँ सम्भव हो सकती हैं कवि ने सब कर ली हैं। 'गुञ्जन' में कवि, जीवन के प्रति आमुख हुआ है। इसमें प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ सौन्दर्य और आनन्द की भावना से परिपूर्ण है। इन पर नारी भावना का आरोप स्पष्ट है। 'गुञ्जन' तक आते आते कवि विचार प्रधान हो उठा है, अतः गुञ्जन की प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ भी विचार प्रधान हो उठी हैं। 'पल्लव' की भाँति यहाँ प्रकृति के शुद्ध चित्र अंकित नहीं किए गये हैं प्रत्युत किसी विचार अथवा दर्शन भाव को व्यक्त करना ही गुञ्जन की रचनाओं में जैसे कवि का लक्ष्य बन गया है 'एक तारा, तथा 'नौकाविहार' रचनाएँ इसी कथन का प्रमाण हैं। पंत जी के मन की भावनाएँ इन रचनाओं में अभिव्यक्ति हुई हैं। चाँदनी उनके लिए 'जग के दुख दैन्य शयन पर यह रुग्ण जीवन वाला' है और एक 'झर गई कली, झर गई कली' जैसे गीतों में मनुष्य की आत्महत्या वाली प्रवृत्ति पर आरोपण है। यह एक प्रलंवित रूपक है जिनमें मानवीकरण बहुत सफलता के साथ अंकित है।" आगे चलकर तो 'युगान्त' की प्रकृति परक रचनाओं में मानवतावाद का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है। यहाँ कवि प्रकृति से प्रार्थना करता है कि यह मानव जगत के तमस का नाश करदे। 'कोकिल' से कवि पावक कण बरसाने की कहता है जिससे संसार की जीर्ण रूढ रीतियाँ

भस्म हो जाएँ और दूसरी ओर वह तारों से निवेदन करता है कि वे जग के तम में आलोक विकीर्ण करदें। 'मानव' जी के शब्दों में प्रकृति का यह पूर्णतः नवीन प्रयोग है। 'युगवाणी' में आकर 'मानव' अधिक चित्रण का विषय बन गया है। युगान्त से ही यह बात आरम्भ हो गयी थी; 'सुन्दर हैं विहग' सुमन सुन्दर, मानव ! तुम सबसे सुन्दरतम !' कवि का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण बदल रहा है। इस संग्रह में केवल १० या ११ प्रकृति पर लिखी गई रचनाएँ हैं। ये भी वस्तुतः वर्णनात्मक नहीं हैं।' चिंतन के क्षेत्र में बौद्धिकता की ओर झुकते हुए पंत जी अब प्रकृति की निरक्षेप सत्ता नहीं जानते। बल्कि उसे समाजगत मानव के परि पार्श्व में, उसके सही प्रक्षेपण के साथ प्रस्तुत करते हैं।—प्रभाकर माचवे। अतः प्रकृति वस्तुतः प्राकृतिक शक्ति के अर्थ में प्रयुक्त है। 'ग्राम्या' में तो ग्राम जीवन के चित्र ही अंकित किए गये हैं। 'ग्राम्या' और युगवाणी का सन्देश प्रायः एक सा ही है। इस संग्रह में विशेष रूप से 'ग्राम श्री' और 'संध्या के बाद' दो सुन्दर प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ हैं। 'ग्रामश्री' रचना में गाँवों की सब्जी, पौधे और पक्षियों के अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलते हैं। पक्षियों के वर्णन का एक उदाहरण देखिए—

'बालू के साँपों से अंकित गंगा की सतरंगी रेती
सुन्दर लगती सरपत छाई तट पर तरबूजों की खेती।
अंगुली की कंघी से बगुले कलंगी संवारते हैं कोई
तिरते जल में सुरखाव, पुलिन पर मगरौठी रहती सोई।
डुबकियाँ लगाते सामुद्रिक, धोतीं पीली चोंचें धोबिन,
उड़ अबाबील, टिटहरी, बया, चारा चुगते कर्दम, कृमि, तृन।'

'स्वर्णकिरण' में प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ भिन्न प्रकार की हैं। 'हिमालय' शीर्षक की रचना में व्यक्तिगत सम्पर्क और अनुराग की गंध अधिक है। हिमालय को कवि ने अपना शिक्षक स्वीकार कर लिया है। 'हिमाद्रि और समुद्र' में हिमगिरि और सागर दोनों की तुलना है। कवि एक को आत्मा का गौरव कहता है तथा दूसरे को मन का आन्दोलन। कुछ रचनाएँ जैसे 'पूषण' और कौवे के प्रति' उपदेश—वृत्ति को लेकर लिखी गई हैं। 'मत्स्य-

गंधाएँ' रचना कवि के मानसिक आदर्श की प्रतिष्ठा में लिखी गई हैं। यहाँ आकर मानव और प्रकृति एक हो गए हैं। स्वर्णधूलि में प्रकृति सम्बन्धी रचनाएँ बहुत ही कम हैं। यहाँ कवि की दृष्टि प्रकृति को छोड़कर अध्यात्म के सूक्ष्म विवेचन में, नव-मानवतावाद के उद्घाटन में रम रही है। वहाँ सर्वत्र कण कण में 'स्वर्णधूलि' सी छायी है। कवि का उल्लास यहाँ आकर लुप्त हो गया है और उस पर उदासी छा गई है तभी तो वह चाँदनी को देखकर कहता है :—

'शरद चाँदनी!
विहँस उठी मौन अतल,
नीलिमा उदासिनी!
जगी कुसुम कलि थर् थर्
जगे रोम सिहर सिहर।
शशि असि सी प्रेयसि स्मृति,
जगी हृदय ह्लादिनी।'

'उत्तरा' में कवि के मन में युगविषाद भर गया है और उसकी शैली भी दुरुह बन गई है। 'उत्तरा' में 'शरद' और 'वसंत' को उसी प्रकार अपनाया गया है जैसे 'स्वर्णधूलि' में वर्षा को। मानवीकरण के रूप में शरद ऋतु के कहीं कहीं पूर्ण नारी चित्र अत्यंत भव्य उतरे हैं। यहाँ प्रकृति से अधिक मानव प्रमुख हो गया है। प्रकृति चित्रों पर दर्शन अधिक से अधिक घिरकर छा रहा है। एक चित्र उदाहरणार्थ देखिए—

'लो आज झरोखों से उड़ कर
फिर देवदूत आते भीतर
सुर धनुओं के स्मिति पंख खोल
नव स्वप्न उतरते जब भू पर
रंग रंग के छाया जलदों सी
आभा पंखड़ियाँ पड़ती झर

फिर मनो लहरियों पर तिरती
बिंबित सुर अप्सरियाँ निःस्वर।' —'निर्माणकाल'

कवि पंत की प्रकृति के क्षेत्र में सब से विशेष बात है, 'ज्योत्स्ना' में प्रकृति के कल्याणकारी स्वरूप का चित्रण करना ! संसार को स्वर्ग बनाने के स्वप्न सदृश 'ज्योत्स्ना' भी एक स्वप्न है। प्रकृति का वास्तव में, इतना विराट रूपक आज तक हिन्दी में किसी ने प्रस्तुत नहीं किया। कवि देखता है। "इस युग के मनोजगत में सर्वत्र ऊहापोह और क्रांति मची हुई है। धर्मान्धता, अंध-विश्वास और जीर्ण शीर्ण रूढ़ियों से युद्ध चल रहा है। विकासवाद के दुष्परिणाम से भौतिक ऐश्वर्य पर मुग्ध एवम् इन्द्रिय सुख में मग्न मनुष्य जाति समस्त वेग से जड़वाद के गर्त को ओर उन्मुख हो रही है। ऐसी भयंकर स्थिति में प्रकृति ही रोकथाम करती है। सम्राज्ञी ज्योत्स्ना किरणों के यान पर छायापथ से भूलोक के निकट उतरती है, वायु द्वारा संसार की स्थिति का ज्ञान प्राप्त करती है। सम्राज्ञी की आज्ञा से स्वप्न और कल्पना सुप्त मनुष्य जाति के मनोवेग लोक में प्रवेश कर मनुष्यों में नवीन संस्कार एवम् नवीन भावनाएँ जाग्रत करते हैं। 'नवयुग' का निर्माण होता है।" नाटक संशय की संध्या में प्रारम्भ होकर सुख के प्रभात में समाप्त होता है :—

'लो जग की डाली डाली पर,
जागी नव जीवन की कलियाँ !'

इस प्रकार का लोक कल्याण भावना से परिपूर्ण कल्पना-प्रसूत प्राकृतिक चित्रण हिन्दी साहित्य जगत में अद्वितीय ठहरता है। पंत जी ने प्रकृति का चित्रण अनेक रूपों में किया है जिसके कुछ उदाहरण हम अब देखेंगे, पंत जी ने चित्रात्मक प्रणाली के आधार पर प्रकृति के हू-बहू चित्र अंकित किये हैं। एक चित्र देखिये :—

'रंग रंग के खिले फ्लाक्स, वर वीना, छपेंडियाथस,
नत दृग रेंग्टिह्वनम, तितली सी पेंजी, पापीसालस।'

प्रकृति की आत्मा में पंत जी एक ध्वनि पाते हैं जो निरन्तर बजती रहती है, तथा उन्हें प्रकृति की लय और गति का भी समुचित ज्ञान है। कवि के गति ज्ञान का एक उदाहरण देखिये :—

'सर तर भर - भर
रेशम के से स्वर भर
घने नीम दल
झूम झूम झुक-झूक कर
भीम नीम तरु निर्भर
सिहर सिहर थर थर थर
करता सर मर
चर मर मर।'

पंत जी का प्रकृति निरीक्षण अत्यन्त सूक्ष्म है, अतः उन्हें प्रकृति के अवयवों, हाव, भावों का पूर्ण ज्ञान है और यही कारण भी है कि उनकी रूप-चित्रण कला सुसंस्कृत हो गई है। 'नौका विहार', 'एकतारा', 'गंगा का प्रभात' आदि कविताएँ सुन्दर रूप चित्रण के उदाहरण हैं। 'नौका विहार' में कवि चाँदनी रात में कालाकाँकर की गंगा में बीचिविहार करने निकला है। गंगा की धारा इस प्रकार क्षीण होती गई है जैसे कोई दुबली पतली ऋषी-कन्या। 'नौका विहार' से एक अत्यन्त मूर्तिमान वर्णन देखिए—

"शान्त, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनंत, नीरव भूतल !
सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी हैं श्रान्त, क्लान्त, निश्चल !
तापस-बाला-गंगा-निर्मल, शशि मुख से दीपित मृदु-करतल,
लहरे उर पर कोमल कुन्तल।
गोरे अङ्गों पर सिहर सिहर, लहराता तार-तरल सुन्दर,
चंचल अंचल सा नीलाम्बर।

साड़ी की सिकुड़न सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर;
सिमटी है वर्तुल मृदुल लहर।"

इस संदर्भ में एक कुशल चित्रकार की तस्वीर बोलती है। प्रसाद जी भी प्रकृति के सौन्दर्य से बहुत आकर्षित हैं। प्रकृति के प्रति जिज्ञासा भावना कवि में सर्वत्र विद्यमान है और यही भावना रहस्यवाद को भी जन्म देती है तथा दूसरी ओर प्रकृति शोध के प्रति तत्परता रखती है। प्रसाद जी के प्रति तत्परता रखती है। प्रसाद जी के चित्र पंत जी की भाँति बहुत ही सजीव हो उठे हैं। कहना अनुचित न होगा कि प्रसाद जी कहीं कहीं इस क्षेत्र में पंत जी से आगे ही हैं। यथा :—

'नीले जलधर दौड़ रहे थे
सुन्दर सुरधनु माला पहने
कुञ्जर कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने
प्रवहमान थे निम्न देश में
शीतल शत शत निर्झर ऐसे
महाश्वेत गजराज गण्ड से
बिखरी मधुधारा जैसे।' —(कामायनी)

प्रकृति का प्रयोग आलम्बन के रूप में भी किया जाता है और उद्दीपन के रूप में भी। उद्दीपन के रूप में प्रकृति-चित्रण करना ही कवियों का अधिक स्वभाव रहा है। आलम्बन् के रूप में प्रकृति का प्रयोग भावों के उद्रेक के लिए किया जाता है। इस स्वभाव की कविताओं में 'पल्लव' की छाया शीर्षक कविता अत्यन्त ही प्रसिद्ध है। छायावृक्ष के नीचे सोई हुई है। अतीत की एक परिचित घटना का आरोप करते हुए पंत जी लिखते हैं :—

'कहो, कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरु के नीचे सोई?
हाय! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि! नल सा निष्ठुर कोई!

प्रकृति का उद्दीपन रूप में भी चित्रण देखिए :—

आज रहने दो गृह-काज
प्राण ! रहने दो गृह-काज !
आज जाने कैसी वातास,
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये, सालस–सालुस वातास
जगा रोओं में सौ अभिलाष ।'

यद्यपि इस प्रकार के उद्दीपन चित्रण पंत जी ने एक दो ही किये हैं पर जो भी हुए हैं वे अत्यन्त सुन्दर बन गये हैं। पंत जी ने प्रकृति की संवेदनशीलता के सुन्दर चित्र अंकित किये गये हैं। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि छायावाद-युग ने प्रकृति को जड़ न मानकर चेतना शक्ति माना जिसमें लय है, गति है, रंग है, हावभाव हैं तथा आत्मा है। वह हमें प्रेरित करती है, हमारे दुखों में संवेदना प्रकट करती है तथा हमारी सहचरी बनकर हमारे साथ खेलती है। संवेदनात्मक वर्णन में कवि की भावना प्रकृति के रूपों को अपने रंग में रंग देती है और भावाबेश में कवि को प्रकृति के रूप में अपनी प्रतिकृति दिखाई देती है। एक 'लहर' रचना से उदाहरण लीजिए—

अरी सलिल की लोल हिलोर !
यह कैसा स्वर्गिक उल्लास ?
सरिता की चंचल दृग–कोर !
यह जग को अविदित उल्लास !
आ, मेरे मृदु अंग झकोर,
नयनों को निज छवि में बोर,
मेरे उर में भर यह रोर !'

—'लहर'

और जब हृदय का प्रकृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तब कवि को प्रकृति से रहस्यात्मक संकेत मिलने लगते हैं। प्रकृति का अणु अणु किसी अपरोक्ष सत्ता की ओर संकेत करता हुआ दिखाई देता है। प्रत्येक

वीचि, प्रत्येक किरण तथा प्रकृति का हरेक रम्य दृश्य पुलक कर चिर महान् के मिलने के लिए उत्सुक दीख पड़ता है। यह 'जिज्ञासा भावना छायावादी कवियों में विशेष रूप से पाई जाती है। पंत जी का एक चित्र-जिज्ञासा से पूरित देखिए—

'स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा-नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन !

प्रसाद जी ने भी प्रकृति चित्रण की संवेदन प्रणाली को व्यवहार में लिया है। 'आँसू' में चित्रण की यह प्रणाली विशेष रूप से देखने को मिलती है। एक चित्र देखिए—

'तिर रही अतृप्ति जलधि में
नीलम की नाव निराली
काला पानी वेला सी
है अंजन रेखा काली।' —'प्रसाद' (आँसू)

तथा साथ ही कवि के सामने प्रकृति का विधान विशाल चिंतन का क्षेत्र प्रस्तुत करता है और उसकी सौन्दर्य भावना दर्शन में परिवर्तित हो जाती है—

"महानील इस परम व्योम में
अन्तरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह, नक्षत्र और विद्युतकण
किसका करते से संधान।" —'प्रसाद'

कवि प्रकृति के माध्यम से दार्शनिक भावों का प्रत्यक्षीकरण भी करता आया है, वह उसमें जीवन की नित्यता, अनित्यता, अमरता आदि भावों को

पाता है। कवि पंत दार्शनिक विचार धाराओं से प्रभावित रहा है। अतः पंत जी की रचनाओं में दार्शनिक चिंतत पर्याप्त रूप से विद्यमान रहता है। नौका-विहार' में कवि पंत का दार्शनिक चिंतन देखिए—

'ज्यों ज्यों लगती है नाव पार
उर में अवलोकित शत विचारं
इस धारा साही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्गम
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम
हे जग-जीवन के कर्णधार! चिर जन्म मरण के आर पार।
शाश्वत जीवन नौका विहार!'

प्रसाद जी में भी चिंतन प्रधान प्रकृति-रचनाओं की कमी नहीं हैं। कारण दोनों ही कवियों को जीवन में विषाद ने घेरा है और दोनों ने ही फलस्वरूप प्रकृति में चिंतन भावनाओं का आरोप किया है। एक छोटा सा चित्र प्रसाद जी का देखिये—

'सन्ध्या की मिलन प्रतीक्षा
कह चली कुछ मनमानी
ऊषा की रिक्त निराशा
कर देती अन्त कहानी।'

साथ ही साथ पंत जी ने प्रकृति चित्रण की उपदेशात्मक प्रणाली तथा प्रतीकात्मक चित्रण प्रणाली को व्यवहार में लिखा है और दोनों प्रणालियों में सुन्दर रचनाएँ की हैं परन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषताएँ है प्रकृति में मानवी-करण की भावना। प्रसाद जी ने भी इस प्रणाली का सुन्दर ढंग से प्रयोग किया है। दोनों कवि पुंगवों से एक एक उदाहरण देखिए। पंत जी की संध्या सुन्दरी का संश्लिष्ट चित्र देखिए—

'कौन तुम रूपसि, कौन ?
व्योम से उतर रही चुप चाप
छिपि निजि छाया छबि में आप।

सुनहली फैला केश कलाप,
मूंद अधरों में मधुपा-लाप।
पलक में निमिष पदों में चाप,
भाव संकुल वंकिम भ्रू-चाप
ग्रीवा तिर्यक चम्पक्-द्युति गति,
नयन मुकुलित नत मुख जल जात !'

प्रसाद जी का एक चित्र का भाव नीचे देखिए :—

"सिन्धु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी सी;
प्रलय निशा की हल चल स्मृति में
मान किये सी ऐंठी सी।"

इस प्रकार प्रसाद जी और पंत जी दोनों ही मानते हैं कि प्रकृति में सौन्दर्य की कोई कमी नहीं है, न्यूनता है उसको परखने वाले हृदद की। प्रसाद और पंत दोनों ने ही प्रकृति को कहीं स्वच्छ रूप में, कहीं उद्दीपन और आलंबन रूप में (विशेषतः पंत जी ने), कहीं मानवीय रूप में, कहीं दार्शनिक रूप में और कहीं मंगलमय रूप में निहारा है।

जिस प्रकार पंत जी इधर हिन्दी साहित्य में प्रकृति चित्रण के क्षेत्र में प्रसाद जी के समक्ष रखे जाते हैं, उसी प्रकार अंग्रेजी साहित्य में उन्हें शैली के साथ मिलाया जाता है। या यूँ भी कहा जा सकता है कि शैली के काव्य का प्रभाव पंत जी पर विशेष रूप से पड़ा है। दोनों कवि दो विभिन्न देशों के होकर भी बहुत कुछ साम्य भावनाएँ रखते हैं। विशेषतः प्रकृति के क्षेत्र में दोनों कवियों ने प्रकृति के सौन्दर्य का अंकन अत्यंत सीधी साधी रेखाओं से किया है। दोनों ही कवि प्रकृति के सौन्दर्य को देखकर आत्मविभोर हो उठते हैं, दोनों पर ही प्रकृति को देखकर सम्मोहन-सा छा जाता है। कहना ठीक ही होगा कि शैली और पंत ने कहीं कहीं तो अपने प्राणों का समस्त रस उड़ेल कर सूखी वस्तुओं का सिंचन किया है और अपनी अन्यतम

सृजन शक्ति से निर्जीव प्राणों में भी जान डाल दी है। दोनों के हृदयों में एक जिज्ञासा भाव भरा हुआ है तथा दोनों ने प्राकृतिक चित्र सूक्ष्म कल्पना द्वारा रंगे हैं। चाँदनी कविता में चाँदनी की कल्पना द्वारा एक नारी की भाव-भंगी का कैसा सजीव चित्र खींचा है—

"नीले नभ के शतलद पर वह बैठी शारद हासिनी
मृदु करतल पर शशि मुख धर अनिमिष एकाकिनी।"

शैली ने भी प्रकृति की सीमा में एक अव्यक्त सत्ता का आभास देखा है। 'टुनाइट' (To night) कविता में कविता की मधुरता के साथ अन्त-र्भावों का सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है। 'दि स्काइ लार्क' (The Sky Lark), दि वेस्ट विंड (The West wind) और 'दि क्लाउड' ('The Cloud) कविताएँ कवि की आत्म भाव की सुन्दर रचनाएँ हैं। 'दी वेस्ट विंड' में दार्शनिक कवि कहता है 'कि ओ हवा पत्तों की भाँति मुझे भी उड़ाकर ले चल और मेरी निर्जीव भावनाओं को पृथ्वी तल पर बिखेर दे।' क्यों कि कवि को नव जीवन लाने की आकांक्षा है। शैली का 'स्काइ लार्क' उसकी ऊर्ध्वगामी वृत्तियों का दिग्दर्शन है और 'दि क्लाउड' में आत्मा की पुकार है। पंत जी की 'बादल', 'समुद्र' आदि रचनाएँ शैली के अनुकरण पर ही लिखी गई हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनों कवियों की भावनाओं में बहुत कुछ साम्य है। पंत, प्रसाद और शैली तीनों ने प्रकृति में एक चेतन सत्ता का आभास देखा है; तीनों के लिये प्रकृति ने उनके दुख में संवेदना प्रकट की है तथा तीनों ने प्रकृति को विभिन्न रूपों में देखा है। तीनों कवियों में बहुत कुछ साम्य भावना देखने को मिलती है।



पंत जी की भाषा-शैली



भाषा के सम्बन्ध में सर्वप्रथम पंत जी के अपने शब्दों को ही निहारिए—'भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है—यह विश्वास ही हृदतन्त्री की झंकार है जिसके स्वर में यह अभिव्यक्ति पाता है।' इस दृष्टिकोण को सामने रखते हुए उन्होंने अपनी भाषा को अधिक से अधिक लय, तान और संगीत के निकट लाने की चेष्टा की है। उनकी भाषा कोमल है तथा वह उनके हृदय के भावों को प्रकट करने में पूर्ण सफल भी हुई है। उनकी भाषा थोपी हुई नहीं है, प्रत्युत उनके भावों के साथ साथ चलने वाली है। यद्यपि उनकी भाषा संस्कृत के तत्सम् शब्दों को लिए चलती है, पर फिर भी उसमें निरन्तर कोमलता एवम् मधुरता का ध्यान रखा गया है। पंत जी एक भावुक और संवेदन शील प्राणी हैं तथा साथ साथ कवि भी और जब कभी उनके भावों में उफान आता है तब उसे व्यक्त करने में उनकी सहायक होती है उनकी भाषा और शैली। भाषा, अतः वह साधन है जिसके द्वारा कवि अपने हृदयगत भावों को प्रकाशन देता है। इसी से भाषा की शक्ति अपरिमित है। और शैली वह अभिव्यंजना पद्धति है जिसके द्वारा कोई काव्य-रचना आकर्षक, मोहक तथा प्रभावोत्पादक बन जाती है। शैली के अन्तर्गत, अलंकार, रीति ध्वनि, शब्द शक्ति, वृत्ति आदि सभी कुछ आ जाते हैं। अतः यह निसंदेह मानना पड़ता है कि भावों के प्रकटीकरण का सर्व श्रेष्ठ साधन भाषा ही है। भाषा भावों का आभूषण है। भावों का रूप विधान इसी के द्वारा होता है। तथा इसी के द्वारा कलाकार की सूक्ष्म-ग्रहिणी शक्ति

का यथार्थ ज्ञान भी प्राप्त होता है। जिस कलाकार की यह शक्ति जितनी परिष्कृत एवम् परिमार्जित होगी उतनी ही उसके भावों में प्रभाव (Appealing) की क्षमता भी होगी। काव्य के क्षेत्र में भाव और कला का संतुलन निरन्तर साधना से ही उपलब्ध होता है। प्राचीन हिन्दी काव्य में कबीरदास जी में कला बहुत न्यून है। जायसी में कुछ विकसित है और बिहारी में कला का आधिक्य है। और सीमा से आगे जाने पर यही कला केशव में खंडित हो गई है। मीरा में भाव का अबल वेग है, सूर में वही आवेश कुछ नियन्त्रित होकर व्यक्त हुआ है और अष्टछाप के कवियों में हृदय की ऊष्णता और भी कम होती गई है। भाव और कला का विलक्षण संयोग यदि कहीं पाया जाता है तो केवल तुलसीदास जी में। पंत जी के सम्बन्ध में 'मानव' जी के शब्द देखिए—"पंत जी की समस्त काव्य कृतियों पर यदि विचार करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाय, तो यही कहना पड़ेगा कि उनमें भाव यद्यपि कहीं एक दम मिट तो नहीं गया, पर वह चिंतन के सामने बराबर दबता चला गया है। जहाँ तक कला का सम्बन्ध है वह धीरे धीरे विकसित और प्रौढ़ होती चली गई है। पंत जी खड़ी बोली के कवि हैं। जिस प्रकार छायावाद युग ने काव्य-साहित्य को इतिवृत्तात्मकता के प्रभाव से निकाल कर उसे नवीन भावना सौंपी, उसी प्रकार इस युग में आकर भाषा में भी ऐसी विलक्षणता आ गई कि वह सूक्ष्म से सूक्ष्म भावों को भी आत्मसात् करने में समर्थ हो गई। वैसे तो खड़ी बोली का आन्दोलन कब का ही आरंभ हो चुका था और गुप्त जी जैसे प्रतिनिधि कवि इसका रूप स्थिर कर चुके थे, पर पंत जी ने खड़ी बोली के स्थिर रूप को सकुमारिता के साँचे में ढाल दिया है। स्वयं पंत जी ने 'पल्लव' के प्रवेश में खड़ी बोली के पक्ष में लिखा है:—"अब ब्रजभाषा और खड़ी बोली के बीच जीवन संग्राम का युग बीत गया। हिन्दी ने अब तुतलाना छोड़ दिया है, वह प्रिय कहने लगी है। उसका किशोर कंठ फूट गया, अस्फुट अंग कट छट गये। ···· ···· मुझे तो उस तीन चार सौ वर्षों की वृद्धा (ब्रजभाषा) के शब्द बिलकुल रक्तमांसहीन लगते हैं; जैसे भारती की वीणा की झंकारें बीमार पड़ गई हों, उसके उपवन के लहलहे फूल मुरझा गये हों। खड़ी बोली आगे की स्वर्णाशा है, उसकी बाल-

काल में भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है। वह हमारे भविष्याकाश में स्वर्गगंगा है, यह समस्त भारत की हृत्कंपन है। हमें भाषा नहीं, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है; पुस्तकों की नहीं मनुष्यों की भाषा; जिसमें हम हँसते रोते, खेलते कूदते, लड़ते, गले मिलते, साँस लेते और रहते हैं। जो हमारे देश की मानसिक दशा का मुख दिखलाने के लिए आदर्श हो सके; जो कालानिल के ऊँच नीच, ऋजु-कुञ्चित, कोमल-कठोर घात प्रतिघातों की ताल पर विशाल समुद्र की तरह शत शत स्पष्ट स्वरूपों में तरंगित—कल्लोलित हो, आलोड़ित–विलोड़ित हो, हंसती गरजती, संकुचित–प्रसारित होती, हमारे हर्ष-रुदन, विजय पराभव, चीत्कार-किलकार, संधि–संग्राम को प्रतिध्वनित कर सके, उसमें स्वर भर सके। यह अत्यन्त हास्यजनक तथा लज्जास्पद है कि हम सोचें एक स्वर में, प्रकट करें दूसरे स्वर में। हमारे मन की वाणी न हो; हमारे गद्य का कोष भिन्न, पद्य का भिन्न हो; हमारी आत्मा के सारे गाम पृथक् हो, वाद्य यंत्र के पृथक्; हमारी भावतन्त्री और शब्द तन्त्री के स्वरों में मेल न हो। मूर्धन्यष की तरह हमारे साहित्य का हृदय, वेश की आत्मा, एक कृत्रिम दीवार देकर दो भागों में बांट दी जाय।" अतः भाषा के सम्बन्ध में पंत जी के विचर पूर्ण रूपेण सुलझे हुए हैं। पंत जी का अध्ययन सभी दृष्टि से व्यापक है। वे शैली, कीट्स, वायरन, वर्डस्वर्थ, रवीन्द्र, अरविन्द, गांधी, मार्क्स आदि सभी से प्रभावित हुए हैं। उन्होंने सदैव ही भाषा को बोधगम्य, चित्रमय और सस्वर बनाने का प्रयत्न किया है। संस्कृति की व्यंजनापूर्ण तत्सम शब्दावली का प्राचुर्य होते हुए भी उन्होंने अपनी रचना के लिए ब्रजभाषा, फारसी, उर्दू, तथा अन्ग्रेजी के शब्दकोषों से भी सहायता ली है और उन्हें अपने साँचों में ढालकर कोमल, चित्रमय और कर्ण सुखद बनाया है। संस्कृत के अक्षय भण्डार से उन्होंने रंगीन शब्दों का ही चयन किया है। ब्रजभाषा के अजान, दई, दीठ, काजर, फारे; फारसी के नादान, चीज़ तथा अन्ग्रेजी के रूम इत्यादि शब्दों को अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। उन्होंने नवीन शब्द भी गढ़े हैं, जैसे स्वप्निल, प्रिय, सिगार, अनिर्वच आदि। वह सा, रे, गा आदि का प्रयोग भी स्वच्छन्द रूप से करते हैं, जिससे उनकी रचनाएँ संगीत-प्रधान बन गई हैं। उनके कुछ विचित्र प्रयोग भी

देखने को मिलते हैं, जैसे 'मनोज' शब्द। यह शब्द रूढ़ है कामदेव के अर्थ में, पर पन्त जी ने व्युत्पत्ति-अर्थ में इसका प्रयोग करके बापू के लिए सार्थक कर दिया है। 'अछूत' भी एक ऐसा ही शब्द है। प्रहसित, विहसति, स्मित, पुराचीन, प्राचीन आदि शब्दों की उपयुक्तता, भावों के लिए उनकी स्थानापन्नता एवम् सुधर मितव्यता उनके भाषा—सौष्ठव की विशेषता है। साथ ही पंत जी की भाषा में व्याकरण की कठोरता भी कोमल हो गयी है। कहीं कहीं पर उन्होंने व्याकरण के नियमों का भी उल्लंघन कर दिया है। कई शब्द पुल्लिंग से स्त्री लिंग और स्त्री लिंग से पुल्लिंग बना दिये गये हैं। संस्कृत के सन्धि नियमों में भी कहीं कहीं पंत जी ने परिवर्तन कर दिया है। 'मरुताकाश' उनका एक ऐसा ही शब्द है। ऐसा उन्होंने केवल शब्द और अर्थ में सामञ्जस्य स्थापित करने के लिए ही किया है। मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग भी उनकी भाषा में प्रचुरता से दीख पड़ता है। प्रायः पंत जी ने शब्दालंकार तथा अर्थालङ्कार दोनों ही प्रकार के अलंकारों का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। उपमा, रूपक, अनुप्रास, यमक, पूर्णोपमा, लुप्तोपमा, मालोपमा, पुनरुक्ति, स्मरण, उत्प्रेक्षा, संदेह, उल्लेख, दृष्टान्त, अपह्नुति, व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, अप्रस्तुत-प्रशंसा विरोधाभास, विभावना, निदर्शना, परिसंख्या, एकावली, प्रतीप, अत्युक्ति, तद्गुण, प्रश्न, स्वाभावोक्ति, संसृष्टि, संकर, मानवीकरण, विशेष, काव्यलिंग, ध्वन्यर्थ व्यञ्जना, विशेषण-विपर्यय इत्यादि सभी प्रकार के अलंकारों का प्रयोग प्रचुरता से उनकी रचनाओं में मिलता है। उनके अलंकार किसी भी रूप में केशव की भाँति थोपे नहीं गये हैं प्रत्युत वे स्वाभाविक रूप से भावों के पीछे पीछे प्रयुक्त हुए हैं। पंत जी ने तो स्वयं स्वीकार किया है कि वाणी की अभिव्यक्ति के लिए अलंकार की आवश्यकता नहीं :—

'तुम बहन कर सको जन मन में मेरे विचार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार !'

छंदों का प्रयोग पंत जी ने भाषा की भाँति स्वच्छंद रूप से किया है। कविता और छंद का घनिष्ठ सम्बन्ध है। कविता में छंदों का उपयोग नाद-

सौन्दर्य के लिए होता है। छंद के हेतु ही कविता कर्ण-सुखद होती है और साथ ही साथ वह भावोन्मेष भी करती है। पंत जी के प्रत्येक छंद में हम राग और संगीत की एक अविरल धारा का आभास पाते हैं। इसी हेतु पंत जी ने अपनी कविताओं के लिए मात्रिक छंद चुना है। स्वयं पंतजी ने स्वीकार किया है कि उनकी रचनाओं के छंद मात्रिक हैं, न कि वर्णिक। लेकिन वे कविता के प्रत्येक चरण को समान मात्राओं में रखने के पक्षपाती बहुत कम हैं। इसी से उन्होंने 'स्वच्छन्द छन्द' का आश्रय ग्रहण किया है। पंत जी ने 'उच्छ्वास', 'आँसू' और 'परिवर्तन' शीर्षक कविताओं में प्रत्येक चरण की मात्राओं में स्वच्छंदतापूर्वक परिवर्तन किये हैं। कभी एक चरण के बाद या कभी दो चरणों के बाद मात्राओं में घटाव-बढ़ाव किया गया है, जैसे :—

'हाय ! मेरा जीवन, ११
प्रेम औ आँसू के कण ! १३
आह मेरा अक्षय धन, १३
अपमिति सुन्दरता औ' मनन ! १५

इन पंक्तियों में तीन भिन्न प्रकार के छंद प्रयोग में लाये गये हैं। स्वच्छंद छंद के कलात्मक प्रयोग के सम्बन्ध में पंत जी के कुछ निश्चित सिद्धान्त हैं। भिन्न-भिन्न छंदों की भिन्न भिन्न गति होती है और तदनुसार वे रस-विशेष की सृष्टि करने में सहायता देते है। उनके रसानुकूल छन्दों का वर्गीकरण कुछ इस प्रकार है :—

करुण रस : वैतालीय, मालिनी, पीयूष वर्षण, रूपमाला, सखी, प्लवङ्गम, हरीगीतिका।
शृङ्गार रस : राधिका
वात्सल्य रस : चौपाई, अरिल्ल।
वीर रस : रोला।

पंत जी ने छंदों का आविष्कार किया है। उनके छंदों में एक प्रकार की स्वाभाविक गति अथवा लय (Rhythm) रहती है और वे भावों की गति

के अनुरूप ही रहते हैं। अतः पंत जी के छन्द प्रगतिशील एवम् विकासोन्मुख हैं। पंत जी की भाषा में सांकेतिकता भी है। उन्होंने बाह्य प्रभावों से प्रेरित होकर अपनी प्रतिभा के संयोग से हिन्दी की लाक्षणिकता और मूर्त्तिमत्ता को अत्यन्त समृद्ध और विकसित कर दिया है। सारांश में उन्होंने अपनी भाषा को काव्योचित बनाने से पूर्व हृदय के ताप में गला गलाकर कोमल, करुण, सरस, प्राञ्जल और सुन्दर बना दिया है। वस्तुतः उनकी भाषा में हिन्दी की समस्त शक्तियों का विकास हुआ है। वे भाषा के पूर्ण पण्डित हैं। अब हम उनकी भाषागत् विशेषताओं के कुछ उदाहरण देखेंगे। सर्वप्रथम लीजिए उनकी विशुद्ध तत्सम भाषा में लिखी गई रचनाओं में कोमल-कांतता को :—

'स्नेहमयि सुन्दरतामयि
तुम्हारे, रोम रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार ;
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि !
मुझे है स्वर्गागार !'

पंत जी द्वारा प्रयुक्त तत्सम-प्रधान भाषा में केवल कोमलता और मधुरता ही नहीं है, वरन् उसमें पौरुषेय भी है। एक उदाहरण 'परिवर्तन शीर्षक' कविता से देखिए :—

'एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयकर
समर छेड़ देता निसर्ग - संसृति में निर्भर ;
भूमि चूम जाते अभ्रध्वज सौध, शृङ्गवर ,
नष्ट - भ्रष्ट साम्राज्य - भूति के मेघाडम्बर !'

पंत जी ने केवल संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग नहीं किया है वरन् उन्होंने संस्कृत की पदावलियों का भी प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है, जैसे— 'एकोहं बहुस्याम'; 'पत्रं पुष्पम्'; 'नानृतं जयति', 'सत्यं मा भैः'; 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' इत्यादि, ऐसी पदावलियों का प्रयोग प्रायः पंत जी ने धार्मिक-वातावरण उपस्थित करने के हेतु ही किया है। अब उनकी

रचनाओं में अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग देखिए। सुन्दर शब्द-मैत्री के हेतु पंत जी ने बृजभाषा के शब्दों को काम में लिया है। इससे उनकी भाषा में अधिक कोमलता आ गई है, जैसे—

'नयन नलिन में बंधी मधुप-सी
करती मर्मर – मधुर – गुञ्जार।' —इत्यादि

पंत जी ने मधुरता के लिए चहुँ दिशि, छोर, दुराय, दई, दीठि, परस, नखत इत्यादि शब्दों का प्रयोग ब्रजभाषा से लिया है। भावों की अभिव्यं-जना पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने फारसी शब्दों का प्रयोग किया है। नादान, नाचीज़, शरमाना आदि फ़ारसी के शब्द हैं। यथा—

(१) 'वह सलाम करता झुक कर।'
(२) मजलिस का मसखरा क़रिंगा।

फेअरी क्वीन, मारगेरेट मृदु, विलियम शीन चिर पाटल
बटन रोज़, बहु लाल, ताम्र माखनी रंग के कोमल। –'ग्राम्या'

अँग्रेजी शब्दों का प्रयोग तो वास्तव में कवि ने ग्राम्या में ही किया है पर उन्होंने अँग्रेजी के साँचे में कहीं कहीं संस्कृत प्रत्यय लगाकर, कहीं स्वतंत्र रूप से कुछ सुन्दर ढंग गढ़े हैं, कहीं अंग्रेजी शब्दों से रूपांतरित और उनके आधार पर शब्द निर्मित किए हैं। पंत जी देशज शब्दों के प्रभाव से भी पूर्ण परिचित हैं। देशज शब्द हिन्दी भाषा की आत्मा हैं। देशज शब्दों की सरसता, स्वाभाविकता एवम् उपयोगिता को देख कर ही कवि ने उनको व्यव-हार में लिया है। ऐसे शब्द हैं—एँचीला, चैंच, खोंस, बगिया, छाजन, अम्बियों, चित्तियों आदि। पंत जी वर्ण विन्यास कला में पूर्ण पारंगत हैं। वर्ण विन्यास का अर्थ है कि काव्य रचना में एसे शब्द दिए जाएँ जिनमें सुन्दर वर्णों का समावेश हो; जैसे—

'प्रणय की पतली अंगुलियाँ क्यों किसी
गान से विधि ने गढ़ीं! जो हृदय की
बदल देती है भुलाकर मुग्ध कर।'

इस प्रकार पंत जी की भाषा में कोमल वर्णों की प्रधानता है। अच्छे वर्णों की योजना भाषा में मधुरता एवम् संगीतात्मकता ला देती है। संगीत मयी कोमल-कान्त पदावली का एक उदाहरण देखिए—

"शशि किरणों ने मोती भर भर गूँथी उड़ती सौरभ अलकें।
गूँजी मधु अधरों पर मँडरा इच्छाओं की मधुपावलियाँ॥"

—इन शब्दों में सरता, मधुरता, चित्रात्मकता सभी कुछ है। इस प्रकार का प्रयोग-दृश्य चित्र हमारे समक्ष उपस्थित कर देता है। उन्होंने कहीं कहीं शब्दों को नयापन दे दिया है। शब्दों को उन्होंने अधिक से अधिक मार्मिक बनाकर रखा है। पंत जी ने शब्दों की मार्मिकता को इस प्रकार व्यक्त किया है—अनिल से एक प्रकार की कोमल शीतलता का अनुभव होता है, जैसे खस की टट्टी से छन कर आ रही हो। वायु में निर्मलता तो है ही, लचीला-पन भी है। यह शब्द रबर के फीते की भाँति खिंचकर फिर अपने स्थान पर आ जाता है। वे ऐसे प्रयोग भी करते हैं :—

सर् सर् मर् मर् झन् झन् सन् सन्
गाता कभी गरजता भीषण
वन - वन उपवन पवन प्रभंजन

इसमें 'पवन' और 'प्रभंजन' के अनुरूप ही गाने और गरजने की बात कही गई है। दूसरी पंक्तियाँ देखिए:—

'आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ - श्लथ उच्छ्वास।
प्रिये लालस सालस वातास
जगा रोओं में सौ सौ अभिलाष॥'

यहाँ 'वातास' शब्द में जो मादकता भरी है वह रोम रोम में वासनात्मक अभिलाषा जगाने में पूर्ण समर्थ है और उसमें जो सालस गम्भीरता है वह न तो हवा में, न वायु में और नहीं पवन में है। पंत जी ने हिन्दी और

संस्कृत से ध्वन्यर्थ-व्यंजक (Onomato poetic) शब्दों को खोज खोज कर अपने प्रयोग में ले लिया है, जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपनी रचनाओं में स्तम्भित, उत्ताल तरंग, गुञ्जन, प्रकम्पन, स्पंदन, अट्टहास, झूमझूम, झर-झर, घर्घर नाद, झंकार, निःश्वास, मुखरित, कंपन, धूमिल, प्रशांत, उछृंखल रोर, हिलोर, उल्लास, चीत्कार, सनसन, आह, टलमल, गर्जन, चीत्कार, गरजना, गुन गुन, क्रन्दन, कलकल, छलछल आदि का प्रयोग किया है जिससे उनके काव्य में संगीत की सृष्टि हो गई है। जैसे :—

"गरज, गगन के गान ! गरज गम्भीर स्वरों में,
भर अपना सन्देश उरों में, औ' अधरों में ;
बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर सागर में
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षण भर में।"

पंत जी की शैली चित्रांकन शैली है। उन्होंने चुन चुनकर ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिनके द्वारा किसी भी भाव या वर्णन का चित्र उपस्थित होकर हमारी आँखों के सामने घूमने लगता है। पंतजी ने स्वयं लिखा है कि कविता के लिये चित्र भाषा की आवश्यकता होती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिये, जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर छलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सके, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हो, जिनका भाव-संगीत विद्युत् धारा की भाँति रोम रोम में प्रवाहित हो सके।' उनका एक एक शब्द एक एक चित्र उपस्थित करने में पूर्ण समर्थ है। यथा :—

'अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुप चाप,
जड़ित पद नमित पलक दृग-मात ;

पास जब आ न सकोगी प्राण !
मधुरता में सी भरी अजान
लाज की छुई मुई सी म्लान
प्रिये प्राणों की प्राण !'

लज्जाशील म्लान मुख वाली नायिका का वर्णन कितना सुन्दर बन पड़ा है। पंक्तियों को देखने पर ज्ञात होता है कि उनका प्रत्येक शब्द चित्र-रूप अंकित करने में समर्थ है। इसी प्रकार के उनके भाव चित्र भी हैं, यथा :—

'किन कर्मों की जीवित छाया
उस निद्रित विस्मृति के संग,
आँख मिचौनी खेल रही वह
किन भावों का गूढ़ उमंग।'

यहाँ भी कवि ने अमूर्त्त स्वप्न का मूर्त्त चित्र अंकित कर दिया है जिसमें उमंग आँख मिचौनी खेल रही है। एक भारत माँ का चित्र भी देखिये, इसमें कितनी सजीवता है।

'तीस कोटि संताप नग्न तन,
अर्ध क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,
नत मस्तक
तरु - तन - निवासिनी
भारत माता,
ग्राम वासिनी।'

इसमें प्रयुक्त शब्द चित्र उपस्थित करते हैं जो पाठकों के मानस में करुणा की लहर प्रवाहित करने में पूर्ण समर्थ हैं।

मुहावरों और लोकोक्तियों का काव्य में विशेष स्थान रहता है। इनके द्वारा भाषा में अधिक सजीवता एवम् विदग्धता आ जाती है। पंत जी की

प्रवृत्ति इनकी ओर अधिक नहीं रही है पर जहाँ कहीं भी इनका प्रयोग मिलता है, वह सुन्दर ढंग से किया गया है। स्मिथ का कथन है कि 'मुहावरे भाषा के जीवन की स्फूर्ति हैं। ये उसे जीवन ही प्रदान नहीं करते, वरन् सुन्दर भी बनाते हैं। मुहावरों के अभाव से वे असुन्दर, अरुचिकर और अशक्त हो जाती है। इन्हें कविता की बहिन समझना चाहिए।' पंत जी छायावादी कवि हैं अतः इनके मुहावरों के मूल में अधिकतर लाक्षणिक वक्रता सन्निहित रहती है। भावों की अभिव्यक्ति इनके द्वारा सबल हो जाती है पर तथ्यों की सूक्ष्म व्यंजना इनके द्वारा नहीं की जा सकती। फिर भी इनके मुहावरों का प्रयोग अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है। देखिये—

(१) आँखों से मत बिंधवाओ।
(२) साँप लोटते, फटती छाती।
(३) 'कभी चौकड़ी भरते, मृग से,
भू पर चरण नहीं धरते।'
(४) 'यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपांगों से अधिक है दीखता,
दूर होकर और बढ़ता है तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।'

साथ ही साथ पंतजी की सूक्तियाँ भी देखिये जिनकी बंदिश पर्याप्त सुन्दर और मर्मस्पर्शी है, यथा—

(१) 'हास में शैशव का संसार।'
(२) जग-जीवन में है सुख दुख
सुख दुख में है जग जीवन।' —इत्यादि

काव्य को रसमय बनाने में गुणों का बहुत बड़ा हाथ रहता है। 'गुण वे ही हैं जो रस के धर्म हैं और जिनकी स्थिति रस के साथ अचल है। पंत जी ने माधुर्य, ओज तथा प्रसाद तीनों गुणों का प्रयोग सफलतापूर्वक किया है।

माधुर्य गुण का उदाहरण :— 'एक कलिका में अखिल बसन्त,
धरा पर थीं तुम स्वर्ग पुनीत।'

ओज गुण का उदाहरण :— 'बजा लोहे के दंत कठोर नचाती
हिंसा जिह्वा लोल।'

प्रसाद गुण का उदाहरण :— सिखादो न हे मधुप कुमारि
मुझे भी अपना मीठा गान
कुसुम के चुने कटोरों से करा
दो ना कुछ - कुछ मधुपान।'

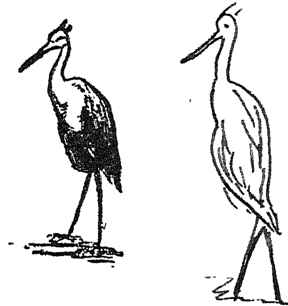
जहाँ तक रसों का सम्बन्ध है उसमें भी पंत जी की प्रतिभा अद्वितीय है। शृङ्गार रस में तो उनकी प्रतिभा खूब निखरी है। इसके संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों पर कवि ने लिखकर अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'आज रहने दो यह गृह काज' तथा 'कब से विलोकती तुमको' दोनों संयोग और वियोग शृङ्गार की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। साथ ही साथ 'ग्रन्थि' में विफल प्रणय की सुन्दर गाथा अंकित की गई है। पंतजी के काव्य में शांत रस की अधिकता है। शृङ्गार रस के पश्चात् पंतजी ने इसी रस को निखारा है। 'सुख दुख' शीर्षक कविता में इसी रस की अभिव्यक्ति मिलती है। 'नौका विहार' कविता में भी शांत रस सुन्दरता के साथ रखा गया है-—

'मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत् प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।
शाश्वत् जीवन नौका विहार।'

इनके अतिरिक्त 'नित्य जग', 'अनित्य जग', 'तप', 'उर की डाली', 'चाँदनी', 'ताज' में भी शांत रस के दर्शन होते हैं। साथ साथ अद्भुत रस तथा वीभत्स और रौद्र रस पर भी अपनी लेखनी कवि ने सफलता से चलाई है। अप्सरा में अद्भुत रस देखने को मिलता है। 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स एवम् शांत रस की पूर्ण योजना हुई है। वास्तव में पंत जी रसों के कवि नहीं हैं। उनके रस तो अन्तः प्रदेश के

भावों के साथ स्वतः आये हैं। यही कारण है कि कवि ने रस की बारीकियों की ओर ध्यान न देकर भावों के माध्यम से ही रसों की सृष्टि की है। अन्त में हम लेते हैं उनकी शैलियों को। उनकी कविताओं में शैलियों की अनेकों प्रणालियों को स्थान दिया गया है। कहीं 'मैं-शैली', 'कहीं वर्णनात्मक शैली', 'कहीं उद्बोधनात्मक शैली' आदि 'कहीं विचारात्मक शैली' के दर्शन उनकी रचनाओं में होते हैं। 'मैं-शैली' का उदाहरण 'गीति काव्य' और 'पंत शीर्षक' निबन्ध में काफी है। 'वे आँखें' पंतजी की वर्णनात्मक शैली का सुन्दर उदाहरण है। 'वर्णनात्मक शैली' में 'ग्रन्थि' की भी रचना की गई है। 'उद्बोधनात्मक शैली' के अन्तर्गत उनकी 'भारत माता', 'राष्ट्रगान', 'उद्बोधन' आदि शीर्षक की कविताएँ आती हैं। 'विचारात्मक शैली' के अन्तर्गत पंतजी की विचार प्रधान कविताओं को रखा जा सकता है। 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' रचनाएँ इसी शैली की हैं।

इस प्रकार पंत जी ने अपनी खड़ी बोली को विभिन्न गुणों से संवार कर अपने काव्य में रखा है जिसके कारण उनकी भाषा में मधुरता, सजीवता, कोमलता, लाक्षणिकता, व्यंगात्मकता, संगीतात्मकता तथा चित्रात्मकता सभी कुछ गुण आ गये हैं और उनकी काव्य भाषा सौन्दर्यपूर्ण एवम् सुकुमार हो उठी है।



'मैं और मेरी कला'



—पन्त

जब मैंने पहले लिखना प्रारम्भ किया था तब मेरे चारों ओर केवल प्राकृतिक परिस्थितियाँ तथा प्राकृतिक सौंदर्य का वातावरण ही ऐसी सजीव वस्तु थी जिससे मुझे प्रेरणा मिलती थी। और किसी ऐसी परिस्थिति या वस्तु की मुझे याद नहीं जो मेरे मन को आकर्षित कर मुझे गाने अथवा लिखने की ओर अग्रसर करती रही हो। मेरे चारों ओर की सामाजिक परिस्थितियाँ तब एक प्रकार से निश्चल तथा निष्क्रिय थीं, उनके चिर-परिचित पदार्थ में मेरे किशोर मन के लिए किसी प्रकार का आकर्षण नहीं था। फलतः मेरी प्रारम्भिक रचनाएँ प्रकृति की लीलाभूमि में लिखी गई हैं। पर्वत प्रान्त की प्रकृति के नित्य नवीन तथा परिवर्तनशील रूप से होकर—अनुप्रमाणित होकर मैं ने स्वतः ही जैसे किसी अंतर्विवशता के कारण पक्षियों तथा मनुष्यों के स्वर में स्वर मिलाकर, जिन्हें तब मैं ने 'विहग बालिका' तथा 'मधुबाला' कहकर सम्बोधन किया है, पहले पहल गुनगुनाना सीखा है।

मेरी प्रारम्भिक रचनाएँ 'वीणा' नामक संग्रह के रूप में प्रकाशित हुई हैं। इन रचनाओं में प्रकृति ही अनेक रूप धर कर चपल, मुखर नूपर बजाती हुई अपने चरण बढ़ा रही हैं। समस्त काव्य पर—प्राकृतिक सुन्दरता के धूप छाँह से बुना हुआ है। चिड़ियाँ, भौंरे, झिल्लियाँ, झरने, लहरें आदि जैसे मेरे बाल—कल्पना के छाया बन में मिलकर वाद्य तरंग बजाते रहे हैं।

'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि, तूने कैसे पहचाना
कहो कहाँ हे बाल विहंगिनी, पाया तूने यह गाना।'

अथवा

'आओ सुकुमारि विहगवाले,
निज कोमल कलरव में भरकर अपने कवि के गीत मनोहर
फैला आओ बन बन, घर घर, नाचे तृण तरु पात।'

आदि गीत आपको 'वीणा' में मिलेंगे जिनके भीतर से प्रकृति गाती है—

'उस फैली हरियाली में कौन अकेली खेल रही मां वह अपनी वयबाली में?' अथवा छोड़ द्रमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया, बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन'—आदि अनेक उस समय की रचना तब मेरे प्रकृति बिहारी होने की साक्षी हैं। जिस प्रकार प्रकृति ने मेरे किशोर हृदय को अपने सौन्दर्य से मोहित किया है उसी प्रकार पर्वत प्रदेश की निर्वाक् अलंध्य गरिमा तथा हिम-राशि की स्वच्छ शुभ्र चेतना ने मेरे मनको आश्चर्य तथा भय से अभिभूत कर उसमें अपने रहस्यमय मौन संगीत की स्वर लिपि भी अंकित की है। पर्वत श्रेणियों का वह मौन संकेत मेरी प्रारम्भिक रचनाओं में विराट भावना तथा उदात्त स्वरों में अवश्य वहीं अभिव्यक्त हो सका है, किन्तु मेरे रूपचित्रों के भीतर से एक प्रकार का अरूप सौंदर्य यत्र तत्र छलकता रहा है, और मेरी किशोर दृष्टि को चमत्कृत करने वाले प्राकृतिक-सौन्दर्य में एक गम्भीर अवर्णनीय पवित्रता की भावना का भी अपने आप ही समावेश हो गया है।

'अब न अगोचर रहो सुजान
निशानाथ के प्रियवर सहचर अंधकार स्वप्नों के यान
तुम किस के पद की छाया हो किसका करते हो अभिमान'

अथवा

'तुहिन बिन्दु बनकर सुन्दर, कुमुद किरण से उतर उतर
मा, तेरे प्रिय पद पद्मों में अर्पण जीवन को करदूँ
इस ऊषा की लाली में'

आदि पंक्तियों में पर्वत प्रदेश के रहस्यमय अंधकार की गंभीरता और

वहाँ के प्रभात की पावनता तथा निर्मलता एक अन्तर्वातावरण की तरह अथवा सूक्ष्मा की तरह व्याप्त है। 'वीणा' की रचनाओं में मेरी अध्ययन अथवा ज्ञान की कमी को जैसे प्रकृति ने अपने रहस्य संकेत तथा प्रेरणा बोध से पूरा कर दिया है। उनके भीतर से एक प्राकृतिक जगत का सहज उल्लास तथा अनिर्वचनीय पवित्रता फूटकर स्वतः काव्य का उपकरण अथवा उपादान बन गई है। 'वीणा' के बाद की रचनाएँ मेरे 'पल्लव' नामक संग्रह में प्रकाशित हुई हैं। 'पल्लव' काल में मुझसे प्रकृति की गोद छिन जाती है। 'पल्लव' की रूपरेखाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य तथा उनकी रंगीनी तो वर्तमान रहती है, किन्तु केवल भावों के रूपों में,—उससे वह सान्निध्य का संदेश लुप्त हो जाता है।

'कहो हे सुन्दर विहग कुमार,
कहाँ से आया वह प्रिय गान।'

अथवा

'सिखा दो न हे मधुप कुमारि
मुझे भी अपना मीठा गान।

आदि

'पल्लव' काल की रचनाओं में विहग, मधुप, निर्झर आदि तो वर्तमान हैं, उनके प्रति हृदय की ममता ज्यों की त्यों बनी हुई है, लेकिन अब जैसे उनका साहचर्य अथवा साथ छूट जाने के कारण वे स्मृति चित्र तथा भावना के प्रतीक भर रह गए हैं। उनके शब्दों में कला का सौन्दर्य है, प्रेरणा का सजीव स्पर्श नहीं। प्रकृति के उपकरण रागवृत्ति के स्वर बन गये हैं। वीणा काल के प्राकृतिक सौन्दर्य का सहवास 'पल्लव' की रचनाओं में भावना के सौन्दर्य की मांग बन गया है, प्राकृतिक रहस्य की भावना ज्ञान की जिज्ञासा में परिणत हो गई है। 'वीणा' की रचनाओं में जो स्वाभाविकता मिलती है वह 'पल्लव' में कला-संस्कार तथा अभिव्यक्ति के मार्जन में बदल गई है। बाहर का रहस्यमय पर्वत-प्रदेश मन की आँखों को विस्मित करने लगा है। अब भी 'पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश' वाला पर्वत का दृश्य सामने आता

है। पर उसके साथ सरल शैशव की सुखद स्मृति सी एक बालिका भी मनोरम मित्र बनकर ही पास खड़ी दिखाई देती है। बालकल्पना की तरह अनेक रूप धरने वाले उड़ते बादलों में हृदय का उच्छ्वास और तुहिन बिन्दु सी चंचल जलकी बूँदों में आँसुओं की धारा मिल गई है। प्रकृति का प्रांगण छाया प्रकाश की बीथी बन गया है। उसके भीतर के हृदय की भावना अनेक रूप धारण कर विचरण करती हुई दिखाई पड़ती है। उपलों पर बहुरंगी लास तथा भंगिमय भृकुटि—विलास दिखाने वाली निश्चल निर्झरी अब सजल आँसुओं की चंचल सी प्रतीत होती है। निश्चय ही 'पल्लव' की काव्य भूमिका से वीणा काल का पवित्र प्राकृतिक सौन्दर्य उड़ गया अचानक लो इधर, फड़का अपार वारिद के पर' के सदृश ही विलीन हो जाता है। उसके स्थान पर अवशेष रह गए हैं निर्झर शेष रह जाते हैं। उस पवित्रता का स्पर्श पाने के लिए हृदय जैसे छटपटा कर प्रार्थना करने लगता है—'विहग बालिका का सा मृदुस्वर, अर्ध खिले वे कोमल अंग, क्रीड़ा कौतूहलता मनकी, वह मेरी आनन्द उमंग'—'अहो दयामय, फिर लौटा दो मेरी पद प्रिय चंचलता तरल तरंगों-सी वह लीला, निर्विकार भावना लता!' 'पल्लव' की अधिकांश रचनाएँ प्रयाग में लिखी गई हैं। १६२१ के असहयोग आन्दोलन के साथ ही हमारे देश की बाहरी परिस्थितियों ने भी जैसे हिलना डुलना सीखा है। युग युग से जड़ीभूत उनकी वास्तविकता में सक्रियता तथा जीवन के चिन्ह प्रकट होने लगे। उनके स्पन्दन, कंपन तथा जागरण के भीतर से एक नवीन वास्तविकता की रूपरेखाएँ मन को आकर्षित करने लगीं। मेरे मनके भीतर वे संस्कार धीरे धीरे संचित होने लगे; पर 'पल्लव' की रचनाओं में वे मुखारित नहीं हो सके। न उसके स्वर उस नवीन भावना को वाणी देने के लिए पर्याप्त तथा उपयुक्त ही प्रतीत हुए। 'पल्लव' की सीमाएँ छायावाद की अभिव्यञ्जना की सीमाएँ थीं, वह पिछली वास्तविकता के निर्जीव भार से अक्रांत उस भावना की पुकार थी, जो बाहर की ओर राह न पाकर भीतर की ओर स्वप्न सोपानों पर आरोहण करती हुई युग के अवसाद तथा विवशता को वाणी देने का प्रयत्न कर रही थीं। और साथ ही काल्पनिक उठान द्वारा नवीन वास्तविकता की अनुभूति प्राप्त करने की चेष्टा कर रही थीं। 'पल्लव'

की सर्वोत्तम तथा प्रतिनिधि रचना 'परिवर्तन' में विगत वास्तविकता के प्रति असंतोष तथा परिवर्तन के प्रति आग्रह की भावना विद्यमान है। साथ ही जीवन की अनित्य वास्तविकता के भीतर से नित्य सत्य को खोजने का प्रयत्न जिसके आधार पर नवीन वास्तविकता के भीतर से नित्य सत्य को भी है। जिसके आधार पर नवीन वास्तविकता का निर्माण किया जा सके। गुञ्जन काल की रचनाओं में नित्य सत्य पर मेरा दृढ़ विश्वास प्रतिष्ठित हो गया है।

सुन्दर से नित सुन्दर तर, सुन्दरतर से सुन्दरतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे, सुन्दर सुन्दर जग जीवन।'

आदि रचनाओं में मेरा मन परिवर्तिनशील अनित्य वास्तविक के ऊपर उठकर नित्य सत्य की विजय के गीत गाने को लालायित हो उठा है और उसके लिए आवश्यक साधना को भी अपनाने की तैयारी करने लगा है। उसे यह भी अनुभव होने लगा है कि 'चाहिए विश्व को नव जीवन!' और वह इस आकांक्षा से व्याकुल भी रहने लगा है। 'ज्योत्सना' में मैंने इस नवीन जीवन तथा युग परिवर्तन को धारणा को एक सामाजिक रूप प्रदान करने का प्रयत्न किया है। पल्लवकालीन जिज्ञासा तथा अवसाद के कुहा से निखर कर 'ज्योत्स्ना' का जगत जीवन के प्रति एक नवीन विश्वास, आशा तथा उल्लास लेकर प्रकट होता है। 'युगान्त' में मेरा वह विश्वास बाहर की दिशा में भी सक्रिय हो गया है और विकास का भी• हृदय क्रांतिवादी हो गया है। 'युगान्त' की क्रांति भावना में आदेश है और है एक मनुष्यत्व के प्रति संकेत। अनित्य वास्तविकता का बोध मेरे मन में पहले परिवर्तन और फिर क्राँति का रूप धारण कर लेता है। नित्य सत्य के प्रति आकर्षण नवीन मानवता के रूप में प्रस्फुटित होने लगता है। दूसरे शब्दों में बाहरी क्रांति की अभावात्मकता की पूर्ति मेरा मन नवीन मनुष्यत्व को भावात्मक देन द्वारा करना चाहता है। 'द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र हे, सुरत ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण' द्वारा जहाँ पिछली वास्तविकता को बदलने के लिए ओज पूर्ण आह्वान है, वहाँ 'कंकाल जाल जग में फैले फिर नवल रुधिर पल्लव लाली' में पल्लव

काल की स्वप्न चेतना द्वारा उस रिक्त स्थान को भरने के लिए आग्रह भी है।

'गा कोकिल ! बरसा पावक कण !
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन
ध्वंस भ्रंश जग के जड़ बंधन।'

के साथ ही 'हो पल्लव नवल मानवपन' 'रच मानव के हित नूतनमन' भी मैंने कहा है। यह क्रांति भावना जो साहित्य में अब प्रगतिवाद के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी है मेरी ताज, कलरव आदि युगांत कालीन रचनाओं में विशेष रूप से अभिव्यक्त हो सकी है और मानववाद की भावना 'युगांत' की 'मानव', मधुस्मृति', आदि रचनाओं में। 'बापू के प्रति' शीर्षक मेरी उस समय की रचना गाँधीवाद की ओर झुकाव की द्योतक हैं, जो 'युगवाणी' में भूतवाद तथा अध्यात्म के प्रारम्भिक समन्वय का रूप धारण कर लेती है। 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में मेरी क्रांति की भावना मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित ही नहीं होती उसे आत्मसात् करने का भी प्रयत्न करती है।

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन अम्लान'

अथवा

'मुझे स्वप्न दो, मन के स्वप्न—आज बनो फिर तुम नव मानव'

संस्कृति का प्रश्न', 'सांस्कृतिक हृदय' आदि उस समय की अनेक रचनाएँ मेरी उस सांस्कृतिक तथा समन्वयात्मक प्रवृत्ति की द्योतक हैं। 'ग्राम्या' मेरी सन् १९४० की रचना है जब प्रगतिवाद हिन्दी साहित्य में घुटनों के बल चलना सीख रहा था। आज के दिन प्रगतिवाद जिस प्रकार वर्ग युद्ध की भावना के साथ दृढ़ कदम रखकर आगे बढ़ना चाहता है, उस दृष्टि से 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' को प्रगतिवाद की तुतलाहट ही कहना पड़ेगा। सन् १९४० के बाद का समय द्वितीय विश्व युद्ध का वह काल रहा है। जिसमें भौतिक विज्ञान तथा मांस पेशियों की संगठित शक्ति को मानवता के हृदय

पर नग्न पैशाचिक नृत्य किया है। सन् ४२ के असहयोग आन्दोलन में भारत को जिस पाशविक अत्याचार तथा नृशंसता का सामना करना पड़ा उससे हिंसात्मक वाह्य क्रांति के प्रति मेरा समस्त उत्साह अथवा मोह विलीन हो गया। मेरे हृदय में यह बात गम्भीर रूप से अंकित हो गई कि नवीन सामाजिक संगठन राजनैतिक, आर्थिक आधार पर होना चाहिए। यह धारणा सर्व प्रथम सन् १९४२ में मेरी लोकायन की योजना में और आगे चलकर 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' की रचनाओं में अभिव्यक्त हुई है। नवीन सांस्कृतिक संगठन की रूप रेखा तथा नवीन मान्यताओं का आधार क्या हो। इस सम्बन्ध में मेरे मन में ऊहापोह चल ही रहा था कि इसी समय में श्री अरविंद के जीवन दर्शन के सम्पर्क में आ गया और मेरी ज्योत्स्ना काल की चेतना एक नवीन युग प्रभात की व्यापक चेतना में प्रस्फुटित होने लगी जिसको मैंने प्रतीकात्मक रूप में स्वर्ण चेतना कहा है। और मेरा विश्वास धीरे धीरे और भी दृढ़ होगया कि नवीन सांस्कृतिक आरोहण इसी नवीन चेतना के आलोक में संभव हो सकता है। जो मनुष्य की वर्तमान मानसिक चेतना को अतिक्रमण कर उसे एक अधिक ऊर्ध्व, गंभीर तथा व्यापक धरातल पर उठा देगी। और इस प्रकार आने वाली क्रांति सवल रोटी की क्रांति, मानसिक मान्यताओं की क्रांति तथा सामाजिक तथा नैतिक आदर्शों की भी क्राँति होगी। दूसरे शब्दों में भावी क्राँति राजनैतिक, आर्थिक क्राँति तक ही सीमित न रहकर अध्यात्मिक धारणा के सूक्ष्म स्तर से अविछिन्न रूप जुड़ा हुआ है, और वर्तमान युग की विशृंखलता को नवीन मानवीय समंजस्य देने के लिए मनुष्य की अन्न प्राण सम्बन्धी चेतनाओं का बहिरंतर रूपान्तर होना आवश्यक तथा अवश्यम्भावी है, जिसे मैंने 'स्वर्णकिरण' में इस प्रकार कहा है :—

सस्मित होगई धरती, बहिरंतर जीवन'